आलोचनात्मक अध्ययन एवं व्याख्या

यशपाल और उनका 'झूठ सच'

राजनाथ शर्मा, एम० ए०

यशपाल और उनका 'झूठा सच'

[आलोचनात्मक अध्ययन एवं व्याख्या]

लेखक

राजनाथ शर्मा, एम० ए०

म हा ल क्ष्मी प्र का श न

शिक्षा साहित्य के प्रकाशक : आगरा–२

प्रकाशक

महालक्ष्मी प्रकाशन

शहीद भगतसिंह मार्ग, आगरा–२

प्रथम संस्करण : १६६६

मूल्य : ६·२५

मुद्रक

अमर प्रिंटिंग प्रेस, आगरा

अपनी बात

यशपाल का 'झूठा सच' उपन्यास उस समय पढ़ा था, जब वह प्रकाशित हुआ था, और मन पर एक गहरी छाप छोड़ गया था। लगा था कि सामयिक जीवन का ऐसा विस्तृत परन्तु संक्षिप्त, गहन और मार्मिक चित्रण हिन्दी-कथा-साहित्य में अत्यन्त दुर्लभ है। लगभग दस वर्ष बाद जब उसका यह संक्षिप्त छात्रोपयोगी संस्करण आलोचना के लिए पढ़ना पड़ा तो पहले पढ़ी हुई वह छाप और भी अधिक गहरी हो उठी। हिन्दी में अभी तक ऐसा दूसरा कोई उपन्यास नहीं लिखा गया है। इसे 'गोदान' के बाद हिन्दी का, अब तक का सर्वश्रेष्ठ उपन्यास माना जा सकता है। यह अनायास की तोल्स्तोय के विश्व-प्रसिद्ध उपन्यास 'युद्ध और शान्ति' की याद दिला देता है। यह उपन्यास भी उसी स्तर का है। हमें यह जान कर बहुत खुशी हुई कि हिन्दी-प्रदेश के ही नहीं, कई अहिन्दी-प्रदेश के विश्वविद्यालयों में इसे पाठ्य-क्रम में स्थान दिया गया है। इसे पढ़ कर हमारे छात्रों को कम-से-कम इतना ज्ञान तो हो ही जायेगा कि उनके देश को आजादी किन परिस्थितियों में मिली थी और उस आजादी का क्या रूप और प्रभाव रहा था। हमारे छात्र यदि इस तथ्य को समझ सकें तो देश का भविष्य अन्धकारमय नहीं रह सकेगा। 'झूठा सच' उन्हें इस अन्धकारमय वर्तमान में दिशा-निर्देश देता हुआ उज्ज्वल भविष्य की शक्ति और आशा प्रदान करता है।

हमने अपनी इस छोटी-सी आलोचनात्मक पुस्तक में इसी 'झूठा सच' का इसी दृष्टि से आलोचना और मूल्यांकन करने का प्रयत्न किया है। और ऐसा करते समय पूर्णतः छात्रोपयोगी दृष्टिकोण रखा है। छात्रों को इसमें उपन्यासकार यशपाल, उनका साहित्य, विचार-दर्शन, शैली-शिल्प, उपन्यास के तत्व, 'झूठा सच' का विस्तृत संक्षिप्त सारांश, सम्बन्धित प्रश्न, उनके उत्तर और व्याख्या—सभी कुछ मिल जायेगा। और हमारे छात्रों को परीक्षा में उत्तीर्ण होने के लिए इतना ही पर्याप्त है। सुधी आलोचकों, पाठकों और अध्यापकों को इसमें एक नया दृष्टिकोण भी मिलेगा।

कथा-सारांश तनिक विस्तार के साथ इसलिए दिया गया है ताकि छात्र-गण इस सारांश को पढ़ कर जब उपन्यास पढ़ने बैठेंगे तो कथा को समझने में उन्हें दिक्कत नहीं होगी ।

हमें आशा है कि अपने इस रूप में हमारी यह छोटी-सी पुस्तक हमारे छात्र-छात्राओं के काम की सिद्ध होगी । आलोचना में मत-विरोध होना स्वाभाविक है । सम्भव है, हमारे कुछ पाठकों को इसमें की गई कांग्रेस की बुराई और कम्युनिज्म की तारीफ अच्छी न लगे, परन्तु लेखक का अपना दृष्टिकोण होता है । यह हमारा दोष नहीं है कि यशपाल के दृष्टिकोण से हमारा दृष्टिकोण मिलता है। सत्य को छिपाया नहीं जा सकता । इस उपन्यास में यशपाल ने जिस सत्य का उद्‌घाटन किया है, हमने उसी की व्याख्या और विश्लेषण कर उसे अधिक सुबोध और सुगम बनाने का प्रयत्न-मात्र किया है ।

राजनाथ शर्मा

स्वतन्त्रता दिवस १५ अगस्त, १९६९
लक्ष्मी निवास
गोकुलपुरा, आगरा

विषय सूची

यशपाल

आलोचना भाग

विवेचन करते हुए बताइए कि इसमें वर्णित कथा काल्पनिक होते हुए भी वर्णित युग का सच्चा ऐतिहासिक चित्र प्रस्तुत कर देने में पूर्ण समर्थ है ।

४—"कथा संगठन की दृष्टि से 'झूठा सच' का प्रथम भाग उसके दूसरे भाग की अपेक्षा अधिक सुगठित है ।"—दोनों भागों की कथावस्तु का तुलनात्मक अध्ययन करते हुए उपर्युक्त कथन के सम्बन्ध में अपने विचार प्रकट कीजिए ।

५—" 'झूठा सच' हिन्दी का एकमात्र ऐसा उपन्यास है जिसकी कथा-सीमा में स्वतन्त्रता के बाद के भारतीय जीवन के विविध पक्षों और उसमें होने वाली संक्रान्तियों से संग्रथित भारतीय जीवन का समग्र चित्र अपनी सम्पूर्णता के साथ मूर्तिमान हो उठता है ।"—विवेचन कीजिए ।

६—" 'झूठा सच' के अधिकांश पात्र अपने-अपने वर्गों का प्रतिनिधित्व करते हुए अधिक दिखाई पड़ते हैं ।"—इस उपन्यास की पात्र-योजना का विवेचन करते हुए उपर्युक्त मन्तव्य के सम्बन्ध में अपने विचार प्रकट कीजिए ।

७—" 'झूठा सच' के पात्र विभिन्न वर्गों के प्रतीक होते हुए भी जीवन्त मालूम होते हैं ।"—विवेचन कीजिए ।

८—" 'झूठा सच' के पात्र प्रगतिशील हैं । उपन्यासकार ने प्रकारान्तर से यह व्यक्त किया है कि देश का भविष्य और आशा ऐसे ही व्यक्तियों पर निर्भर है ।"—इस सम्बन्ध में अपने विचार प्रकट कीजिए ।

९—" 'झूठा सच' के प्रथम भाग में पात्रों का चारित्रिक विकास जितने कलात्मक ढंग से हुआ है, उतना द्वितीय भाग में नहीं हो सका ।"—विवेचन कीजिए ।

१०—"वातावरण या परिस्थिति-निर्माण की दृष्टि से 'झूठा सच' एक पूर्ण सफल और यथार्थवादी उपन्यास है ।"—इस उपन्यास में अंकित वातावरण का उपर्युक्त उक्ति के सन्दर्भ में विश्लेषण और विवेचन कीजिए ।

११—"इस उपन्यास का 'झूठा सच' नाम इसमें हुए वातावरण चित्रण द्वारा पूर्ण सार्थक सिद्ध होता है।"—विवेचन कीजिए।

१२—"यह उपन्यास झूठ है, पर ऐसा झूठ जिसके सत्य होने में किसी प्रकार का सन्देह नहीं किया जा सकता।"—इस उक्ति के सम्बन्ध में अपने विचार प्रकट कीजिए।

१३—'झूठा सच' उपन्यास के लिखने में उपन्यासकार का क्या मूल उद्देश्य रहा है? यशपाल की विचारधारा के सन्दर्भ में इसका उत्तर दीजिए।

१४—"'झूठा सच' उपन्यास नितान्त सोद्देश्य और एक निश्चित विचारधारा के अनुसार लिखा गया है।" क्या आप इस मत से सहमत हैं? विवेचन कीजिए।

१५—भाषा-शैली की दृष्टि से 'झूठा सच' की आलोचना कीजिए।

१६—"'झूठा सच' में प्रयुक्त भाषा-शैली उसमें चित्रित वातावरण के नितान्त अनुरूप है।"—विवेचन कीजिए।

१७—"'झूठा सच' में भाषा-शैली का प्रयोग समाज में प्रचलित और प्रयुक्त होने वाली भाषा-शैली के ही अनुरूप हुआ है।"

इस उपन्यास की भाषा-शैली का विवेचन करते हुए उपर्युक्त कथन पर अपने विचार प्रकट कीजिए।

१८—"जयदेवपुरी को इस उपन्यास का नायक माना जा सकता है।" क्या आप इस कथन से सहमत हैं? तर्क पूर्ण उत्तर दीजिए।

१९—"जयदेव का चरित्र एक ऐसे सामान्य कांग्रेसी का चरित्र है, जिसमें उसकी व्यक्तिगत स्वार्थ सिद्धि, पदलिप्सा और प्रतिक्रियावादी दृष्टिकोण की प्रधानता रही है।"—जयदेव के चरित्र का विश्लेषण करते हुए उपर्युक्त कथन के सम्बन्ध में अपने विचार प्रकट कीजिए।

२०—"कनक को इस उपन्यास की नायिका और सर्वाधिक सशक्त चरित्र माना जा सकता है।"—नायिका की समस्या को सुलझाते हुए कनक के चरित्र का विवेचन कीजिए।

व्याख्या भाग

———

यशपाल

(जीवन-परिचय, व्यक्तित्व और कृतित्व)

यशपाल 'झूठा-सच' शीर्षक उपन्यास के लेखक हैं। लेखक के व्यक्तित्व का उसकी रचनाओं से घनिष्ठ सम्बन्ध रहता है। उसका व्यक्तित्व और विचारधारा उसकी कृतियों के माध्यम से अभिव्यक्त होती है। और व्यक्तित्व तथा विचारधारा के निर्माण में लेखक के जीवन, परिस्थितियों, प्रभावों आदि का बड़ा गहरा हाथ रहता है। इसलिए किसी भी लेखक की रचना या रचनाओं को पूरी तरह से समझने के लिए हमें पहले उसके जीवन, जीवन की परिस्थितियों, उन परिस्थितियों से निर्मित उसके व्यक्तित्व, स्वभाव, विचारधारा आदि के सम्बन्ध में थोड़ी सी जानकारी प्राप्त कर लेनी चाहिए। अतः हम पहले यशपाल सम्बन्धी इसी विवरण को प्रस्तुत करने का प्रयत्न करेंगे।

संक्षिप्त जीवन-परिचय—यशपाल का जन्म ३ दिसम्बर, सन् १९०३ ई० में पंजाब के फिरोजपुर नामक नगर में हुआ था। उनके पूर्वज काँगड़ा जिले के निवासी थे। वहाँ उनके पास दो-चार सौ गज जमीन और एक कच्चा मकान था। इसके उपरान्त वह लोग अपना मूल निवास-स्थान छोड़ फिरोजपुर में आकर रहने लगे थे। यहाँ भी उनके परिवार की आर्थिक स्थिति अत्यन्त सामान्य ही रही थी। यशपाल के जन्म के समय पंजाब में आर्यसमाजी विचार-धारा का गहरा प्रभाव और प्रचार था। आर्य-समाजियों ने बच्चों को शिक्षा देने के लिए पुरानी भारतीय पद्धति के अनेक गुरुकुल खोल रहे थे, जिनमें 'गुरुकुल काँगड़ी' का प्रमुख स्थान था। यशपाल ने अपनी प्रारम्भिक शिक्षा इसी गुरुकुल काँगड़ी में प्राप्त की थी। इसका कारण यह था कि इनकी माँ इन्हें आर्य-समाज का प्रचारक बनाना चाहती थीं। गुरुकुल के राष्ट्रीय-भावना से ओतप्रोत वातावरण ने बालक यशपाल के मन में स्वदेश के प्रति अनन्य अनुराग और निष्ठा तथा विदेशी अंग्रेजी शासन के प्रति गहरे विद्रोह की भावना उत्पन्न कर दी थी। यशपाल का परिवार सदैव आर्थिक अभाव का सामना करता रहता था। घर

की आर्थिक स्थिति को सुधारने के लिए इनकी माँ को भी नौकरी करनी पड़ी थी। इसलिए इस अभाव ग्रस्त पारिवारिक वातावरण ने यशपाल के मन में समाज और समाज के आर्थिक ढाँचे के प्रति भी एक उग्र विद्रोह की भावना भर दी थी। इसी भावना ने उन्हें प्रारम्भ से ही भौतिकवादी बना दिया था।

क्रान्तिकारी जीवन का प्रारम्भ—गुरुकुल की पढ़ाई समाप्त करने के उपरान्त यशपाल आगे पढ़ने के लिए लाहौर चले आए और वहाँ 'नेशनल कॉलेज' में भर्ती हो गए। यहाँ उनका परिचय सरदार भगतसिंह और सुखदेव से हुआ। इस नई मित्रता ने यशपाल को सशस्त्र क्रान्तिकारी आन्दोलन के प्रति आकर्षित किया। उनके विद्रोही स्वभाव को इस आन्दोलन में खुल कर खेलने का अवसर मिला। वह क्रान्तिकारी दल के सदस्य बन गए और उसकी गतिविधियों में सक्रिय भाग लेने लगे। इस नए वातावरण ने उनके अध्ययन में बाधा डाली परन्तु उनकी नजर में देश की आजादी किताबी पढ़ाई से अधिक महत्वपूर्ण थी। सन् १९२९ में क्रान्तिकारियों ने अंग्रेज वायसराय की गाड़ी को बम से उड़ाने की योजना बनाई। उस योजना में यशपाल ने भी सक्रिय भाग लिया। उस घटना के उपरान्त जब पुलिस ने क्रान्तिकारियों की धरपकड़ प्रारम्भ की तो यशपाल फरार हो गए। सरकार ने इन्हें पकड़ने के लिए तीन हजार रुपये का इनाम घोषित कर दिया। परन्तु यशपाल पुलिस के हाथ न आए।

अब यशपाल क्रान्तिकारी दल के महत्वपूर्ण सदस्य माने जाने लगे थे। चन्द्रशेखर आजाद, भगतसिंह, भगवतीचरण, दुर्गा भाभी, बटुकेश्वर दत्त, सुखदेव जैसे क्रान्तिकारियों के साथ यशपाल ने अनेक सशस्त्र कार्यवाहियों में भाग लिया। यशपाल को लिखने का भी शौक था। क्रान्तिकारियों के दल के, जो 'हिन्दुस्तानी समाजवादी प्रजातंत्र दल' के नाम से संगठित और प्रसिद्ध था, 'बम का सिद्धान्त' नामक घोषणापत्र को भगवतीचरण और यशपाल ने मिलकर लिखा था। इस दल की एक सदस्या प्रकाशवती नामक लड़की थी। यशपाल उसके प्रति आकर्षित थे। परन्तु दल के नेता चन्द्रशेखर आजाद दल में ऐसी बातों को सहन नहीं करते थे। इस कारण तथा कुछ अन्य कारणों की वजह से यशपाल पर सन्देह किया जाने लगा। एक बार तो यहाँ तक नौबत आ गई कि आजाद ने इन्हें गोली उड़ा देने का हुक्म दे दिया। परन्तु किसी

प्रकार आजाद का सन्देह दूर कर दिया गया और यशपाल बच गए। यशपाल क्रान्तिकारियों के कई प्रमुख अभियानों से घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित रहे थे। सांडर्स-वध, असेम्बली बम कांड, लाहौर बम कांड, लाहौर बम फैक्टरी कांड, वायसराय ट्रेन बम कांड आदि में इनका सक्रिय सहयोग रहा था। इसलिए पुलिस बराबर इनकी तलाश में लगी रहती थी। सन् १९३० में भगतसिंह, सुखदेव, राजगुरु को फाँसी दे दी गई। अन्य क्रान्तिकारियों को लम्बी-लम्बी सजायें मिलीं। इसके कुछ समय बाद ही आजाद इलाहाबाद में पुलिस से हुई एक मुठ-भेड़ में शहीद हो गए। आजाद के शहीद हो जाने के उपरान्त यशपाल को 'हिन्दुस्तानी समाजवादी प्रजातंत्र दल' का प्रधान-सेनापति नियुक्त किया गया। सन् १९३२ में एक अभियान के समय पुलिस से हुई मुठभेड़ के समय यशपाल गिरफ्तार हो गए। इन पर मुकदमा चला और इन्हें चौदह वर्ष का कठोर कारावास दे जेल भेज दिया गया।

विप्लव का प्रकाशन—सन् १९३७ में उत्तर प्रदेश में कांग्रेस दल का मन्त्रिमंडल बना। इसने अगली वर्ष सारे राजबन्दियों को मुक्त कर दिया। उनके साथ यशपाल भी जेल से मुक्त हो गए। जेल से मुक्त होने पर यशपाल ने लखनऊ से अपना एक मासिक-पत्र निकाला—'विप्लव'। यशपाल जेल में बराबर अध्ययन करते रहे थे। उन्होंने बँगला, फ्रेंच और इटालवी साहित्य का तथा मार्क्सवाद का अध्ययन किया था। अब 'विप्लव' के माध्यम से उन्होंने समाजवादी विचारों का प्रचार करना प्रारम्भ कर दिया। थोड़े ही समय में 'विप्लव' बड़ा लोकप्रिय हो उठा। इसी समय उन्होंने 'मार्क्सवाद' शीर्षक से एक पुस्तक भी लिखी। इस प्रकार अब उनके आतंकवादी विचार मार्क्सवाद से प्रभावित हो एक नई व्यापक क्रान्ति का आह्वान करने लगे। सन् १९४१ में उनका पहला उपन्यास 'दादा कामरेड' प्रकाशित हुआ। इसे हिन्दी का पहला मार्क्सवादी उपन्यास माना जाता है। अंग्रेज-सरकार यशपाल के पिछले क्रान्तिकारी-जीवन और इन नई कृतियों से चौंकी हुई थी। सन् १९३९ में द्वितीय विश्व-युद्ध छिड़ गया। प्रान्तीय कांग्रेसी सरकारों ने ब्रिटेन द्वारा भारत की ओर से जर्मनी के खिलाफ युद्ध की घोषणा किए जाने के विरोध में त्यागपत्र दे दिए। सन् १९४२ में 'भारत छोड़ो' आन्दोलन छिड़ गया। उस समय यशपाल भी गिरफ्तार कर लिए गए। उनके गिरफ्तार हो जाने के बाद 'विप्लव' का प्रकाशन बन्द हो गया।

पुनः मुक्ति और साहित्य सृजन—सन् १९४५ में, युद्ध की समाप्ति के उपरान्त, अंग्रेज सरकार ने सारे भारतीय राजवन्दियों को जेल से मुक्त कर दिया। उनके साथ यशपाल भी जेल से छूट आए। जेल से मुक्त हो जाने के उपरान्त वह पुनः अपनी साहित्य साधना में जुट गए। जेल में रहते समय वह निरन्तर अध्ययन करते और थोड़ा-बहुत लिखते रहे थे। उनका दूसरा उपन्यास 'देशद्रोही' सन् १९४३ में उस समय प्रकाशित हुआ था जब वह जेल में थे। इस काल में उन्होंने अनेक कहानियाँ भी लिखी थीं। इन कहानियों के तीन संग्रह उनके जेल में रहते समय ही प्रकाशित हो गए थे, जो इस प्रकार हैं —'ज्ञानदान' (१९४३), 'अभिशप्त' (१९४३), तथा 'तर्क का तूफान' (१९४४)। हम पीछे यशपाल के जीवन का संक्षिप्त परिचय देते हुए यह बता आए हैं कि क्रान्तिकारी यशपाल की क्रान्तिदल की एक सदस्या प्रकाशवती से घनिष्ठ सम्बन्ध थे। पहली बार यशपाल जब जेल गए थे तो उन्होंने वहीं जेल में प्रकाशवती से विवाह कर लिया था। सन् १९३८ में पहली बार जेल से मुक्त होने पर जब उन्होंने 'विप्लव' का प्रकाशन आरम्भ किया था, उस समय प्रकाशवती ने सच्चे अर्थों में अर्द्धाङ्गिनी बन प्रकाशन में यशपाल को अपना पूरा सहयोग देना प्रारम्भ कर दिया था। यशपाल जब दूसरी बार जेल गए तो उनकी अनुपस्थिति में प्रकाशवती ही उनकी रचनाओं को प्रकाशित करवाने का प्रबन्ध करती रहीं थीं। इसलिए यशपाल के जेल में रहते हुए उनके तीन कहानी-संग्रह और एक उपन्यास प्रकाशित हो गए थे। अपनी इन रचनाओं द्वारा यशपाल हिन्दी-साहित्य में चर्चा के विषय बन गए थे।

साहित्य-सृजन और प्रकाशन—सन १९४५ में जेल से मुक्त होने के उपरान्त यशपाल पूरी तरह से साहित्य-सृजन में जुट गए। उन्होंने अनेक मौलिक उपन्यासों और कहानियों की रचना की; विदेशी उपन्यासों और कहानियों के अनुवाद किए, विचारात्मक निबन्ध लिखे। उनकी लोकप्रियता निरन्तर बढ़ती चली गई। आजकल यशपाल लखनऊ में स्थायी रूप से रहते हैं। उन्होंने वहाँ अपना एक विशाल मकान बनवा लिया है। 'विप्लव प्रकाशन' नामक उनकी अपनी एक प्रकाशन संस्था है। उनकी अनेक रचनाएँ इसी प्रकाशन-संस्था द्वारा प्रकाशित हुई हैं और होती रहती हैं। उनकी पत्नी सुश्री प्रकाशवती घर, यशपाल और इस प्रकाशन संस्था का पूरा प्रबन्ध करती हैं। यशपाल की अनेक रचनाएँ अन्य प्रकाशन-संस्थाओं द्वारा भी प्रकाशित हुई हैं।

यशपाल अपना सारा समय लिखने और अध्ययन करने में ही लगाते हैं। विचारों से वह मार्क्सवादी हैं और लेखन में यथार्थवादी। उन्हें कुछ आलोचकों ने मार्क्सवादी विचारधारा का सर्वश्रेष्ठ यथार्थवादी कथाकार माना है।

संयमित, सुव्यवस्थित, आकर्षक व्यक्तित्व—कुमारी अनु विग के अनुसार "यशपाल का व्यक्तित्व आधुनिकता के साँचे में ढला हुआ है—वेश-भूषा, खान-पान, रहन-सहन आदि में वह पाश्चात्य सभ्यता से प्रभावित हैं। कोट-पतलून, चाय-काफी, सिगरेट-सिगार, आमिष-निरामिष भोजन, मेज-कुर्सी, बाग-बगीचा, सैर-सपाटा आदि सब का शौक रखते हैं। अनेक बार देश-विदेश की यात्रा भी कर चुके हैं।.....यशपाल समय के पाबन्द, वचन पर दृढ़, परिश्रम के धनी और उत्तर में स्पष्ट व्यक्ति हैं।.....यशपाल के सशक्त व्यक्तित्व ने न तो सरकार के सामने झुकना सीखा है और न सामाजिक विषमताओं के सम्मुख टूटना। इन्होंने जीवन को जीने का पाठ स्वयं पढ़ा है और दूसरों को पढ़ाया है। इतनी यातनाओं और यंत्रणाओं के बावजूद इन्होंने अपनी आस्था को सुरक्षित रखा है और आशा को स्थिर। इसलिए इनका व्यक्तित्व नकारात्मक न होकर स्वीकारात्मक है, 'ना' का न होकर 'हाँ का है।"

कुमारी अनु विग द्वारा किया गया यशपाल के व्यक्तित्व का यह विश्लेषण यशपाल के सम्पूर्ण व्यक्तित्व को स्पष्ट कर देता है। यशपाल के सम्बन्ध में कुछ लोगों का यह कहना है कि उन्हें देख कर यह नहीं लगता कि यह व्यक्ति हिन्दी का लेखक है। देखने में यशपाल पाश्चात्य सभ्यता में ढले पूरे साहब से प्रतीत होते हैं। पाश्चात्य रहन-सहन की पूरी सुव्यवस्था उनके रहन-सहन और व्यक्तित्व में झलकती है। क्रान्तिकारी जीवन की कठोरता और कटु अनुभवों के कारण उनके जीवन में एक व्यवस्था आ गई है। प्रोफेसर प्रवीण नायक के शब्दों में—"साहबी लिबास में रहना, लंच न खाना, प्रतिदिन शेव करना और साहित्य की सर्जना करना, यही उनका अब सुव्यवस्थित और नियमित जीवन है। यशपाल निर्भीक ओर स्वाभिमानी तो इतने हैं कि किसी के सम्मुख अपना मस्तक झुकाना तो जानते ही नहीं। रूप, रंग, पोशाक और व्यवहार से यशपाल जी एक साहित्यकार नहीं लगते।"

क्रान्तिकारी-जीवन काल में एक बार प्रसिद्ध क्रान्तिकारी भगवतीचरण की पत्नी और दल की सक्रिय सदस्या प्रसिद्ध दुर्गा भाभी ने यशपाल की बातचीत के रुखेपन से चिढ़ कर कहा था—"तुम तो खामुखा कलाकार बन बैठे हो। पैदा तो पुलिस सुपरिन्टेन्डेन्ट बनने के लिए ही हुए थे।" प्रवीण नायक के

अनुसार—"वास्तव में यशपाल जी का चेहरा बड़ा रोबीला है और उनकी भौंहों से सचमुच आतंक टपकता है।" यशपाल से मिलने वाले लोगों का कहना है कि यशपाल स्वभाव से अधिक मिलनसार नहीं हैं। वह लोगों से अधिक मिलना-जुलना कम पसन्द करते हैं। अधिकांश समय लेखन-कार्य में या अपनी कोठी में बने बगीचे की देखभाल करने में ही व्यस्त रहते हैं। सभा-सोसायटियों में भी वह बहुत कम जाते हैं। परन्तु साहित्यिक-चर्चा आरम्भ होने पर बड़े निर्भीक ढंग से अपनी राय और विचार व्यक्त करते हैं। यशपाल के इस सुव्यवस्थित और नियमित जीवन तथा व्यक्तित्त्व के मूल में दो प्रभाव विशेष रूप से सक्रिय रहे प्रतीत होते हैं। पहला, बचपन का गुरुकुल का कठोर अनुशासन में आबद्ध नियमित जीवन; दूसरा, क्रान्तिकारी जीवन की कठोरता और संयम। इन्हीं दो प्रभावों ने उनके व्यक्तित्त्व का निर्माण किया है।

कल्पना का अद्भुत चमत्कार—यशपाल के चरित्र की एक अनन्य विशेषता उनकी अद्भुत कल्पना शीलता है। वह मन में किसी विचार के उदय होते ही अपनी कल्पना के माध्यम से उसे एक आकर्षक रूप प्रदान कर देते हैं। उनकी अनेक रचनाओं में उनकी इस उर्वर कल्पना के चमत्कार देखने को मिलते हैं। सन् १९४७ में हुए भारत-पाकिस्तान विभाजन के समय वह लाहौर में न होकर लखनऊ में ही थे। परन्तु उन्होंने अपने विशाल उपन्यास 'झूठा-सच' में उस समय के लाहौर का जो यथार्थ और जीवन्त वर्णन किया है, उसके सम्बन्ध में आलोचकों का यह कहना है कि बहुत से कलाकार उस घटना को आँखों से देखकर भी इतना सुन्दर यथार्थ चित्रण नहीं कर सकते। इसी प्रकार, बहुत पहले, यशपाल के दूसरे उपन्यास 'देशद्रोही' को पढ़ कर स्वर्गीय राहुल सांकृत्यायन ने कहा था कि इस उपन्यास में यशपाल ने मध्य एशिया और अफगानिस्तान के रीति-रिवाजों, भाषा, प्रकृति आदि का जैसा यथार्थ अंकन किया है वैसा आँखों से देखकर भी इससे अधिक स्वभाविक रूप में नहीं किया जा सकता। राहुल स्वयं कई बार इन प्रदेशों की यात्रा कर चुके थे। यशपाल इस कला में इतने माहिर हैं कि सुनी या पढ़ी हुई बातों और विवरणों के आधार पर ही स्थानों, व्यक्तियों, परिस्थितियों आदि के अत्यन्त मार्मिक और यथार्थ जीवन्त चित्र केवल अपनी कल्पना द्वारा ही अंकित कर देते हैं। उनकी इसी उर्वर और यथार्थवादी कल्पना ने हिन्दी के यथार्थवादी साहित्य को इतना अधिक सशक्त, व्यापक और प्रभावशाली बनाने में बहुत बड़ा योग प्रदान

किया है। कल्पना के सम्बन्ध में यशपाल का कहना है कि—"कल्पना कभी जीवन के यथार्थ से विच्छिन्न और क्षुब्ध नहीं हो सकती।"

यशपाल का साहित्य—यशपाल मूलतः कथाकार हैं—उपन्यासकार और कहानीकार। उन्होंने अनेक उपन्यास और दर्जनों कहानियाँ लिखी हैं। इसके अतिरिक्त उन्होंने अनेक निबन्ध भी लिखे हैं। साथ ही 'मार्क्सवाद' और 'गांधीवाद की शव परीक्षा' नामक दो राजनीतिक विचारधाराओं का विश्लेषण करने वाली पुस्तकें भी लिखी हैं। इस सम्पूर्ण साहित्य के साथ ही उनकी एक रचना पाठकों में बहुत लोकप्रिय रही है। वह रचना है—'सिंहावलोकन'। यह तीन भागों में प्रकाशित हुई थी। इसे कुछ लोग यशपाल का आत्म-चरित मानते हैं। इसके साथ ही इसमें भारतीय सशस्त्र क्रान्तिकारी आन्दोलन का पूरा इतिहास भी चित्रित हुआ है।

समष्टि रूप से यशपाल के उपलब्ध समस्त साहित्य की विधानुसार तालिका इस प्रकार प्रस्तुत की जा सकती है—

उपन्यास—'दादा कामरेड' (१९४१) 'देशद्रोही' (१९४३), 'पार्टी कामरेड' (१९४७), 'दिव्या (१९४५), 'मनुष्य के रूप' (१९४९), 'अमिता' (१९५६), 'झूठा-सच' (१९५८) ये। सात उपन्यास यशपाल के मौलिक उपन्यास हैं। इनके अतिरिक्त उन्होंने अनेक विदेशी प्रमुख उपन्यासकारों के उपन्यासों के हिन्दी में अनुवाद भी किए हैं। १९४१ से लेकर १९५८ तक की २० वर्ष की लम्बी अवधि में छोटे-बड़े केवल सात उपन्यास ही लिखना इस बात का प्रमाण है कि यशपाल कितने गहन मनोयोग और अध्ययन के उपरान्त उपन्यास लिखा करते थे।

कहानी-संग्रह—'पिंजरे की उड़ान' (१९३९), 'वो दुनियाँ' (१९४१), 'ज्ञानदान' और 'अभिशप्त' (दोनों १९४३), 'तर्क का तूफान' (१९४४), 'भस्मावृत चिनगारी' (१९४६), 'फूलो का कुर्ता' (१९४९), 'धर्मयुद्ध' (१९५०), 'उत्तराधिकारी' (१९५१) 'चित्र का शीर्षक' (१९५२), 'तुमने क्यों कहा था कि मैं सुन्दर हूँ' (१९५४), 'उत्तमी की माँ' (१९५५), 'ओ भैरवी' (१९५८), 'सच बोलने की भूल' (१९६२)। इन चौदह कहानी-संग्रहों में यशपाल की कुल मिलाकर १८१ कहानियाँ संग्रहीत हैं। यशपाल निरन्तर कहानियाँ लिखते रहते हैं। इनकी अनेक नई कहानियाँ 'धर्मयुग', 'सारिका' 'नईकहानी' आदि पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होती रहती हैं।

निबन्ध-संग्रह—'मार्क्सवाद,' 'न्याय का संघर्ष' (१९४०), 'गांधीवाद की शव-परीक्षा' (१९४२), 'चक्कर क्लब' (१९४३), 'बात-बात में बात' (१९५०), 'देखा, सोचा, समझा' (१९५१), चीनी कम्युनिष्ट पार्टी,' 'राम-राज्य की कथा' आदि।

एकांकी नाटक-नशे-नशे की बात—आजकल यशपाल कभी-कभी फुटकर निबन्ध लिखते रहते हैं। अभी कुछ दिनों पहले उन्होंने अपने कुछ निबन्धों में इस बात को स्पष्ट करने का प्रयत्न किया था कि चन्द्रशेखर आजाद के इलाहाबाद में उपस्थित होने की सूचना पुलिस को वीरभद्र तिवारी ने नहीं दी थी। (कुछ पुराने क्रान्तिकारियों का यह कहना था कि यह सूचना क्रान्तिकारी दल के सदस्य वीरभद्र तिवारी ने ही पुलिस को दी थी।) यशपाल के इन निबन्धों ने विवाद खड़ा कर दिया था। अनेक पुराने क्रान्तिकारियों ने यशपाल की इस बात का खण्डन करते हुए वीरभद्र को ही दोषी ठहराया था। यशपाल कभी-कभी साहित्यिक विषयों पर भी निबन्ध लिखा करते हैं।

विचार-दर्शन—यशपाल के उपर्युक्त समस्त साहित्य-सृजन के मूल में उनकी एक निश्चित विचारधारा रही है। वह विचारों से साम्यवादी हैं। उन पर साम्यवादी विचारधारा का गहरा प्रभाव है। उन्होंने अपने साहित्य के माध्यम से जीवन और जगत को मार्क्सवादी दृष्टिकोण द्वारा देखने, सोचने और समझने का प्रयत्न किया है। इसी कारण उनके समस्त साहित्य में समाजवादी यथार्थपरक विचारधारा का प्राधान्य मिलता है। यशपाल ने अपनी 'मार्क्सवाद' शीर्षक पुस्तक में मार्क्सवाद के सम्बन्ध में लिखा है—

"मार्क्सवाद इतिहास को स्थिति (Thesis), प्रतिवाद (Synthesis) और समन्वय (Anti thesis) अर्थात् एक स्थिति से आरम्भ होकर बढ़ने और उसमें विरोध उत्पन्न होकर नया समन्वय होते रहने के क्रम में ही देखता है। क्रियात्मक रूप में यों कहा जा सकता है कि समाज में पूँजीवाद के विकास की स्थिति ने साधनहीन मजदूर श्रेणी के रूप में अपना प्रतिवाद या प्रतिस्थिति उत्पन्न कर दी है।"

यशपाल समाज की असंगतियों, विषमताओं, कुंठाओं आदि का मूल कारण आर्थिक विषमता को मानते हैं। इसलिए उनका सारा साहित्य इसी आर्थिक

विषमता और उसके कारण उत्पन्न हुई सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक, धार्मिक आदि विकृतियों का एक सुन्दर यथार्थवादी लेखा-जोखा बन गया है। उन्होंने अपने साहित्य द्वारा वैचारिक क्रान्ति की भूमिका तैयार करने को कोशिश की है। यशपाल की एक विशेषता यह है कि उन्होंने अपने साहित्य में कथा-माध्यम से मार्क्सवादी विचार-दर्शन का चित्रण करते हुए भी उसकी कट्टरता से स्वयं को मुक्त रखा है। इसी कारण उनकी रचनाओं में साहित्यिक सौन्दर्य और प्रभाव अच्छी तरह से उभरा है। कुछ आलोचकों ने इस प्रकार के साहित्य को प्रचार वादी साहित्य कह कर यशपाल की अवहेलना करने का प्रयत्न किया था, परन्तु समाज-व्यवस्था की वास्तविकता का, उसके यथार्थ का उद्घाटन करना प्रचार-मात्र नहीं कहा जा सकता। पूँजीपतियों और उनके समर्थक साहित्यकारों द्वारा समाजवादी विचार धारा से प्रेरित साहित्य का सदैव विरोध किया जाता रहा है। विरोध का मूल कारण यह है कि ऐसा साहित्य सामान्य शोषित जनता में पूँजीवाद और उसके द्वारा पाले जाने वाले स्वार्थी लोगों के विरुद्ध विद्रोह और असन्तोष की भावना भर देता है। इसी कारण ये लोग ऐसे जागरूक और जीवन्त साहित्य का सदैव विरोध कर काल्पनिक आदर्शवाद का चित्रण करने वाले मनोरम आकर्षक साहित्य को प्रश्रय और प्रोत्साहन देते रहते हैं।

समाज को महत्त्व, व्यक्ति को नहीं—यशपाल समाजवादी विचारक और लेखक हैं; इसलिए उन्होंने अपने साहित्य में व्यक्ति को महत्त्व न दे समाज को ही सर्वोपरि महत्त्व दिया है। उन्होंने व्यक्ति को समाज की एक इकाई मान सामयिक सामाजिक समस्याओं का चित्रण करते हुए उनके समाधान प्रस्तुत किए हैं। अपने इस चित्रण में उन्होंने वर्ग-संघर्ष में अपनी दृढ़ आस्था प्रकट करते हुए पूँजीवाद और उसके द्वारा गरीबों के किए जाने वाले भयंकर शोषण और अत्याचार का कट्टर विरोध किया है। यशपाल से पूर्व प्रेमचन्द भी इसी प्रकार के साहित्य का प्रणयन कर चुके थे। प्रेमचन्द की विचारधारा भी समाजवादी हो रही है, और यशपाल की भी। दोनों ने जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में व्याप्त अन्ध विश्वासों, रुढ़ियों, भ्रष्टाचार, शोषण, अत्याचार, दम्भ, पाखंड आदि के विविध मार्मिक चित्र अंकित कर प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप में वर्ग-संघर्ष की भावना को शक्ति प्रदान की है। परन्तु इन दोनों महान कथाकारों में एक स्पष्ट अन्तर दिखाई देता है। प्रेमचन्द क्रान्ति का एक

हल्का सा अस्पष्ट संकेत देकर रह जाते हैं। वह हिंसक क्रान्ति के विरोधी हैं। इसके विपरीत यशपाल अहिंसा का विरोध करते हुए हिंसक क्रान्ति का स्पष्ट सन्देश देते हैं। उनका स्पष्ट मत है कि बिना हिंसक क्रान्ति के समाज और जीवन के विविध क्षेत्रों में व्याप्त विषमता और शोषण का उन्मूलन बिना हिंसा के नहीं किया जा सकता।

गांधीवाद का विरोध—यशपाल स्वयं सशस्त्र क्रान्ति में पूरा और दृढ़ विश्वास रखने वाले क्रान्तिकारी रह चुके हैं। साथ ही मार्क्सवाद के अध्ययन ने उनके सम्मुख इस तथ्य को स्पष्ट कर दिया है कि शोषक और अत्याचारी केवल हिंसा की भाषा को ही समझता और मानता है। इसीलए यशपाल का गांधी के अहिंसावादी सिद्धान्त में रंचमात्र भी आस्था नहीं रही है। उन्होंने गांधीवाद की सदैव कटु आलोचना की है। अपनी दो रचनाओं—'गांधीवाद की शव परीक्षा' और 'रामराज्य की आत्मकथा' में उन्होंने गांधीवाद का उग्र विरोध किया है। इसी कारण वह कांग्रेस के भी घोर विरोधी रहे हैं। अपने 'देशद्रोही' उपन्यास में उन्होंने अप्रत्यक्ष रूप से गांधीवाद और प्रत्यक्ष रूप से कांग्रेस की कटु आलोचना करते हुए लिखा है—

"भीतर संगठित होकर वैधानिक उपायों द्वारा कांग्रेस को समाजवादी शक्ति बना सकने का स्वप्न व्यर्थ है। श्रेणी-संघर्ष (वर्ग-संघर्ष) की चेतना 'शोषित वर्ग' में उतनी अधिक जाग्रत नहीं जितनी कि 'शोषक वर्ग' और उनके सहायकों में हो रही है। कारण यह है कि वे शिक्षित और साधन सम्पन्न हैं। कांग्रेस को जनमत से समाजवादी शक्ति बनाने के प्रयत्न कांग्रेस के विधानानुसार अवैधानिक बनते जा रहे हैं। जनमत पैदा करने के सब साधन पूँजीपतियों के हाथ में हैं। वे शोषित जनता के 'हाय रोटी' कहने की संकीर्णता को स्वार्थ और श्रेणी हिंसा कहते हैं और अपनी श्रेणी के अधिकार बढ़ाने के आन्दोलन को 'हाय देश' कह उसे त्याग बताते हैं। यदि कांग्रेस आन्दोलन में सहयोग दे पाने की शर्त ईश्वर में विश्वास होगा, तो फिर जनता को मूर्ख बनाए जा सकने की कोई सीमा नहीं।"

यशपाल के उपर्युक्त कथन और विश्लेषण के सम्बन्ध में यहाँ यह तथ्य विशेष रूप से द्रष्टव्य है कि उन्होंने यह सन् १९४३ में लिखा था। ('देशद्रोही' सन् १९४३ में प्रकाशित हुआ था।) उस समय तक भारत आजाद नहीं हुआ था, कांग्रेस शासक नहीं बनी थी। कांग्रेस देश की आजादी के लिए संघर्ष कर

रही थी और देश के पूँजीपति कांग्रेस को अपना पूरा समर्थन दे रहे थे । उनके द्वारा दिये गए इस समर्थन का एक गहरा रहस्य था । भारत के पूँजीपति इस बात को जानते थे कि उनके समर्थन और धन के बल पर सशक्त बनने वाली कांग्रेस, आजादी मिलने के बाद उनके ही कब्जे में रहेगी और उस समय उन्हें अपना व्यापार बढ़ाने तथा और अधिक शोषण करने में कांग्रेस द्वारा पूरी सहायता मिलेगी । प्रेमचन्द और यशपाल जैसे जागरूक, दूरदर्शी साहित्यकारों ने देश की आजादी के लिए आन्दोलन करने वाली कांग्रेस की इस असलियत को आजादी मिलने से बहुत पहले ही भाँप लिया था । प्रेमचन्द और यशपाल दोनों ही कांग्रेस को पूँजीपतियों के संरक्षण में पलने वाली संस्था मानते थे । प्रेमचन्द के एक उपन्यास 'गबन' का एक अनपढ़ पात्र देवदीन खटीक प्रकारान्तर से वही बात कहता है जो यशपाल ने कही है । आगे चल कर इन दोनों दूरदर्शी सरस्वती के वरद पुत्रों की यह भविष्यवाणी अक्षरशः सिद्ध हुई थी । सन् १९४७ में भारत को आजादी मिलने के उपरान्त कांग्रेस के सामाजवादी विचारधारा वाले सदस्यों ने देश में समाजवादी शासन और अर्थ-व्यवस्था स्थापित करने की मांग उठाई थी । कांग्रेस के पूँजीवाद समर्थक सदस्यों ने उनकी इस माँग का घोर विरोध किया था । और कांग्रेस के इस आन्तरिक संघर्ष का यह परिणाम निकला था कि समाजवादी विचार धारा वाले सदस्यों को कांग्रेस से त्यागपत्र देने के लिए बाध्य कर दिया गया था । उन्होंने कांग्रेस से अलग होकर सन् १९४८ में 'समाजवादी दल' की स्थापना की थी ।

आज, आजादी के बीस-बाईस वर्ष बाद कांग्रेस पूरी तरह से पूँजीपतियों की संस्था बन गई है । आज कांग्रेसी साम्यवादियों, समाजवादियों आदि को देशद्रोही घोषित कर स्वयं को सच्चा देशभक्त कह कर प्रचार कर रहे हैं । जो कोई समझदार व्यक्ति पूँजीवाद का विरोध करता है, पूँजीपतियों के सारे अखबार और समर्थक हाथ धोकर उसके पीछे पड़ जाते हैं । आज भारत का सामान्य और शोषित नागरिक स्पष्ट शब्दों में यह कहने लगा है कि देश में व्यापारियों का राज्य है । इसी कारण मँहगाई और भ्रष्टाचार दिन-प्रति-दिन बढ़ते चले जा रहे हैं । यशपाल जैसे दूरदर्शी जागरूक साहित्यकारों ने कांग्रेस के इस छद्म रूप को बहुत पहले समझ लिया था और अपने साहित्य द्वारा उसका विरोध किया था । इसी कारण पूँजीपतियों के समर्थक आलोचकों ने

यशपाल का विरोध करते हुए उन्हें बदनाम करने का भरसक प्रयत्न किया था। अस्तु,

हम पीछे यशपाल द्वारा किए गए गांधीवाद-विरोध की बात कह रहे थे। यशपाल विचारों से मार्क्सवादी हैं इसलिए ईश्वर तथा परलोक आदि में विश्वास नहीं करते। गांधीजी की इन दोनों में ही गहरी आस्था थी। 'गांधी वाद की शव परीक्षा' शीर्षक अपनी पुस्तक में यशपाल ने 'परलोक का लोभ' की व्याख्या करते हुए लिखा था—"गांधीवादी 'परलोक के लोभ' या आध्यात्म के नाम से जिस विचारधारा या शाश्वत सत्य-अहिंसा का सन्देश देता है, इसका प्रयोजन वर्तमान सामन्तवादी और पूँजीवादी आर्थिक-व्यवस्था की पैदावार के साधनों पर व्यक्तिगत अधिकार की प्रणाली की रक्षा करना ही है।········भारतीयता के प्रति भारत के पूँजीवादियों और गांधीवादियों की श्रद्धा और उनका विदेशी विचारधारा और व्यवहार के प्रति क्रोध केवल समाजवादी विचारधारा और समाजवादी आर्थिक प्रणाली को अपना लेने वाले देशों के प्रति ही है।" अपने इस कथन द्वारा यशपाल इस सत्य का उद्घाटन कर रहे हैं कि गांधीवादी दर्शन अप्रत्यक्ष रूप से, आध्यात्म का आवरण ओढ़ पूँजी-वाद का ही समर्थक रहा है। इसी कारण यशपाल अपने कथा-साहित्य में भी प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूप से गांधीवाद का विरोध करते रहे हैं।

सामाजिक विचार—यशपाल के सामाजिक विचार भी मार्क्सवाद से प्रभावित हैं। मार्क्सवाद समाज में अर्थ (धन) के असमान विभाजन को ही मनुष्य के दुखों का मूल कारण मानता है। उसके अनुसार धन और व्यक्तिगत सम्पत्ति का संचयन करना ही समाज में भ्रष्टाचार और शोषण को जन्म देता है। धर्म इन शोषकों का सहायक बन अशिक्षित निर्धन जनता को अन्ध रूढ़ियों, अन्ध श्रद्धा, नरक का भय, स्वर्ग का आकर्षण आदि के बन्धनों में बाँधे रहता है। दूसरी तरफ शासन-तंत्र पर भी शोषकों का अधिकार रहता है। इस विषम वातावरण में जिस विषम समाज-व्यवस्था का जन्म होता है, यशपाल उसके घोर विरोधी रहे हैं। इसी कारण उन्होंने अपनी कृतियों में अन्ध-विश्वासों, रूढ़ियों, भ्रष्टाचार, शोषण, अत्याचार, धर्म, ईश्वर आदि का घोर विरोध किया है। मार्क्सवाद स्वतन्त्र और स्वस्थ यौन-सम्बन्ध पर बल देता हुआ वेश्यावृत्ति का घोर विरोध करता है। वह समाज में नर और नारी की समान स्थिति स्वीकार कर इस बात का विरोध करता है कि नारी को भोग की वस्तु माना

या बनाया जाय। नारी के प्रति यशपाल का भी लगभग यही दृष्टिकोण रहा है। परन्तु कहीं-कहीं वह नारी के सम्बन्ध में फ्रायडवादी भी बन गए है। कुछ आलोचकों ने यशपाल के इस फ्रायडवादी रूप को ही अधिक उभारने का प्रयत्न किया है, परन्तु यशपाल प्रेम को द्वन्द्वात्मक मानते हुए उसे जोवन की सफलता के लिए एक सशक्त सहायक मानते हैं। वह नारी के उस रूप के विरोधी हैं जिसमें नारो को बलात् गुलाम बना कर रखा है। मगर इस बात को स्वीकार करना पड़ेगा कि नर-नारी के सम्बन्धों में यशपाल फ्रायड से बहुत प्रभावित रहे हैं। इसी कारण उनके नारी-पात्र स्वस्थ नैतिकता से हीन और अशक्त बन कर रह गए हैं। यशपाल की इसी नारी-विषयक निर्बलता का विरोध करते हुए प्रसिद्ध प्रगतिवादी आलोचक डा० रामविलास शर्मा ने लिखा था—

"एक कम्युनिष्ट की हैसियत से मुझे 'पानी के गिलास की थ्योरी से जरा भी हमदर्दी नहीं, हालांकि उस पर 'प्रेम की तृप्ति' का सुन्दर लेबिल लगा हुआ है कुछ भी हो, यह प्रेम की मुक्ति न तो नयी है और न कम्युनिष्ट है। यशपाल के कथा-पात्रों में चरित्र की दृढ़ता नहीं जो पूँजीवादी अभिचार को चुनौती दे, जो सर्वहारा नैतिकता का एक आदर्श के रूप में जनता के सामने रखे।....वास्तव में स्वच्छ गिलास में जल पीने का सिद्धान्त पूँजीवाद का सिद्धान्त है, जिसे धनो लोग नित्य प्रति अमल में लाते हैं। उन्हें डर लगता है तो सिर्फ गन्दी नालियों की छूत लगने से। अगर स्वास्थ्य-विभाग स्वच्छ जल का सार्टीफिकेट दे दे तो उन्हें जलपान करने में कोई अड़चन न होगी। यह धारणा मार्क्सवाद की स्थापनाओं के बिल्कुल विपरीत है। ऐसा मानना होगा।"

(यहाँ 'स्वच्छ गिलास में जल पीने' से अभिप्राय यह है कि पुरुष को ऐसी नारी के ही साथ यौन-सम्बन्ध स्थापित करने चाहिए जिसे कोई गुप्त या बुरी बीमारी न हो।)

यशपाल ईश्वर, धर्म, जाति आदि में कोई आस्था नहीं रखते। वह ईश्वर, ईश्वर पर आधारित धर्म और धर्म के ठेकेदारों पंडे-पुजारियों, मुल्ला-मौलवियो पादरियों आदि सभी को स्वार्थी और जनता का शोषण करने वाला मानते है। इसी कारण वह धर्म पर आधारित रीति-रिवाजों, सामाजिक नियमों, जाति-पाँति, लोक-परलोक आदि सम्बन्धी विश्वासों और परम्पराओं के भी घोर विरोधी हैं।

राष्ट्रीय चेतना की अभिव्यक्ति—यशपाल का साहित्य अपने सम-सामयिक युग की राष्ट्रीय चेतना को अभिव्यक्त करता रहा है । इस राष्ट्रीय चेतना के अनेक पक्ष रहे हैं, जैसे—राजनीतिक गुलामी, आर्थिक शोषण, वर्ग-विषमता, अन्ध रूढ़ियों से मुक्ति आदि । उन्होंने प्रेमचन्द की कथा-परम्परा को विकास देते हुए समाज और व्यक्ति के जीवन की विभिन्न समस्याओं, मानसिक द्वन्द्वों और अनुभूतियों का वर्ग-विषमता के सन्दर्भ में सशक्त और सचेतन चित्रण किया है । उन्होंने सामाजिक और वैयक्तिक जीवन की विकृतियों का खुला, यथार्थपरक और निर्मम चित्रण कर, उन विकृतियों को जन्म देने वाले मूल कारणों को दूर करने की एक नई क्रान्तिकारी चेतना का स्वर बुलन्द किया था । यहाँ राष्ट्रीय चेतना' शब्द से हमारा अभिप्राय देशभक्ति की भावना-मात्र से न होकर राष्ट्र के जीवन में व्याप्त उस चेतना से है जो सभी प्रकार की असमानता, शोषण और अत्याचार से मुक्ति पाने के लिए युगों से छटपटाती चली आ रही है । यशपाल ने भारतीय जनता की इसी भौतिक और मानसिक स्थिति का अध्ययन कर, परम्परागत रूढ़ और गतिहीन जीवन-मूल्यों, आस्थाओं, नैतिक मान्यताओं आदि का विरोध करते हुए नए, गतिशील जीवन-मूल्यों पर बल दिया है । क्योंकि परिस्थितियों के बदलने से पुराने नैतिक मूल्यों में जो जड़ता आ गई है, उसे दूर करना प्रगति के लिए जरूरी है । तभी समाज और जीवन स्वस्थ रूप धारण करने में समर्थ होगा ।

भौतिकवादी दृष्टिकोण—यशपाल मार्क्सवादी हैं, इसलिए जीवन और समाज के प्रति उनका दृष्टिकोण विशुद्ध भौतिकवादी है । इस सम्बन्ध उन्होंने अपने कहानी-संग्रह 'धर्मयुद्ध' की भूमिका में लिखा था—"जीवन का आधार भौतिक अथवा आर्थिक है । समाज की भावनाओं, रीति-रिवाजों और नैतिकता की बुनियादों तथा उनके विभिन्न रूपों का भी नियमन मानव-जीवन की भौतिक और आर्थिक परिस्थितियों और भौतिक और आर्थिक ढाँचे के अनुरूप ही होता है ।....समाज की आर्थिक समस्या के बहुमुखी होने के कारण अनेक पहलुओं से उस व्यवस्था की ओर ध्यान जाना स्वाभाविक है । अनेक पहलुओं से इस व्यवस्था की विषमता के मूल की ओर पहुँचा जा सकता है, और इस व्यवस्था पर आघात किया जा सकता है; और किया जाना चाहिए ।" यशपाल ने अपने साहित्य में यही प्रयत्न किया है । इस सम्बन्ध में एक बात विशेष रूप से द्रष्टव्य है कि यशपाल किसी भी विचारधारा को युग की परिस्थितियों से उद्‌भुत

मानते हैं । अर्थात् कोई भी विचारधारा शाश्वत अतः सभी युगों में सर्वमान्य नहीं हो सकती । नए युग की बदलती हुई परिस्थितियाँ नई विचारधाराओं को जन्म देती हैं । अतः प्रत्येक विचारधारा को सामाजिक मनुष्य ही जन्म देता है । जीवन के अभाव में विचारों की कल्पना तक नहीं की जा सकती । सारे विचार जीवन की परिस्थितियों के परिणाम और जीवन के सहायक होते हैं । नए युग की नई परिस्थितियों ने यूरोप में मार्क्सवादी विचारधारा को जन्म दिया था । वही परिस्थितियाँ जब भारत में भी उत्पन्न होने लगी तो यहाँ भी उस विचारधारा का प्रभाव पड़ना स्वाभाविक था । परन्तु यह शोषण-विरोधी विचारधारा शोषक-वर्ग के स्वार्थों पर चोट करती है । इसीलिए पूँजीवादी इसका विरोध कर रहे हैं ।

साहित्य सम्बन्धी विचार—यशपाल की दृष्टि में साहित्य समाज का प्रतिविम्ब होता है । उसमें समाज के जीवन का चित्रण रहता है, इसलिए 'कला कला के लिए' सिद्धान्त को स्वीकार नहीं किया जा सकता । यशपाल के अनुसार कला जीवन से घनिष्ठ रूप से सम्बद्ध है । साहित्य समाज की वस्तु है और साहित्य के शाब्दिक अर्थ 'हितकर होना' से यह अभिप्राय है कि साहित्य समाज के लिए हितकर होना चाहिए । तभी उसकी सार्थकता है । साहित्य मानसिक रूप से समाज के हित- साधन का प्रयत्न करता है । अतः—"साहित्य द्वारा इस प्राप्ति में इसके ग्राह्य और अग्राह्य होने की कसौटी है, उसका समाज के लिए हितकर होना ।" और साहित्य द्वारा समाज का हित तभी सम्भव है जब इसमें समाज का यथार्थ रूप अंकित किया जाय । यशपाल आदर्शवाद के विरोधी हैं । उनका कहना है कि 'यथार्थ से खिन्न होकर ही हम आदर्श की ओर बढ़ना चाहते हैं ।' यहाँ तक तो बात ठीक है । परन्तु जब यशपाल यह कहते हैं कि— "हमारे यथार्थ का नग्न रूप केवल शिश्नोदर का चीत्कार है । वह श्रेणी संघर्ष और राष्ट्रों के संघर्ष के रूप में प्रकट होता है । वह जघन्य है परन्तु वह हमारी सामाजिक स्थिति की वास्तविकता है । हमारा साहित्य कला, नैतिकता और न्याय इस शिश्नोदर की आवश्यकता की पूर्ति के व्यापक और रूपान्तरित प्रयत्न हैं ।" तो यशपाल से सहमत नहीं हुआ जा सकता । (यहाँ 'शिश्नोदर' से अभिप्राय है यौन सम्बन्धों की तथा पेट की भूख ।) अपने इसी दृष्टिकोण के कारण-यशपाल अपने साहित्य में प्रायः इन्हीं दोनों प्रकार की भूख का चित्रण

करने तक ही सीमित होकर रह गए हैं। परन्तु उनके इस दृष्टिकोण को संकीर्ण ही माना जायेगा। इसके कारण वह व्यापक सांस्कृतिक और सौन्दर्य के पक्ष को पहचानने में असमर्थ रहे हैं। इसी कारण उनके साहित्य में नग्न अश्लील प्रसंगों की भरमार सी रही थी। यशपाल की इस प्रवृत्ति का अनेक प्रगतिवादी कलाकारों ने घोर विरोध किया था।

जब यशपाल के साहित्य में पाई जाने वाली अश्लीलता को लेकर प्रगतिवादी तथा अन्य विचारधाराओं वाले आलोचकों ने उनकी कटु अलोचना की तो यशपाल इस आरोप का खंडन करते हुए भी थोड़ा सा सम्हल गए। उनकी परवर्ती रचनाओं में, सन् १६५८ के आस-पास लिखी गई रचनाओं में अपेक्षाकृत अधिक संयम के दर्शन हुए हैं। उनका 'झूठा सच' नामक वृहद् उपन्यास इसका प्रमाण है। इसमें यौन-सम्बन्ध तो है, परन्तु उनमें वह नग्नता और अश्लीलता नहीं आ पाई है जो उनकी पहली रचनाओं में बहुतायत से मिलती है। अस्तु,

निष्कर्ष—यशपाल के साहित्य और विचारधारा के उपर्युक्त विश्लेषण के आधार पर हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि यशपाल मूलतः साम्यवादी विचारधारा के प्रगतिशील कलाकार हैं। हमने यशपाल की कहानियों का विवेचन करते हुए अपनी एक अन्य पुस्तक में लिखा था कि—

"उनके साहित्य-सृजन का मूल उद्देश्य समाज और व्यक्ति के जीवन में व्याप्त विकृतियों और विषमताओं का यथार्थवादी अंकन कर उनके उन्मूलन की प्रेरणा प्रदान करना रहा है। उनका विश्वास है कि आर्थिक विषमता ही हमारे जीवन को नारकीय बनाए हुए है, इसलिए वे कहीं स्पष्ट रूप में, और कहीं संकेत रूप में, वर्ग-संघर्ष को बढ़ावा देते हुए, इस आर्थिक विषमता का विरोध कर उसके उन्मूलन का स्वर बुलन्द करते रहे हैं। कहानी के सम्बन्ध में यशपाल का यह मन्तव्य उनके उद्देश्य को स्पष्ट कर देता है कि—'कहानी जीवन को समस्याओं को सुलझाने का साधन है।' इससे स्पष्ट हो जाता है कि यशपाल अपनी कहानियों के माध्यम से जीवन के यथार्थ का चित्रण करते हुए जीवन की समस्याओं का सुलझाव प्रस्तुत करते हैं। और यह सुलझाव साम्यवादी विचारधारा के अनुरूप है। यशपाल का मत है कि समाज से आर्थिक शोषण को समाप्त कर दीजिये, अन्य समस्याएँ और उलझनें अपने-आप सुलझ जायेंगी। यशपाल ने अपनी कहानियों के माध्यम से सामान्य जन-समाज

और समस्याओं का मिश्रण करते हुए उनको दूर करने का उपाय बताया और दूर करने की प्रेरणा प्रदान की है।''

यशपाल के कहानी-साहित्य के सम्बन्ध में प्रकट किए गए उपर्युक्त विचार उनके समस्त-साहित्य पर लागू होते हैं। उनके साहित्य में भारत की शोषित जनता उसके शोषण के कारण और उन कारणों को दूर करने के उपाय—सभी कुछ अत्यन्त प्रभावशाली और कलात्मक ढंग से चित्रित हुए हैं। यही उनके कथा साहित्य की विशिष्ट उपलब्धि है।

यशपाल का उपन्यास-साहित्य—अपनी इस पुस्तक में हमारा मूल विवेच्य यशपाल का उपन्यास 'झूठा सच' है इसलिए हम उसे समझने के लिए पहले यशपाल के सम्पूर्ण उपन्यास-साहित्य का एक संक्षिप्त-सा सर्वेक्षण कर लेना उचित समझते हैं। अभी तक यशपाल के कुल मिला कर आठ उपन्यास प्रकाशित हुए हैं, जो क्रमानुसार इस प्रकार हैं—दादा कामरेड, देशद्रोही, दिव्या, पार्टी कामरेड, मनुष्य के रूप, अमिता, और झूठा सच। इनके अतिरिक्त उनका एक और उपन्यास है—'बारह घन्टे'। इनमें से दो ऐतिहासिक उपन्यास हैं—'दिव्या' और 'अमिता'। शेष राजनीतिक सामाजिक उपन्यास है। इनमें से 'दादा कामरेड' और 'पार्टी कामरेड' सिद्धान्त प्रधान राजनीतिक सामाजिक उपन्यास हैं। शेष वातावरण प्रधान राजनीतिक सामाजिक उपन्यास हैं। इन सभी को समष्टि रूप से सामाजिक उपन्यास ही कहा जाता है। इस सम्बन्ध में यह द्रष्टव्य है कि यशपाल के सामाजिक उपन्यासों में राजनीतिक चिन्तन और राजनीतिक वातावरण को प्रमुख स्थान मिला है। इनके दोनों ऐतिहासिक उपन्यासों की भी यही स्थिति है। उनमें भी ऐतिहासिक कल्पना के माध्यम से यशपाल का राजनीतिक चिन्तन ही मुखर हुआ है। ये दोनों ऐतिहासिक उपन्यास ऐतिहासिक घटनाओं और पात्रों पर आधारित न होकर विशुद्ध रूपेण काल्पनिक घटनाओं और काल्पनिक पात्रों पर आधारित हैं परन्तु ऐतिहासिक सत्य का पूर्णाभास प्रदान करते हैं। यशपाल के सम्पूर्ण उपन्यासों से यही ध्वनि निकलती है कि मानवता का उद्धार केवल साम्यवाद की स्थापना द्वारा ही सम्भव है। साम्यवाद को न समझने वाले पाठक हमारी इस बात को पढ़ कर यशपाल के प्रति गलत धारणा बना सकते हैं, क्योंकि उन्हें यही बताया जाता रहा है कि साम्यवाद एक ऐसा हौआ जो सम्पूर्ण भारतीयता को समाप्त कर देगा। ऐसे पाठकों से

हम विनम्र अनुरोध करेंगे कि वह साम्यवाद को समझने के लिए साम्यवाद-सम्बन्धी सैद्धान्तिक ग्रन्थों का अध्ययन न कर यशपाल के उपन्यासों के माध्यम से उसे समझने का प्रयत्न करें। क्योंकि सरल मति पाठक कथा-साहित्य के माध्यम द्वारा किसी भी सिद्धान्त को अच्छी तरह समझ लेते हैं।

इसके साथ ही हम यह बात भी स्पष्ट कर देना चाहते हैं कि यशपाल ने अपने उपन्यासों में साम्यवाद का जो रूप अंकित किया है, उसे ही पूर्ण और सर्व सम्मत नहीं माना जा सकता। जहाँ तक आर्थिक और राजनैतिक पक्षों का सम्बन्ध है, यशपाल ने उनका चित्रण साम्यवादी सिद्धान्त के अनुसार ही किया है। परन्तु समाज में पुरुष और नारी के सम्बन्धों का चित्रण करते समय यशपाल साम्यलाद के स्वस्थ, प्रगतिशील पथ से हट फ्रायड की कुंठावादी संकीर्ण गलियों में भटकते फिरे हैं। अस्तु,

मूल चेतना: मार्क्सवादी—यशपाल के समस्त उपन्यास-साहित्य की मूल-चेतना मार्क्सवादी रही है। उन्होंने अपने उपन्यासों में मार्क्सवादी यथार्थपरक सामाजिक और राजनीतिक दृष्टिकोण पर आधारित रह, जीवन की सम्पूर्ण विविधताओं और बहुपक्षी संघर्ष का चित्रण किया है। आर्थिक विषमता जन्य वर्ग-संघर्ष इनका मूल स्वर रहा है। हमने अपनी 'हिन्दी साहित्य का विवेचनात्मक इतिहास' नामक पुस्तक में यशपाल का मूल्यांकन करते हुए लिखा है कि—

"प्रेमचन्द के उपरान्त यशपाल के उपन्यास बहुत लोकप्रिय रहे थे। वस्तुतः प्रगतिवादी उपन्यासों को जनप्रिय बनाने का श्रेय इन्हीं के उपन्यासों को मिलना चाहिए।''''यशपाल के उपन्यासों में आधुनिक यथार्थ जीवन, समाजवादी दर्शन और सोद्देश्य क्रान्ति के सन्देश के साथ औपन्यासिक कला और भाषा-शैली के भी नए यथार्थवादी रूप उभरे हैं। उद्देश्य की दृष्टि से यशपाल को प्रेमचन्द की परम्परा का उपन्यासकार माना जा सकता है।"

मूलतः मध्यवर्गीय जीवन के चितेरे—ऊपर हमने यशपाल को प्रेमचन्द की परम्परा का उपन्यासकार कहा है। परन्तु प्रेमचन्द और यशपाल द्वारा अपनाए गए क्षेत्रों में अन्तर है। प्रेमचन्द साहित्य में भारतीय ग्राम्य-जीवन का चित्रण ही अधिक हुआ है। क्योंकि प्रेमचन्द का ग्राम्य-जीवन से घनिष्ठ सम्बन्ध रहा था। इसके विपरीत यशपाल भारतीय मध्यवर्गीय जीवन के

चितेरे हैं। वह स्वयं मध्यवर्ग के हैं। मध्यवर्ग के अभावों, विषमताओं, दुःख-दर्दों, संघर्षों और आशा-आकांक्षाओं का यशपाल को स्वयं तीखा और गहरा अनुभव रहा है। इसी कारण उन्होंने अपने कथा-साहित्य में मध्यवर्ग की असंगतियों, कमजोरियों, विरोधाभासों, रूढ़ियों आदि पर कस कर आघात किए हैं। वह दो परस्पर विरोधी परिस्थितियों की विषमता प्रदर्शित कर गहरा व्यंग्य कसने की कला में माहिर हैं।

यशपाल का औपन्यासिक शिल्प

विद्वानों ने उपन्यास-रचना के लिए छः तत्त्वों अथवा उपन्यास के छः अंगों या विशेषताओं का समावेश और निर्वाह आवश्यक माना है। ये छः तत्त्व इस प्रकार हैं—

(१) कथानक, (२) पात्र या चरित्र-चित्रण, (३) संवाद, (४) देशकाल, (५) भाषा-शैली, और (६) उद्देश्य।

अब हम इन्हीं तत्वों के आधार पर यशपाल के उपन्यासों को देखने और परखने का प्रयत्न करेंगे कि वह अपने उपन्यासों में इन तत्त्वों का किस सीमा तक और किस रूप में निर्वाह करने में समर्थ या सफल रहे हैं।

कथा-संगठन—उपन्यास एक कथा-प्रधान या कथा पर आधारित साहित्यिक रचना है। इसलिए उसमें कथा या कथानक का एक विशिष्ट स्थान है। उपन्यासकार एक कथा का, कल्पित या ऐतिहासिक कथा का, सहारा ले उसके माध्यम से मानव-जीवन की घटनाओं, क्रिया-कलापों, भावनाओं, विचारों आदि को एक विशिष्ट, रोचक और निश्चित क्रम के अनुसार संगठित कर, उनके माध्यम से अपनी बात कहता है। इसलिए कथानक का सुगठित, रोचक और प्रभावशाली होना अत्यन्त आवश्यक है। उपन्यास में प्रायः अधिकारिक और प्रासंगिक—दोनों प्रकार की कथाएँ रहती हैं परन्तु एक सफल उपन्यास के लिए यह आवश्यक है कि ये दोनों प्रकार की कथाएँ परस्पर प्रगाढ़ रूप से सम्बद्ध रहनी चाहिए।

कथा-संगठन या कथा-संयोजन की उपर्युक्त प्रधान विशेषताओं के आधार पर जब हम यशपाल के उपन्यासों को परखने का प्रयत्न करते हैं तो उन्हें सफल पाते हैं। उनके उपन्यासों की कथाएँ संगठित, सुनियोजित, रोचक और

प्रभावशाली हैं। वह उन कथाओं की घटना-शृंखलाओं के बीच-बीच स्वयं अथवा अपने पात्रों के मुँह से अपने विचारों को प्रकट करते चलते हैं। उनकी प्रधान अथवा आधिकारिक और प्रासंगिक कथाएँ परस्पर घनिष्ठ रूप से सम्बद्ध रहती हैं। वह कथानक की घटनाओं को एक-एक कर इस क्रम और कौशल के साथ प्रस्तुत करते चलते हैं कि पाठक यह अनुमान नहीं लगा पाता कि आगे कौन सी घटनाएँ घटेंगी या पात्र क्या कहेंगे या करेंगे। कथा कहने का यह कौशल कथा को निरन्तर रोचक, आकर्षक और चमत्कारपूर्ण बनाए रखता है। पाठक आगे की कथा को जानने के लिए निरन्तर उत्सुक बना रहता है। इसे उपन्यासकार की एक बहुत बड़ी विशेषता माना जाता है। कथा-संगठन की दूसरी विशेषता यह है कि यशपाल अपने कथानकों का अन्त बड़ी नाटकीयता के साथ करते हैं। यह अन्त ऐसा होता है जिसका पहले से अनुमान लगा लेना असम्भव-सा है।

यशपाल के सभी उपन्यासों के कथानक चाहे वे सामाजिक हों अथवा ऐतिहासिक—पूर्णतः कल्पित होते हैं। हम पीछे कह आए हैं कि यशपाल की कल्पना अत्यन्त उर्वर और विशिष्ट है। वह अपनी इस उर्वर कल्पना का उपन्यास की कथा का चयन और निर्माण करने में खूब प्रयोग करते हैं। वह अपने सामाजिक उपन्यासों की कथाएँ समाज से ही चुनते हैं। कोई घटना, पात्र या विचार उन्हें प्रभावित या आन्दोलित करता है। बस, वह अपनी कल्पना द्वारा कथानक का ढाँचा तैयार कर, उसके माध्यम से अपने विचार को अभिव्यक्त कर देते हैं। उनकी ये कल्पित कथाएँ इतनी स्वाभाविक और यथार्थ रूप में प्रस्तुत होती हैं कि हम यह सोचने लगते हैं कि यशपाल ने किसी सत्य-कथा या घटना को ही चित्रित कर दिया है। अपने द्वारा कही गई कथा के प्रति अपने पाठकों का यह विश्वास प्राप्त कर लेना कि उपन्यासकार सच्ची कथा कह रहा है, उपन्यासकार की बहुत बड़ी सफलता मानी जाती है। कथा कहने का यह अद्‌भुत कौशल यशपाल के ऐतिहासिक उपन्यासों में और भी अधिक उभरा है। उनके दोनों ऐतिहासिक उपन्यासों की कथाएँ पूर्ण कल्पित हैं। परन्तु उन्होंने उन कथाओं को उपयुक्त ऐतिहासिक वातावरण का निर्माण कर इतने कौशल के साथ कहा है कि वे सचमुच ऐतिहासिक कथाएँ ही प्रतीत होती हैं।

रोचकता यशपाल के उपन्यासों की एक उल्लेखनीय विशेषता है। वह घटनाओं को नाटकीय मोड़ देते हुए उनकी रोचकता को बढ़ाते और नए-नए रूप देते चलते हैं। साथ ही उनके सभी उपन्यासों में प्रेम-प्रसंगों का प्रचुर समावेश सामान्य पाठक को अपने आकर्षण में निरन्तर उलझाए रहता है। पाठक यशपाल के उपन्यासों को पढ़ते हुए ऊबता नहीं। और यशपाल उस रोचक वातावरण में अपने विचारों को, राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक विचारों को बड़े कौशल के साथ प्रस्तुत करते चले जाते हैं। इसमें सन्देह नहीं कि मूलतः यशपाल के उपन्यास उनके विचारों के ही वाहक हैं। उन्होंने कथा द्वारा पाठकों का मात्र मनोरंजन करने के लिए उपन्यास नहीं लिखे हैं। वह अपने उपन्यासों के माध्यम से अपने क्रान्तिकारी विचारों को पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करते रहे हैं। विचार-प्रधान उपन्यास प्रायः नीरस होते हैं। इसे यशपाल के औपन्यासिक शिल्प की एक बहुत बड़ी उपलब्धि और सफलता माना जाना चाहिए कि उनके उपन्यास विचार-प्रधान होते हुए भी रोचक और आकर्षक हैं। अतः कथा-संगठन की दृष्टि से यशपाल के सभी उपन्यास सफल रहे हैं।

पात्र या चरित्र-चित्रण—कथानक के ही समान उपन्यास में पात्रों का भी विशिष्ट स्थान रहता है। उपन्यासकार विभिन्न पात्रों के माध्यम से ही उपन्यास की कथा कहता है। इसलिए उपन्यास में पात्रों का होना अनिवार्य है। वे उपन्यास अधिक कलापूर्ण माने जाते हैं जिनमें उपन्यासकार स्वयं अपने विचारों को अभिव्यक्त न कर उन्हें पात्रों के क्रिया-कलापों और पारस्परिक बातचीत द्वारा प्रस्तुत करता है। पात्रों का चित्रण करते समय उपन्यासकार कहीं उनके भावों, विचारों, प्रवृत्तियों आदि का स्वयं सूक्ष्म विश्लेषण करता हुआ चलता है और कहीं पात्रों में ही जीवन डाल उन्हें स्वयं संघर्ष करने के लिए छोड़ देता है। ऐसी स्थिति में पात्र स्वयं ही अपने चरित्र को और उस चरित्र द्वारा उपन्यासकार के विचारों को स्पष्ट करते हुए आगे बढ़ते रहते हैं। यशपाल ने पात्रों का चरित्र-चित्रण करते समय इन दोनों ही पद्धतियों का सफलतापूर्वक प्रयोग किया है। हम पीछे यशपाल के साहित्य के सम्बन्ध में कह आए हैं कि यशपाल मूलतः समाज के मध्यवर्ग के ही चितेरे हैं। इसलिए उनके उपन्यासों के अधिकांश और प्रधान पात्र मध्यवर्ग के ही रहे हैं। उनके

ऐतिहासिक उपन्यासों में यद्यपि उच्चवर्ग के अनेक पात्र आए हैं परन्तु वहाँ प्रधानता मध्यवर्ग के पात्रों की ही रही है। यद्यपि उनमें कमकर और दासवर्ग के अनेक पात्र भी प्रमुखता पा गए हैं।

सामान्यतः पात्र दो प्रकार के होते हैं—व्यक्तित्व प्रधान, और वर्ग-प्रतिनिधि। यशपाल के उपन्यासों में ये दोनों प्रकार के पात्र मिलते हैं। इन दोनों प्रकार के पात्रों की यह विशेषता है कि उनमें व्यक्तित्व-प्रधान और वर्ग-प्रतिनिधि—दोनों प्रकार के पात्रों की विशिष्टताएँ परस्पर घुली-मिली रहती हैं। उनके व्यक्तित्व-प्रधान पात्र भी प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से किसी-न-किसी वर्ग का ही प्रतिनिधित्व करते हैं। इसके अतिरिक्त कुछ पात्र ऐसे भी हैं जिनका व्यक्तित्व अत्यन्त सामान्य और सपाट होता है। व्यक्तित्व-प्रधान पात्रों के चरित्र में परिवर्तन होता चलता है, सामान्य और सपाट व्यक्तित्व वाले पात्रों का चरित्र अन्त तक एकरस, अपरिवर्तनशील ही बना रहता है।

यशपाल के नारी-पात्र उनके मार्क्सवादी विचारों के अनुरूप व्यवहार करते हैं। कुछ नारी-पात्र पुरुषों के साथ कन्धे-से-कन्धा भिड़ा जीवन-संघर्ष में उतरते हैं। ऐसी नारियाँ अनेक पुरुषों से शारीरिक सम्बन्ध भी रखती हैं और इसे बुरा नहीं समझतीं। 'दादा कामरेड' की शैल और 'पार्टी कामरेड' की गीता ऐसी नारियाँ हैं जो पुरुष और नारी के समान अधिकारों का प्रतिनिधित्व करती हैं। परन्तु उनके 'देशद्रोही' उपन्यास की नारियाँ अशक्त और असहाय सी हैं। नारी-पात्रों के चित्रण में यशपाल कहीं-कहीं अश्लीलता की सीमा तक पहुँच जाते हैं। उनकी ऐसी नारियाँ फ्रॉयड के काम-कुंठा वाले सिद्धान्त के अनुरूप व्यवहार करती हैं। ऐसी नारियों को देख कर ऐसा आभास सा होता है कि उनके रूप में स्वयं यशपाल की अपनी काम-कुंठाएँ अभिव्यक्ति पाती रही हैं। अनेक प्रगतिवादी आलोचकों ने इसके लिए यशपाल की काफी भर्त्सना की है।

यशपाल के पात्रों की एक विशेषता या निर्बलता यह है कि उनका स्वतन्त्र अस्तित्व नहीं रहा है। उपन्यसकार ने उन्हें सर्वत्र अपने विचारों की अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया है। इसलिए उनका रूप कहीं-कहीं उपन्यासकार के हाथ में नाचने वाली कठपुतलियों जैसा कृत्रिम और प्रभावहीन हो गया है। पात्रों की यह एक बहुत बड़ी विशेषता मानी जाती है कि वे उपन्यासकार की कठपुतली

न बन, अपने व्यक्तित्व के प्रभाव से उपन्यासकार को ही अपने इशारों पर नचाते रहें। ऐसे पात्र ही जीवन्त और प्रभावशाली माने जाते हैं। यशपाल के पात्रों में हमें व्यक्तित्व का यह प्राधान्य और शक्ति नहीं मिलती। फिर भी उनके कुछ पात्र इतने आकर्षक और प्रभावाली बन पड़े हैं कि उन्हें भुला देना सहज नहीं।

सम्वाद—उपन्यासों में सम्वाद, वार्तालाप या कथोपकथन का भी अपना विशिष्ट महत्व होता है ! सम्वादों का मुख्य कार्य पात्रों के चरित्र-चित्रण में तथा कथा को विकसित करने में सहायता देना माना गया है। वही सम्वाद सफल माने जाते हैं जो इन दोनों कार्यों में सहायता करते हैं तथा पात्र और परिस्थिति के अनुरूप और अनुकूल होते हैं। सम्वादों का प्रयोग करते समय इस बात का विशेष ध्यान रखना जरूरी है कि सम्वाद लम्बे और भाषणों जैसे नीरस तथा उबा देने वाले न हों। यशपाल के कुछ उपन्यासों में लम्बे और नीरस सम्वादों का उपयोग हुआ है, जैसे 'दादा कामरेड' में। इसके विपरीत 'देशद्रोही' के सम्वाद छोटे-छोटे और सुन्दर हैं। यशपाल के पात्र कहीं-कहीं गाली-गलौज भरे अश्लील सम्वादों का प्रयोग करने में भी नहीं चूकते। उनके पात्र वहाँ बड़ा 'बोर' करते हैं जहाँ राजनीतिक विचारों सम्बन्धी भाषण सा देने लगते हैं। सम्वादों की दृष्टि से यशपाल के 'पार्टी कामरेड', 'दिव्या', 'अमिता' और 'झूठा सच' उपन्यासों को सफल माना जा सकता है। इनमें प्रयुक्त हुए सम्वाद पात्रानुकूल, परिस्थिति के अनुरूप, संक्षिप्त, अर्थगर्भित, व्यंग्यपूर्ण और चुस्त हैं। यही सफल सम्वादों की विशेषताएँ मानी गई हैं। समष्टि रूप से सम्वादों के प्रयोग की दृष्टि से यशपाल के उपन्यासों को सफल माना जा सकता है।

देश काल या वातावरण—सामाजिक उपन्यासों में सामान्य रूप से और ऐतिहासिक उपन्यासों में विशेष रूप से देश काल या वातावरण-चित्रण का महत्त्व माना गया है। देशकाल या वातावरण से अभिप्राय यह है कि उपन्यासकार जिस देश, प्रान्त या काल का वर्णन कर रहा हो उसका अंकन पूर्णतः उस देश और काल के अनुरूप ही होना चाहिए। यदि उपन्यास की कथा आधुनिक काल से सम्बन्धित है तो उसमें आधुनिक युग के वातावरण का ही चित्रण होना चाहिए और यदि कथा किसी विशिष्ट देश, या प्रान्त तथा इतिहास के

किसी विशिष्ट काल-खण्ड से सम्बन्धित है तो उसमें उसी देश और इतिहास के काल-खण्ड के अनुरूप चित्रण होना चाहिए। इस वातावरण-चित्रण में वर्णित देश या काल-खण्ड में प्रचलित रीति-रिवाजों, रहन-सहन, वेश-भूषा, खान-पान, उत्सव-त्यौहारों, सामाजिक-राजनीतिक-आर्थिक-धार्मिक आदि विभिन्न परिस्थितियों का यथानुरूप चित्रण किया जाता है। इसी को देश-काल या वातावरण-चित्रण कहते हैं।

यशपाल इस कला में माहिर हैं। 'दादा कामरेड' में समकालीन राजनीतिक तथा सामाजिक परिस्थितियों का सुन्दर अंकन हुआ है। 'देशद्रोही' में उन्होंने अपनी कल्पना द्वारा वजीरिस्तान, अफगानिस्तान, रूस आदि विदेशों के निवासियों के रहन-सहन, वेश-भूषा, बोल-चाल आदि का ऐसा सुन्दर और यथार्थ चित्रण किया है कि उसे पढ़कर राहुल जी ने यह कहा था कि ऐसा यथार्थ और स्वाभाविक चित्रण इन देशों को स्वयं देखकर भी करना कठिन है, जबकि यशपाल ने उस समय तक इन देशों को कभी देखा तक न था। 'झूठा सच' में उन्होंने विभाजन से आसन्न पूर्व और विभाजन के समय का लाहौर आदि का जो चित्रण किया है, वह उस सम्पूर्ण दृश्य को हमारे मानस-नेत्रों के सामने प्रत्यक्ष कर देता है। इसी प्रकार उन्होंने 'मनुष्य के रूप' उपन्यास में कांगड़ा के प्रकृति-सौन्दर्य और बम्बई के मजदूरों के निवास-स्थानों का बड़ा यथार्थ और प्रभावशाली अंकन किया है। यशपाल के ऐतिहासिक उपन्यासों में तो उनके वातावरण-निर्माण की क्षमता का चरम उत्कर्ष दिखाई देता है। इन दोनों उपन्यासों में उन्होंने बौद्धकालीन भारत का ऐसा प्रभावशाली चित्रण किया है कि कथाएँ नितान्त कल्पित होती हुई भी ऐतिहासिक सत्य से ओतप्रोत हो उठी हैं। अतः वातावरण-चित्रण की दृष्टि से यशपाल के उपन्यासों को पूर्ण सफल और श्रेष्ठ कोटि का माना जा सकता है।

भाषा-शैली—भाषा साहित्य का शरीर है और शैली उसका शृंगार। इन दोनों के घनिष्ठ सहयोग से ही अरूप साहित्य स्वरूपवान बनता है। इसलिए किसी भी साहित्यिक रचना की सफलता-असफलता उसमें प्रयुक्त भाषा और शैली के रूप पर बहुत कुछ निर्भर करती है। उपन्यासों के सम्बन्ध में भी यही बात लागू होती है। यशपाल यथार्थवादी धारा के उपन्यासकार हैं, इसलिए उनके उपन्यासों में प्रयुक्त भाषा और शैली का रूप भी यथार्थवादी ही रहा

है। वह अपने उपन्यासों में वर्णित वातावरण के अनुरूप भाषा का प्रयोग करने में निपुण हैं। 'दादा कामरेड' की कथा आधुनिक युग के राजनीति-प्रधान सामाजिक वातावरण से सम्बन्धित है इसलिए इसमें जन-सामान्य में प्रयुक्त ऐसी भाषा का प्रयोग किया गया है जिसमें हिन्दी, उर्दू, अंग्रेजी आदि के प्रचलित शब्दों का खुला रूप मिलता है। स्थानीय वातावरण प्रस्तुत करने के लिए 'देशद्रोही' में यथावसर थोड़े से पश्तो भाषा के शब्द भी आ गए हैं। इसके विपरीत 'दिव्या' की कथा प्राचीन बौद्ध-युग से सम्बन्धित रही है, इसलिए उसमें अनुकूल वातावरण उत्पन्न करने के लिए संस्कृत के तत्सम और अर्द्ध-तत्सम शब्दों का प्राचुर्य रहा है। शैली भी अधिक प्रांजल और सुष्ठु हो उठी है। इस भाषा और शैली की विशेषता यह है कि यह संस्कृत-गर्भित होते हुए भी क्लिष्ट और बोझिल नहीं बन पाई है। 'दिव्या' से एक उद्धरण प्रस्तुत है—

"छिले हुए कदली के सदृश्य स्निग्धवर्ण दासी ने निःशब्द पदों से कक्ष में प्रवेश किया। उसका वेश और रूप रुचिर था। ग्रीवा से एक मुक्तावली और नए स्फुटित मालती कुसुमों की मालाएँ, गुलाबी कौशेय पट से पीठ पीछे बँधे सुगोल उरोजों पर झूल रही थीं। निरावरण क्षीणोदर की त्रिवली से कटि की ओर उठता हुआ वर्तुल उभार। कटि पर पीत कौशेय शाटक मुक्तावली की मेखला से सम्हालता हुआ। उसके कोमल बाहुओं पर मुक्तावली के अंगद और वलय थे। उन्मुक्त सुगन्धित केश मुक्तावलियों से गुँथे हुए थे। शरीर पर कठोर स्पर्श स्वर्ण आदि धातु नहीं, केवल शीतल सुखद स्पर्श मुक्ता थे।"

उपर्युक्त उद्धरण में संस्कृत के अनेक शब्दों का प्रयोग हुआ है परन्तु ये शब्द ऐसे नहीं हैं जिन्हें सर्वथा अप्रचलित माना जाय। इस भाषा को समझने में सामान्य पाठक को भी कोई विशेष कठिनाई नहीं होती। शैली के प्रवाह ने इस वर्णन में एक अद्‌भुत प्रांजलता उत्पन्न कर दी है। यह भाषा 'चित्ताकर्षक, काव्यात्मक और अलंकृत है।

यशपाल की भाषा और शैली का दूसरा रूप, जिसमें आधुनिक बोलचाल की भाषा का प्रयोग हुआ है, संस्कृत के तत्सम शब्दों के बाहुल्य से मुक्त है। उसमें उन्हीं शब्दों का प्रयोग किया गया है जिन्हें हम प्रतिदिन व्यवहार में लाते हैं। इसमें हिन्दी, उर्दू, अंग्रेजी के प्रचलित शब्दों का उन्मुक्त भाव से

प्रयोग हुआ है। 'दादा कामरेड' से ऐसी ही भाषा का एक उद्धरण प्रस्तुत है—

"'न, न, विवाह बन्धन नहीं',—बीच में टोक कर हरीश ने कहा—'विवाह एक लाइसेन्स या परवन्ना है। बन्धन तो वास्तव में यह है कि समाज में कोई पुरुप किसी स्त्री से कोई सम्बन्ध नहीं रख सकता। परन्तु जब इस ढंग से काम नहीं चलता तब एक पुरुष को एक स्त्री के लिए परवन्ना या लाइसेंस दे दिया जाता है कि वे परस्पर सम्बन्ध पैदा करें।"

यशपाल की भाषा के उपर्युक्त दो रूप यह सिद्ध करने के लिए पर्याप्त हैं कि वह देश, काल और वातावरण के अनुरूप उपयुक्त भाषा का प्रयोग करने में समर्थ और कुशल हैं। उपर्युक्त दूसरे उद्धरण में उनकी भाषा और शैली—दोनों रूप बदले हुए हैं। इसमें व्यंग्य खूब उभरा है। पहले उद्धरण में एक बौद्ध कालीन सामन्ती व्यवस्था में रहने वाली दासी के नख-शिख और रूप-सज्जा का अलंकृत वर्णन हुआ है।

व्यंग्य—व्यंग्य, वक्रोक्ति और आक्रोश यशपाल की भाषा-शैली की अन्य विशेषताएँ हैं। वह हास्य की अवतारणा करने में उतने सफल नहीं हुए हैं जितने कि व्यंग्य कसने में। उनके व्यंग्य सदैव सोद्देश्य होते हैं और अपने निशाने पर करारी चोट करते हैं। उनका आक्रोश उनके व्यंग्यों में अभिव्यक्ति पाता रहा है। इस आक्रोश की अभिव्यक्ति भावात्मक न होकर बौद्धिक होती है, जिसे व्यंग्य की विशेषता माना जाता है। यशपाल व्यंग्य का प्रयोग साधन रूप में करते हैं। यह उनकी रचना-प्रक्रिया का अभिन्न अंग है। इनके व्यंग्य में अधिक वक्रता न होकर, वह सीधा और सपाट मगर तिलमिला देने वाला होता है। 'दिव्या' से इस प्रकार का एक उदाहरण प्रस्तुत है। उसमें प्रतूल नामक एक पात्र दास-प्रथा पर व्यंग्य कसता हुआ अपने मित्र भूधर से कहता है—

"क्या कहते हो मित्र ? क्या तुम उसके अवयवों का लास्य, उसका चम्पा-कली सा वर्ण नहीं देखते ? गर्भिणी होने के कारण मलिन है तो क्या ? यह नहीं देखते कि एक के मूल्य में दो जीव पा रहे हो।···मणिक पर धूल रहने से क्या वह मणिक नहीं रहता ? उसके नेत्र और वर्ण····शुद्ध द्विजरक्त को लजाते हैं।····मैं जानता हूँ, चार मास पश्चात् तुम उसके पाँच सौ स्वर्ण मुद्रा पाओगे।'

यहाँ बौद्धकालीन दास प्रथा पर व्यंग्य कसते हुए एक गर्भिणी सुन्दर दासी की खरीद के प्रसंग का वर्णन किया जा रहा है। यशपाल के ऐसे ही सीधे-सपाट व्यंग्य उनकी कहानियों में भी उभरे हैं। 'जबरदस्ती' कहानी में नारी की दासता पर व्यंग्य करते हुए कहा गया है कि—"मैं जबरदस्ती में विश्वास नहीं रखता और स्त्रियाँ पसन्द करती हैं केवल जबरदस्ती। इनका अच्छा या बुरा काम सब जबरदस्ती में होता है। धर्म और पुण्य भी जबरदस्ती करवाने पर करती हैं, पाप करती हैं तो भी मजबूर होकर।" 'पुनिया की होली' कहानी में वह उपमा का प्रयोग करते हुए आर्थिक विषमता पर व्यंग्य कसते हैं कि—"स्लम्स में रहने वाले लोग सभ्य मनुष्य-समाज की दृष्टि में फलों से उतारे छिलके की भाँति बेकार होते हैं।" यशपाल सामाजिक रूढ़ियों, मान्यताओं, विषमताओं के खोखलेपन का उद्घाटन इसी प्रकार के तीखे व्यंग्यों द्वारा करने में सिद्धहस्त हैं।

समष्टि रूप से यशपाल की भाषा-शैली सशक्त, प्रभावपूर्ण, चुस्त, व्यंग्य-वक्रोक्ति से परिपूर्ण और वर्ण्य-विषय के नितान्त अनुकूल रहती है। उन्हें इस दृष्टि से हिन्दी का एक अत्यन्त सफल कलाकार माना जा सकता है। सरलता और सुबोधता उनकी भाषा-शैली की सर्व-प्रधान विशेषता है।

उद्देश्य—प्रत्येक कलाकार किसी-न-किसी उद्देश्य को लेकर रचना करने बैठता है। किसी का उद्देश्य मनोरंजन करना मात्र रहता है परन्तु जागरूक और सशक्त कलाकार अपनी रचनाओं के माध्यम से अपनी विचारधारा और दृष्टिकोण को ही प्रस्तुत करते हैं। यशपाल क्रान्तिकारी हैं, कर्म और विचार दोनों से। वर्तमान समाज-व्यवस्था और राजनीति में उनकी गहरी अनास्था है। वह इन दोनों ही क्षेत्रों में आमूल क्रान्तिकारी परिवर्तन के आकांक्षी हैं। विचारों से वह मार्क्सवादी हैं। उनकी धारणा ही नहीं अपितु दृढ़ विश्वास है कि मार्क्सवाद द्वारा ही वर्तमान विषम समाज-व्यवस्था, अर्थनीति और राजनीति का उन्मूलन कर मानव को सुखी, स्वस्थ और सच्चे अर्थों में मानव बनाया जा सकता है। अपने उपन्यासों द्वारा उन्होंने अपने इसी उद्देश्य को समाज के सम्मुख प्रस्तुत किया है। वह चाहते हैं कि समाज के सर्वहारा वर्ग को सभी प्रकार के शोषणों और अत्याचारों से मुक्ति मिले। समाज में सब का समान स्थान, कर्त्तव्य और अधिकार रहे। इसके लिए वह गांधीवादी अहिंसक

क्रान्ति के मार्ग को न अपना कर सशस्त्र हिंसक क्रान्ति को ही एकमात्र मुक्ति का मार्ग मानते हैं। 'दादा कामरेड' के क्रान्तिकारी पात्र हरीश के माध्यम से उन्होंने अपने उद्देश्य को स्पष्ट अभिव्यक्ति देते हुए कहलाया है कि—

"हमारा विश्वास है कि प्रत्येक मनुष्य को अपने परिश्रम के फल पर पूर्ण अधिकार होना चाहिए। एक मनुष्य द्वारा दूसरे मनुष्य से, एक श्रेणी द्वारा दूसरी श्रेणी से, एक देश द्वारा दूसरे देश से, उसके परिश्रम का फल छीन लेना अनुचित है, अन्याय है, अपराध है। यह समाज में निरन्तर होने वाली भयंकर हिंसा और डकैती है। इस हिंसा और शोषण को समाप्त करना ही हमारे जीवन का उद्देश्य रहा है, उसी के लिए हमने प्रयत्न किया है।"

यह यशपाल का मूल उद्देश्य है। इसके साथ ही उन्होंने इस मूल उद्देश्य की प्राप्ति में बाधक अनेक सामाजिक मान्यताओं पर निर्मम प्रहार किए हैं। उन्होंने अपने सभी उपन्यासों में किसी-न-किसी रूप में नारी-समस्या को भी उठाया है। वह समाज के एक प्रधान और महत्त्वपूर्ण अंग नारी की मुक्ति के समर्थक हैं। वह उन मान्यताओं और परिस्थितियों के घोर विरोधी हैं जिनके कारण नारी को वेश्या बनने के लिए बाध्य होना पड़ता है। समाज की सभी प्रकार की विषमताओं को दूर करने के लिए यशपाल यह आवश्यक ही नहीं, अनिवार्य भी मानते हैं कि सबसे पहले समाज से आर्थिक विषमता को दूर किया जाय। इसके दूर हो जाने से अन्य विषमताएँ स्वतः ही दूर हो जायेंगी। उन्होंने अपने विभिन्न उपन्यासों द्वारा अपने इसी मूल उद्देश्य को अभिव्यक्ति प्रदान की है। उनके आरम्भिक उपन्यासों में यह उद्देश्य अधिक स्पष्ट और मुखर रहा है, परन्तु 'झूठा सच' तक आते-आते वह सपाट और स्पष्ट न रह कर व्यंजित अधिक बन गया है।

निष्कर्ष—समष्टि रूप से यशपाल की औपन्यासिक कला हिन्दी उपन्यास को एक नई दिशा देने वाली रही है। यह नई दिशा है—यथार्थवादी शैली के सामाजिक उपन्यासों की। यशपाल से पूर्व प्रेमचन्द इस धारा का प्रवर्त्तन कर चुके थे, परन्तु यशपाल ने राजनीति का गहरा पुट देकर उसे और अधिक मुखर, क्रान्तिकारी और यथार्थ रूप प्रदान कर दिया था। इसलिए यशपाल को प्रेमचन्द का समर्थ उत्तराधिकारी माना जा सकता है। उन्होंने हिन्दी-उपन्यास को एक

नई शक्ति, एक नई भाषा और नई शैली प्रदान की थी। यशपाल के उपन्यास हिन्दी-पाठकों में अत्यन्त लोकप्रिय रहे हैं। उनमें जनता ने अपने असन्तोष को मुखरित होते हुए देखा है, इसलिए उनका खुले हृदय से स्वागत किया है। रोचकता के साथ अपनी बात को स्पष्ट रूप से कह जाने की शक्ति यशपाल के कथा-साहित्य की एक दुर्लभ विशेषता रही है। प्रेमचन्द और यशपाल में प्रधान अन्तर यह रहा है कि प्रेमचन्द भावना और बुद्धि—दोनों स्तरों पर अपने पाठकों को झकझोर देते हैं। इसके विपरीत यशपाल केवल बौद्धिक स्तर पर ही प्रभावित करते हैं। यही प्रेमचन्द की महानता और यशपाल की निर्बलता रही है।

उपन्यास और यथार्थवाद

यथार्थ का महत्व—साहित्य में मानव-जीवन का चित्रण होता है। इस चित्रण के प्रधानतः दो रूप होते हैं – आदर्शवादी और यथार्थवादी। आदर्शवादी चित्रण वह होता है जिसमें उच्च आदर्शों की स्थापना कर यह बताया जाता है कि जीवन कैसा होना चाहिए। इसके विपरीत यथार्थवादी चित्रण में यह बताया जाता है कि जीवन दरअसल कैसा है ? इसके दो रूप होते हैं। कुछ यथार्थवादी साहित्यकार यथार्थ जीवन का चित्रण करते हुए यह बताते हैं कि उसे किस प्रकार और कैसा बनाना चाहिए। इन्हें आदर्श की ओर उन्मुख यथार्थवादी कहा जाता है। इसके विपरीत कुछ यथार्थवादी साहित्यकार जीवन कैसा है, केवल इतना ही चित्रण कर पाठकों में उस जीवन के प्रति असन्तोष उत्पन्न कर यह भावना जगाना चाहते हैं कि उन्हें उस जीवन को बदल कर सुखी और स्वस्थ जीवन का निर्माण करना चाहिए। कुछ लोग यह भी सुझाव दे देते हैं कि यह परिवर्तन किस प्रकार किया जा सकता है परन्तु कुछ लोग वर्तमान जीवन के प्रति केवल असन्तोष उत्पन्न करके ही रह जाते हैं। दोनों का अपना-अपना अलग महत्त्व है।

उपन्यास और यथार्थ—साहित्य की विभिन्न विधाओं में से उपन्यास और कहानी को ही सर्वाधिक रूप में यथार्थ का चित्रण करने वाली विधाएँ माना गया है। और इनमें से भी उपन्यास यथार्थवादी चित्रण में सबसे आगे रहता है। इस सम्बन्ध में डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी ने दृढ़ शब्दों में कहा है कि

"कविता यथार्थवाद की उपेक्षा कर सकती है, संगीत यथार्थ को छोड़ कर भी जी सकता है, पर उपन्यास और कहानी के लिए यथार्थ प्राण है।"

यशपाल को सामाजिक यथार्थवादी उपन्यासकार माना जाता है। इसलिए यशपाल के इस रूप को समझने के लिए हमें पहले यथार्थ के स्वरूप को और फिर यथार्थ और उपन्यास के पारस्परिक सम्बन्ध को समझ लेना जरूरी है।

यथार्थ क्या है—जीवन की सच्ची और वास्तविक अनुभूति यथार्थ है। जब साहित्य में इस अनुभूति को कलात्मक रूप में प्रस्तुत किया जाता है तो उसे यथार्थवाद कहते हैं। साहित्य में यथार्थवादी लेखक उसे माना जाता है जो मानव और समाज का काल्पनिक रूप प्रस्तुत न कर उनका वास्तविक रूप प्रस्तुत करता है। ऐसा करते समय वह अपनी भावुकता तथा अपनी वैयक्तिक अनुभूतियों को महत्व नहीं देता। उसका दृष्टिकोण पूर्णतः तथ्यवादी रहता है। वह अपने आसपास जो कुछ देखता और अनुभव करता है, उसका यथावत् चित्रण कर देता है। परन्तु इस चित्रण के पीछे लेखक की विचार-धारा मूल प्रेरणा रहती है। वह अपनी विचारधारा के अनुरूप ही यथार्थ का चित्रण और विश्लेषण करता है। साहित्य का चित्रण संश्लेषणात्मक होता है, नितान्त यथातथ्यपरक नहीं। इसलिए यथार्थवादी लेखक अपनी विचारधारा के अनुरूप विषय का चयन कर उसका चित्रण करता है, मात्र सभी बातों की गणना नहीं करता। यथार्थवादी सत्य का अंकन करता है, यह सही है। परन्तु साहित्य का सत्य वास्तविक सत्य के रूप से भिन्न होता है। इसलिए साहित्यकार वास्तविक सत्य को अपनी रुचियों, विचारधारा और अनुभूतियों का सहारा ले, उसे सजा कर प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत करता है। इसी कारण दो यथार्थवादी लेखकों द्वारा किए गए एक ही तथ्य के वर्णन परस्पर भिन्न होते हैं। अर्थात् यथार्थ के चित्रण में लेखक का अपना व्यक्तित्व और दृष्टिकोण प्रधान स्थान रखता है।

यथार्थ और लघुता—यथार्थवादी चित्रण बहुलांश में जीवन के दुःख, गरीबी, विषमता, अभाव आदि का ही चित्रण करता है। इस प्रकार उसका झुकाव जीवन के हीन, लघु रूप के प्रति अधिक रहता है। प्रेमचन्द ने यथार्थवाद के इसी रूप का विवेचन करते हुए लिखा था कि—"यथार्थवाद चरित्रों को पाठक के सामने उनके यथार्थ नग्न रूप में रख देता है। उसे

इससे कुछ मतलब नहीं कि सच्चरित्रता का परिणाम बुरा होता है या कुचरित्रता का परिणाम अच्छा। उसके चरित्र अपनी, कमजोरियाँ और खूबियाँ दिखाते हुए अपनी जीवन-लीला समाप्त करते हैं और चूँकि संसार में सदैव नेकी का फल नेक और बदी का फल बद नहीं होता, बल्कि उसके विपरीत हुआ करता है, नेक आदमी धक्के खाते हैं, यातनाएँ सहते हैं, मुसीबतें झेलते हैं, अपमानित होते हैं, उनको नेकी का फल उलटा मिलता है। प्रकृति का नियम विचित्र है।"

यही सब कुछ दिखाने के लिए यथार्थवादी मनुष्य की दुर्बलताओं, विषमताओं और क्रूरता आदि का अधिक चित्रण करता है। वह इस चित्रण द्वारा समाज में होने वाले अन्याय के प्रति असन्तोष की भावना जागृत करता है। उसका मूल लक्ष्य यह होता है कि उसके पाठक समाज की इस विषम स्थिति के प्रति असन्तोष व्यक्त करते हुए उसे दूर करने का उद्योग करें। इस प्रकार यथार्थवाद हमें निराशावादी न बना आशावादी बनाता है। वस्तुतः यथार्थवादी साहित्यकार समाज के दुख-दैन्य, विषमताओं आदि के मूल कारणों के प्रति संकेत करता हुआ उन्हें दूर करने की प्रेरणा प्रदान करता है। गरीबी, रूढ़ियाँ, अज्ञान आदि के कारण दीन, दलित मानव छटपटाता रहता है, दुःख सहता रहता है। समाज में ऐसे ही लोगों की संख्या सबसे अधिक है। यथार्थवाद का मूल ध्येय इनके दुखों और अभावों को दूर करने की प्रेरणा प्रदान करना है। इसीलिए यथार्थवादी साहित्य में समाज के इसी वर्ग का चित्रण प्रधान रहता है। क्योंकि यथार्थवाद शोषक और सम्पन्न वर्ग के प्रति असन्तोष और शोषित तथा निर्धन वर्ग के प्रति सहानुभूतिशील रहता है, इसलिए सामन्तवाद और पूँजीवाद यथार्थवाद का सदैव विरोध करते रहते हैं। इनके अतिरिक्त स्वभाव से दुर्बल और कोमल कुछ व्यक्ति भी, जो यथार्थ की कठोरता को नहीं झेल पाते, यथार्थ का विरोध करते हुए अपने आदर्श के स्वप्न-लोक में विचरण करते रहते हैं।

यथार्थ का वास्तविक रूप—यथार्थवाद की सबसे प्रमुख विशेषता यह है कि वह मनुष्य को समाज से भिन्न न मान मनुष्य और समाज को एक अभिन्न इकाई के रूप में ही देखता और मानता है। इसलिए वह व्यक्ति को महत्व न दे समाज को ही महत्व देता है। यथार्थवाद अपने युग और उस युग की

जनता की स्थिति, भावों, विचारों, संघर्षों, उपलब्धियों और अभावों का यथार्थ चित्रण करता है। जो लेखक ऐसा करने में समर्थ और सफल होता है, उसे ही महान साहित्यकार का गौरव मिलता है। साहित्य की विशेषता यह है कि वह प्रभावित करे। अर्थात् साहित्यकार अपनी बात को ऐसे आकर्षक और प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत करे कि पाठक उससे प्रभावित हो उठें। और अपनी बात द्वारा किसी दूसरे को प्रभावित करने के लिए प्रतिभा की जरूरत होती है। यथार्थवादी साहित्य लिखा ही इसलिए जाता है कि वह अपने पाठकों को यथार्थ स्थिति के प्रति जागरूक बना, उन्हें उस स्थिति की विषमताओं को दूर करने की प्रेरणा प्रदान करे। इसलिए यथार्थवादी साहित्यकार के लिए प्रतिभा का होना नितान्त आवश्यक है। वह इसी प्रतिभा द्वारा अपनी बात को आकर्षक और प्रभावशाली ढङ्ग से प्रस्तुत करता है। और अपनी रचना में आकर्षण और प्रभाव उत्पन्न करने के लिए कला का सहयोग नितान्त अपेक्षित होता है। इसलिए यथार्थवादी साहित्य और कला का अत्यन्त घनिष्ठ सम्बन्ध है। अतः यह कहना गलत और भ्रमपूर्ण है कि यथार्थवादी साहित्य की रचना के लिए कला का सहयोग आवश्यक नहीं है। विना कला के सहयोग के कोई भी रचना आकर्षक और प्रभावशाली नहीं बन सकती।

उपन्यास और यथार्थवाद का घनिष्ठ सम्बन्ध—यथार्थवाद का अंकन कविता, नाटक, निबन्ध आदि में भी होता रहा है और आज भी हो रहा है, परन्तु इसका सर्वाधिक घनिष्ठ सम्बन्ध कथा-साहित्य से ही रहा है। कथा-साहित्य में उपन्यास और कहानी दोनों आते हैं। उपन्यास आधुनिक युग की उपज है। यथार्थ जीवन के चित्रण का जितना अधिक अवकाश और अवसर उपन्यास में मिलता है, उतना साहित्य की अन्य किसी भी विधा में नहीं। इसलिए आधुनिक युग की जटिल और विषम परिस्थितियों में यथार्थ जीवन की अभिव्यक्ति के लिए उपन्यास को ही सर्वोत्तम साधन के रूप में स्वीकार कर लिया गया है। प्रेमचन्द ने उपन्यास की इसी उपयोगिता को लक्ष्य कर कहा था कि—"मानव-जीवन के विविध पक्षों का यथार्थ चित्र उपस्थित करने के लिए उपन्यास-साहित्य का क्षेत्र अन्य साहित्यिक रूपों से अधिक उपयुक्त है" डा० त्रिभुवनसिंह के अनुसार—"आधुनिक सामाजिक जटिलता ने अपनी

अभिव्यक्ति के लिए नवीन साहित्यिक रूप की आवश्यकता अनुभव की, जिसमें महाकाव्यों की सी व्यापकता तो हो, किन्तु पद्य का वन्धन न हो, इसलिए अधिक मुक्त तथा लचीले गद्य रूप उपन्यास की सृष्टि हुई।" उपन्यास की इसी व्यापकता को देख एक आलोचक ने उपन्यास को आधुनिक युग का महाकाव्य कहा था। उपन्यास में वर्तमान युग अपनी समग्र व्यापकता के साथ बड़ी सफलतापूर्वक अभिव्यंजित हो उठता है।

उपन्यासकार समाज का यथार्थ चित्रण किसी विशिष्ट उद्देश्य को अपने सामने रख कर करता है। वह इसके लिए व्यक्ति और समाज—दोनों की बाह्य और आन्तरिक (मानसिक) स्थितियों का चित्रण करता हुआ अपने पाठकों में उन स्थितियों के प्रति संवेदना जाग्रत करने का प्रयत्न करता है। डाक्टर हजारी प्रसाद द्विवेदी के अनुसार उपन्यास के चरण कठोर धरती पर टिके हैं और वास्तविक जीवन की कठिनाइयों और द्वन्द्वों से निखर कर आने वाला मानवीय रस ही उसका प्रधान आकर्षण है। उपन्यासकार उपदेश न देकर परोक्ष रूप से व्यक्ति और समाज की आलोचना करता हुआ उनके प्रति पाठकों की स्वानुभूति जाग्रत करने का प्रयत्न करता है। इसके लिए वह यथार्थ चित्रण का सहारा लेता है। क्योंकि बिना यथार्थ का चित्रण किए पाठकों में स्वानुभूति और सह-अनुभूति की भावना जाग्रत करना असम्भव है। इसके द्वारा पाठकों में अपनी और समाज की परिस्थितियों को समझने और उन्हें बदलने की इच्छा जगती है। डा० त्रिभुवनसिंह ने इसी तथ्य को स्पष्ट करते हुए लिखा है कि—

"परन्तु यह सदैव ध्यान देने की बात है कि उपन्यासों में केवल तत्कालीन समाज का यथातथ्य चित्र मात्र ही नहीं होता बल्कि उनके भीतर वर्तमान परिस्थितियों को बदल देने की एक ललक सजीव रूप में विद्यमान रहती है। उपन्यासों में परिस्थितियों से लोहा लेने की सशक्त प्रेरणा हो, उसके पात्र ऐसे हों जो अपने भाग्य के विधाता हों, ऐसे न हों कि अकर्मण्य बने भाग्य की प्रतीक्षा करते रहें कि मनुष्य के जीवन में सब कुछ भाग्य के ही कारण होता है। इस प्रकार के नपुंसक तथा रीढ़हीन चरित्रों के निर्माण से उपन्यास के यथार्थ का गला घुट जायेगा और उपन्यास अपने साहित्यिक चरम को खो बैठेगा।"

वस्तुतः उपन्यास हमारे सामने समाज और व्यक्ति का, उनके पारस्परिक सम्बन्धों का, उनकी उपलब्धियों और अभावों का ऐसा लेखा-जोखा प्रस्तुत करता है, जो इन दोनों की स्थितियों का पूर्ण और यथार्थ परिचायक होता है। भारत में नए युग के, अँग्रेजों के आगमन के बाद, परिस्थितियों और जीवन मूल्यों में बड़ी तीव्र गति से परिवर्तन हुआ था। और जब साहित्यकारों ने इस परिवर्तनशील युग का अपने साहित्य में चित्रण करना चाहा तो इसके लिए उन्हें कविता निर्बल माध्यम प्रतीत हुई। यूरोप में भी ऐसी ही स्थिति इससे पूर्व आ चुकी थी और इस स्थिति ने वहाँ उपन्यासों को जन्म दिया था। इस नई स्थिति के चित्रण के लिए उपन्यास ही सर्वाधिक सशक्त माध्यम प्रमाणित हुआ था। इसलिए भारतीय साहित्यकारों ने भी नई स्थिति के चित्रण के लिए इसी यूरोपीय माध्यम को स्वीकार कर नए युग का चित्रण करना प्रारम्भ कर दिया। इसलिए हिन्दी आदि भारतीय भाषाओं में उपन्यास का जन्म यथार्थवाद की ठोस भूमि पर हुआ। इसी कारण साहित्य मनीषियों ने उपन्यास को साहित्य की सर्वाधिक सशक्त यथार्थवादी विधा माना है। यद्यपि उपन्यासों में आदर्श का चित्रण भी होता रहा है, परन्तु इस आदर्श का जन्म भी यथार्थ की प्रेरणा से ही हुआ है। वस्तुतः उपन्यास में ही आदर्श और यथार्थ का समन्वित रूप पहली बार उभरा है। डा० त्रिभुवनसिंह के अनुसार—

"मानव जीवन की समस्त व्यापकता को समेट कर तत्कालीन सामाजिक, राजनीतिक तथा धार्मिक ग्रंथियों को खोलते हुए समाज के अन्दर व्यक्ति के मूल्यों की प्रतिष्ठापना करते हुए उपन्यास-साहित्य ने समय-समय की माँग को स्वीकार कर यथार्थ जीवन की अभिव्यक्ति की है। यदि यथार्थ उपन्यास का प्राण है तो उपन्यासों के अभाव में यथार्थ का जीना भी कठिन है। उपन्यासकार को किसी व्यक्ति विशेष अथवा वर्ग विशेष का न होकर अपनी रचना विश्व की व्यापक पृष्ठभूमि पर करनी चाहिए, जो उपन्यास-साहित्य का प्रधान लक्ष्य है।" इससे उपन्यास और यथार्थ का घनिष्ठ सम्बन्ध सिद्ध हो जाता है।

हिन्दी उपन्यास और यथार्थवाद

हिन्दी में यथार्थवाद का प्रवेश— इस विषय को आगे बढ़ाने से पूर्व हमें एक ~~च~~ स्पष्ट रूप से समझ लेनी चाहिए कि यहाँ यथार्थ से हमारा अभिप्राय

क्या है। कुछ लोगों की मान्यता यह है कि हिन्दी शब्द 'यथार्थवाद' अँग्रेजी-शब्द 'रियलिज्म' के आधार पर गढ़ा गया है। सम्भव है यह शब्द हमने इसी प्रकार गढ़ा हो, परन्तु जब हम हिन्दी में यथार्थवाद के उद्भव और विकास की प्रक्रिया और इतिहास को देखते हैं तो 'यथार्थ' शब्द को हमें अधिक व्यापक अर्थ में लेना पड़ेगा। हमारे भारतेन्दु-युग के साहित्यकार 'यथार्थ' या 'यथार्थवाद' शब्दों के पारिभाषिक अर्थों से अपरिचित रहते हुए भी सामाजिक यथार्थ स्थिति का अंकन करने लगे थे। इसी कारण जयशंकर प्रसाद हिन्दी-साहित्य में यथार्थवाद का आरम्भ भारतेन्दु-कालीन नाटकों, निबन्धों, कविताओं आदि के साथ मानते थे। उस युग के साहित्यकारों ने कल्पना का संसार त्याग अपने समकालीन युग की स्थितियों, समस्याओं, दुख-दर्दों आदि का चित्रण करना आरम्भ कर दिया था। इसलिए हिन्दी में यथार्थवाद का जन्म जीवन के पीड़ित और दुख-दर्द भरे पक्ष के चित्रण के साथ आरम्भ हुआ था। हम परवर्ती साहित्य में, विशेष रूप से हिन्दी के कथा-साहित्य में, निरन्तर इसी चित्रण का विकास होता हुआ पाते हैं। हिन्दी में उपन्यास और कहानियों को, उनकी आरम्भिक दशा में ही जो इतनी अधिक लोकप्रियता प्राप्त हुई थी, इसका मूल कारण यही था कि उनमें समकालीन जन-जीवन का चित्रण होना आरम्भ हो गया था। जनता उनके माध्यम से अपनी स्थिति को ओर अपनी समस्याओं को देखने-समझने लगी थी। इनके पाठक वही लोग थे जो हिन्दी थोड़ी-बहुत जानते और पढ़ते रहते थे। और समाज में इन्हीं लोगों की संख्या सबसे अधिक थी। इसलिए हिन्दी का कथा-साहित्य आरम्भ से ही जन-जीवन की भावनाओं, आशा-आकांक्षाओं, दुख-दर्दों और समस्याओं का चित्रण करता हुआ आगे बढ़ा था।

मनोरंजन का स्थान—कुछ लोगों का यह कहना है कि हिन्दी में उपन्यासों का जन्म पाठकों का मनोरंजन करने के लिए हुआ था। परन्तु यह धारणा गलत है। उपन्यास को जन्म देने वाले भारतेन्दु युग के साहित्यकार अत्यन्त जागरूक साहित्यकार थे। वह देश, समाज, मातृभाषा हिन्दी की समस्याओं का अङ्कन करने के लिए साहित्य रच रहे थे। मनोरंजन करना भी साहित्य का एक उद्देश्य रहता है। परन्तु साहित्य का मूल अभिप्रेत मनोरंजन के माध्यम

से अपने पाठकों को उद्बोधन देना होता है। साहित्य के इस मूल उद्देश्य को न समझ साधारण और निम्न स्तर के लेखक केवल मनोरंजन को ही अपना प्रधान उद्देश्य मान लिखते रहते हैं। कुछ लोग देवकीनन्दन खत्री के उपन्यासों को मात्र मनोरंजन के लिए लिखा हुआ मानते हैं। ऐसे लोगों ने उनके उपन्यासों की भूमिकाओं को नहीं पढ़ा है। उनमें खत्री जी ने यह स्पष्ट कर दिया है कि वह अपने इन उपन्यासों के माध्यम से हिन्दी-गद्य के ऐसे रूप को प्रस्तुत कर रहे थे जो बोलचाल की भाषा का अत्यन्त स्वाभाविक और सशक्त रूप था। साथ ही वे उपन्यास इतने रोचक थे कि अनेक लोगों ने उन्हें पढ़ने के लिए हिन्दी सीखी थी। अतः मनोरंजन को कथा-साहित्य का मूल उद्देश्य नहीं माना जा सकता। वह प्रचार का एक उपकरण मात्र है।

आरम्भिक हिन्दी उपन्यास और यथार्थ—हिन्दी के आरम्भिक उपन्यास मूलतः सामाजिक थे। हिन्दी के सबसे पहले उपन्यास पं० श्रद्धाराम फुल्लौरी रचित 'भाग्यवती' की भारत खंड की स्त्रियों को गृहस्थ-धर्म की शिक्षा देने के लिए रचना की गई थी। उसके उपरान्त लाला श्री निवासदास, किशोरी-लाल गोस्वामी आदि के विभिन्न उपन्यास हिन्दू समाज की सामाजिक समस्याओं को लेकर ही रचे गए थे। इनमें चित्रण तो यथार्थ स्थिति का रहता था परन्तु इनका स्वर प्रायः उपदेश-प्रधान ही होता था। इनका मूल उद्देश्य उपदेश देते हुए व्यक्ति और समाज के सुधार की प्रेरणा प्रदान करना था। आरम्भ में उपन्यास अधिक लोकप्रियता नहीं प्राप्त कर सका था। वह युग, अर्थात् भारतेन्दु-युग प्रधानतः निबन्ध और नाटक का ही युग था। साहित्यकार यथार्थ का अङ्कन इन्हीं के माध्यम से कर रहे थे।

परन्तु बीसवीं सदी का आरम्भ होते-होते हिन्दी उपन्यास अपने विकास की नई मंजिल की ओर बढ़ा। इस काल में सामाजिक उपन्यास अति गम्भीर और कलात्मक रूप धारण करने लगे। ऐतिहासिक उपन्यासों द्वारा भारत के प्राचीन गौरव का अंकन किया जाने लगा। उपन्यास धीरे-धीरे लोकप्रियता की ओर बढ़ा। हिन्दी के तिलस्मी और जासूसी उपन्यासों ने उसकी लोक-प्रियता को और अधिक बढ़ाने में मदद की। परन्तु यहाँ यह द्रष्टव्य है कि तिलस्मी और जासूसी उपन्यासों का यह युग शीघ्र ही समाप्त हो गया।

इसका कारण यह था कि इनमें यथार्थ का अंकन न होकर कल्पना का ही चमत्कार रहता था। इसलिए ये चमत्कार के ही समान अपना क्षणिक रूप दिखा कर समाप्त हो गए। देवकीनन्दन खत्री और गोपालराम गहमरी के ऐसे उपन्यासों की परम्परा का आगे विकास नही हो सका। यह ऐतिहासिक तथ्य इस बात का प्रमाण है कि जनता केवल मनोरंजन ही नहीं चाहती। वह साहित्य के माध्यम से अपने यथार्थ जीवन की अभिव्यक्ति चाहती है।

यथार्थवादी परम्परा का विकास—और प्रेमचन्द के साथ हिन्दी-उपन्यास इसी यथार्थ-जीवन की अभिव्यक्ति करता हुआ बड़ी तीव्र गति से आगे बढ़ा। भारतेन्दु-युग के सामाजिक उपन्यासों की टूटी हुई-सी कड़ी पुनः जुड़ कर आगे विकसित हुई। नए उपन्यासों में समाज की यथार्थ स्थिति का अंकन करते हुए धार्मिक, नैतिक, चारित्रिक, शिक्षा-सम्बन्धी, नारी-उद्धार आदि का आदर्शवादी और सुधारवादी दृष्टिकोण से अंकन किया जाने लगा। इन उपन्यासों की भूमि यथार्थ की थी और दृष्टिकोण सुधारवादी। यह युग, अर्थात् बीसवीं सदी का प्रारम्भिक चरण आर्य-समाज की सुधारवादी भावना से प्रभावित था। इन नए सामाजिक उपन्यासों के मूल में आर्यसमाज का सुधारवादी दृष्टिकोण ही प्रधान रहा। सुधारवादी दृष्टिकोण का एक प्रभाव यह पड़ा कि सामयिक समस्याओं की उपेक्षा सी होने लगी। आदर्शवाद यथार्थवाद के मार्ग में सदैव रोड़े अटकाता रहा है। यही काम उसने उस समय भी किया। ये नए उपन्यास सामाजिक चेतना को तो अभिव्यक्त करते रहे, परन्तु भारतेन्दु युगीन राजनीतिक चेतना से शून्य से बने रहे।

जब प्रेमचन्द ने उपन्यास के क्षेत्र में प्रवेश किया तो यह सामाजिक चेतना राजनीतिक चेतना के साथ घुल-मिल कर आगे बढ़ी। प्रेमचन्द देश में उभरती हुई राजनीतिक चेतना को, जो भारतेन्दु-युगीन राष्ट्रीय दृष्टिकोण का ही विकसित रूप था, सामाजिक चेतना के साथ लेकर हिन्दी-उपन्यास क्षेत्र में उतरे। प्रेमचन्द वस्तुतः इस नई क्रान्तिकारी चेतना के ध्वजवाहक वन कर हिन्दी-पाठकों के सामने आये। उन्होंने सस्ते मनोरंजन के स्थान पर अपने सामयिक युग और समाज की ज्वलन्त समस्याओं

के चित्रण को अपने उपन्यासों का प्रधान लक्ष्य बनाया। इसी कारण उनके उपन्यासों में उस युग का राजनीतिक और सामाजिक भारत साकार हो उठा। यह हिन्दी के यथार्थवादी उपन्यासों का पहला सशक्त रूप था। इस रूप को उभारने के लिए प्रेमचन्द ने यथार्थ चित्रण को अपना मूलाधार बनाया। वह इस यथार्थ चित्रण के माध्यम से विभिन्न सामाजिक और राजनीतिक समस्याओं के समाधान प्रस्तुत करते रहे। यथार्थवादी कलाकार का मूल लक्ष्य यथार्थ के चित्रण द्वारा एक ऐसे आदर्श की स्थापना की सम्भावनाओं का अंकन करना होता है, जो काल्पनिक न होकर यथार्थ की ही चरम परिणित होती है। हमने अपने 'हिन्दी का विवेचनात्मक इतिहास' में प्रेमचन्द के सम्बन्ध में लिखा है कि—

"प्रेमचन्द ने अपने उपन्यासों में यथार्थ चित्रण के माध्यम से अपने मतानुसार विभिन्न समस्याओं के समाधान प्रस्तुत किए हैं। साम्यवाद भी तो यथार्थ का चित्रण और विश्लेषण कर समाज के भावी विकास की रूपरेखा और उसे उपलब्ध करने के साधन बताता है। जब कोई कलाकार यथार्थ का आधार ग्रहण कर ऐसे समाधान और सुझाव प्रस्तुत करता है तो उसे यथार्थ-वादी ही मानना चाहिए, न कि आदर्शवादी। उसका लक्ष्य एक स्वस्थ कल्याणकारी आदर्श की स्थापना करता रहता है, परन्तु वह उस तक पहुँचने का मार्ग यथार्थवादी ही अपनाता है। प्रेमचन्द ने अपने उपन्यासों में इसी प्रक्रिया को अपनाया है, इसी कारण वह स्वयं को आदर्शोन्मुख यथार्थवादी मानते थे और समझदार लोगों का भी उनके सम्बन्ध में यही मत है।"

प्रेमचन्द के उपन्यासों में समकालीन भारत के हृदय की प्रत्येक धड़कन का यथार्थ इतिहास मिलता है। इस सम्बन्ध में यह कहा जाता है कि यदि सन् १९१८ से लेकर १९३६ तक के भारतीय स्वाधीनता आन्दोलन के यथार्थ इति-हास को देखना हो तो इसके लिए प्रेमचन्द के उपन्यास पढ़ने चाहिए। प्रेमचन्द के उपन्यासों ने सबसे पहले यह प्रमाणित किया था कि यथार्थ का चित्रण उपन्यास का मूलाधार और मूल लक्ष्य होना चाहिए। साथ ही उनके उपन्यासों ने यह भी प्रमाणित कर दिया था कि जनता यथार्ण चित्रण को ही अपनाती और महत्त्व और सम्मान देती है। इसी कारण प्रेमचन्द के उपन्यास उस युग

में जनता में सर्वाधिक लोकप्रिय रहे थे और आज भी सामान्य जनता में उनकी वही स्थिति और लोकप्रियता यथावत् कायम है। इसे यथार्थ का ही चमत्कार मानना चाहिए।

प्रेमचन्द ने अपने उपन्यासों में यथार्थ को कितना अधिक महत्त्व दिया है, इसका प्रमाण डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी के इन शब्दों से मिल जाता है—

"अगर आप उत्तर भारत की समस्त जनता के आचार विचार, भाषा-भाव, रहन-सहन, आशा-आकांक्षा, दुख-सुख और सूझ-बूझ को जानना चाहते हैं तो प्रेमचन्द से उत्तम परिचायक आपको नहीं मिल सकता। झोंपड़ियों से लेकर महलों तक, गाँव से लेकर धारा-सभाओं तक, खोमचे वालों से लेकर बैंकों तक आपको इतने कौशलपूर्वक और प्रामाणिक भाव से कोई नहीं ले जा सकता। आप बेखटके प्रेमचन्द का हाथ पकड़ कर मेंड़ों पर जाते हुए किसान को, अन्तःपुर में मान किए हुए प्रियतमा को, कोठे पर बैठी हुई वारवनिता को रोटियों के लिए ललकते हुए भिखमंगों को, कूट परामर्श में लीन गोयन्दों को, ईर्ष्या-परायण प्रोफेसरों को, दुर्बल हृदय बैंकरों को, साहस परायण चमारिन को. ढोंगी पंडितों को, फरेबी पटवारियों को, नीचाशय अमीरों को देख सकते है और निश्चिन्त होकर विश्वास कर सकते हैं कि जो कुछ आपने देखा है, वह गलत नहीं है।"

यथार्थवादी चित्रण इसी को कहा जाता है जो उपर्युक्त उद्धरण में अभिव्यक्त हुआ है। प्रेमचन्द ने इसी यथार्थ जन-जीवन को माध्यम बना युग-जीवन और युग-चेतना का अंकन किया था। उन्होंने हिन्दी-उपन्यास को एक नई यथार्थवादी दृष्टि प्रदान की थी। उन्होंने इस यथार्थवादी चित्रण के अनुरूप ही नई भाषा, शैली, विषय और शिल्प का प्रणयन किया था। उनकी यथार्थवादी दृष्टि और उसके अनुसार किया गया यथार्थवादी अंकन ही उनकी सफलता और लोकप्रियता के प्रधान कारण थे।

आदर्शवादी उपन्यासकार—प्रेमचन्द-युग में कुछ अन्य उपन्यासकार भी मूलतः यथार्थवादी दृष्टिकोण को ही अपना कर उपन्यास लिख रहे थे। प्रसाद, चतुरसेन शास्त्री, वृन्दावनलाल वर्मा, पांडेय बेचन शर्मा उग्र आदि ऐसे ही उपन्यासकार थे। इनके अतिरिक्त इस युग में कुछ ऐसे भी उपन्यासकार उपन्यास

लिख रहे थे जो मूलतः आदर्शवादी विचारधारा वाले थे। इनमें से कुछ यथार्थवादी चित्रण के माध्यम से काल्पनिक आदर्शों की स्थापना कर रहे थे परन्तु अधिकांश गांधीवाद से गहरे रूप से प्रभावित रहने के कारण शुद्ध आदर्शवादी बन कर रह गये थे। विश्वम्भरनाथ शर्मा कौशिक, प्रतापनारायण श्रीवास्तव, सियारामशरण गुप्त, राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह आदि ऐसी ही मिली-जुली धारा के आदर्शवादी उपन्यासकार थे। अपने समय में इन लोगों को थोड़ी सी प्रसिद्धि अवश्य मिली थी, परन्तु आज उनका उल्लेख हिन्दी-उपन्यास का विकास दिखाते हुए ही किया जाता है। आज उनके पाठकों की संख्या नगण्य सी रह गई है। इसके विपरीत प्रेमचन्द, प्रसाद, वृन्दावनलाल वर्मा, चतुरसेन शास्त्री आदि यथार्थवादी उपन्यासकार आज भी जनता में पर्याप्त लोकप्रिय हैं। यह तथ्य इस बात का प्रमाण है कि जनता उन्हीं उपन्यासकारों को याद करती और सम्मान देती है जो अपने उपन्यासों में उसके यथार्थ जीवन का चित्रण करते हैं।

अति यथार्थवादी धारा—प्रेमचन्द के समय में ही हिन्दी के कुछ उपन्यासों में यथार्थवाद का एक नया रूप प्रकट हुआ। इसे 'अति यथार्थवाद' या 'प्रकृतवाद' कहते हैं। इन उपन्यासों में समाज के अश्लील और घिनौने पक्षों और उसकी विकृतियों के खुले, यथार्थपरक चित्रण किए गए। इनमें समाज की कमजोरियों को नितान्त खुले रूप में, जो कुत्सित अधिक था, अंकित किया गया। उग्र, ऋषभचरण जैन, चतुरसेन शास्त्री आदि के कई उपन्यासों में ऐसे चित्रणों की बहुलता रही। इसे कुछ आलोचकों ने पसन्द नहीं किया और 'घासलेटी साहित्य' कह कर इनकी उपेक्षा करने की आवाज उठाई। वस्तुतः इन उपन्यासों का मूल उद्देश्य भी समाज के नग्न रूप का वीभत्स और घिनौना चित्रण कर, उसके विरुद्ध जनता में विद्रोह और सुधार की भावना जाग्रत करना ही रहा था। इन उपन्यासों में अभिव्यंजित तीखा व्यंग्य कल्याणकारी तो अवश्य था परन्तु साधारण पाठक उस व्यंग्य को न समझ उन अश्लील वर्णनों का रसास्वादन करने में ही उलझ कर रह जाता था, इसलिए पाठकों पर इनका दूषित प्रभाव ही अधिक पड़ता था। ये उपन्यासकार ऐसे औपन्यासिक शिल्प और कौशल को अपनाने में असमर्थ रहे थे जो अश्लीलता का

चित्रण करते हुए भी उसके प्रति घृणा और आक्रोश की भावना उत्पन्न होने में सफल रहता है। हिन्दी में ऐसे उपन्यासों का अधिक स्वागत नहीं हो सका, इसलिए इस परम्परा का आगे विकास नहीं हुआ।

मनोविश्लेषणवादी यथार्थ—सन् १९२५ के आसपास हिन्दी के साहित्यकारों पर फ्रायड के मनोविश्लेषण शास्त्र का प्रभाव पड़ना आरम्भ हो गया था। सन् १९३० के लगभग हिन्दी के कुछ कथाकारों ने ऐसे उपन्यास लिखने प्रारम्भ कर दिए जिनमें फ्रायड के कुंठावाद पर आधारित मानव की दमित वासनाओं, कुंठाओं, काम-प्रवृत्तियों आदि का प्रभावशाली कलात्मक चित्रण हुआ। इन उपन्यासकारों की मान्यता थी कि मानव का अचेतन मानस, जो कुंठाओं से भरा रहता है, उसके जीवन का संचालन करने में बहुत बड़ा भाग अदा करता है। यह भी जीवन का एक यथार्थ है, इसलिए साहित्य में इसका अंकन होना चाहिए। और उन्होंने अपने उपन्यासों में यही अंकन किया। ऐसा करते समय ये लोग व्यक्ति की काम, अहं, दम्भ, हीन-भाव आदि की जटिल ग्रन्थियों और उनकी गुत्थियों का विवेचन और विश्लेषण करने तक ही सीमित होकर रह गये। समाज का विशाल क्षेत्र और उसकी सामूहिक समस्यायें इनके द्वारा पूर्णरूपेण उपेक्षित रह गईं। इलाचन्द्र जोशी, जैनेन्द्र आदि इसी प्रकार के उपन्यास लिख रहे थे। हम पीछे यशपाल के साहित्य का विवेचन करते हुए यह बता आए हैं कि यशपाल के कुछ उपन्यासों में भी इस कुंठावाद का प्रभाव रहा था। आगे चलकर अज्ञेय आदि ने इस धारा को आगे बढ़ाया था, परन्तु फिर भी यह धारा सामान्य पाठको को आकर्षित करने में असमर्थ रही, इसलिये इसका अधिक विकास नहीं हो सका।

ऐतिहासिक यथार्थवाद—प्रेमचन्द हिन्दी उपन्यास क्षेत्र में यथार्थवादी धारा को अत्यन्त सशक्त रूप प्रदान कर चुके थे। इसी धारा से प्रभावित होकर हिन्दी के कुछ उपन्यासकारों ने ऐसे ऐतिहासिक उपन्यास लिखे जिनमें नई खोजों और तथ्यों के आधार पर वर्णित ऐतिहासिक कालों का यथार्थवादी चित्रण किया गया। इनमें उन्होंने इतिहास को एक नई दृष्टि से देखने का प्रयत्न किया। उनसे पूर्व हिन्दी में जो ऐतिहासिक उपन्यास लिखे गए उनमें इतिहास की अपेक्षा भावुकतापूर्ण कल्पना का ही प्राधान्य रहा था।

सन् १९२८ में बाबू वृन्दावनलाल वर्मा ने अपना पहला ऐतिहासिक उपन्यास 'गढ़ कुंडार' लिखा जिसमें भावुकतापूर्ण कल्पना के साथ ऐतिहासिक यथार्थ को भी महत्त्वपूर्ण स्थान मिला। परन्तु प्रेमचन्द का युग सामाजिक उपन्यासों का युग रहा था। देश में होने वाले राजनीतिक आन्दोलनों ने अधिकांश कथाकारों को वर्तमान तक ही सीमित कर दिया था, इसलिए इस काल में ऐतिहासिक उपन्यास बहुत कम लिखे गये। प्रेमचन्दोत्तर युग में हम पहली बार ऐतिहासिक यथार्थ पर आधारित ऐतिहासिक उपन्यासों का सृजन होता पाते हैं।

यथार्थवादी धारा का नया विकास—सन् १९३५ में भारत में प्रगतिशील लेखक संघ की स्थापना की गई। यह 'विश्व प्रगतिशील लेखक संघ' की ही एक शाखा थी। प्रेमचन्द इसके प्रथम सम्मेलन के सभापति बने। इस संघ की स्थापना ऐसे साहित्यकारों द्वारा की गई थी जो विचारों से प्रधानतः समाजवादी थे। इन पर रूस के समाजवादी-साहित्य का गहरा प्रभाव था। ये लोग समाजवादी विचारधारा से अनुप्रेरित ऐसा साहित्य रच रहे थे, और दूसरों को रचने की प्रेरणा दे रहे थे, जिसमें समाज का यथार्थवादी चित्रण अधिक व्यापक, सशक्त और खुले रूप में उपलब्ध हो। इस नए साहित्यक आन्दोलन ने काल्पनिक आदर्शवाद का विरोध करते हुए यथार्थ चित्रण को ही साहित्य का एकमात्र लक्ष्य घोषित किया। इस यथार्थ चित्रण के दो प्रधान रूप रहे। एक, समाजवादी विचारधारा से प्रभावित उपन्यासकारों ने समाज का यथार्थ चित्रण कर समाज की दशा को बदलने के नए रास्ते और दिशाएँ सुझाईं। ऐसे उपन्यासकारों को 'प्रगतिवादी' कहा गया। इस समय तक प्रेमचन्द अपने अन्तिम पूर्ण उपन्यास 'गोदान' में समाजपरक यथार्थवादी चित्रण का आकर्षक और प्रभावशाली रूप प्रस्तुत कर चुके थे। परन्तु इन नए प्रगतिवादी उपन्यासकारों ने उस यथार्थ चित्रण में साम्यवादी विचारों का समावेश कर, उसे एक निश्चित राजनीतिक विचारधारा का रंग दे दिया। ऐसे उपन्यासकारों में यशपाल, राहुल, रांगेय राघव, नागार्जुन, अमृतराय आदि प्रधान उपन्यासकार रहे। प्रेमचन्द के समय में ही हिन्दी में कुछ उपन्यासकार फ्रायड के मनोविश्लेषण-शास्त्र जैसे व्यक्तिवादी जीवन-दर्शनों से प्रभावित हो, समाज की अपेक्षा व्यक्ति को अधिक महत्व दे, व्यक्ति के मनोराज्य, विभिन्न मनःस्थितियों,

कुंठाओं आदि के चित्रण को ही अपना मूल लक्ष्य बना उपन्यास लिख... थे। यह भी यथार्थवादी चित्रण का ही एक पक्ष था। इनमें परस्पर थोड़ा सा अन्तर भी दिखाई दिया। कुछ व्यक्ति-स्वातंत्र्य की भावना को उभारते हुए सामने आए, और कुछ ने मनोविश्लेषण के आधार पर व्यक्ति-कुंठाओं को ही अंकित करना अपना अभिप्रेत माना। ये दोनों ही प्रकार के उपन्यासकार समष्टि रूप से व्यक्तिवादी ही थे। इलाचन्द्र जोशी, जैनेन्द्र, भगवतीचरण वर्मा, अज्ञेय आदि इसी व्यक्तिवादी वर्ग के उपन्यासकार हैं।

यथार्थ और राजनीतिक विचारधारा—उपर्युक्त पहले वर्ग के समाजवादी विचारधारा से अनुप्राणित उपन्यासकारों ने साहित्य के माध्यम से अपनी समाजवादी राजनीतिक विचारधारा का अंकन और प्रचार किया। परन्तु उसी समय कुछ ऐसे उपन्यासकार भी सामने आए जो समाजवादी सिद्धान्तों को तो पूरी तरह स्वीकार नहीं करते, परन्तु साहित्य का मूल अभिप्रेत यथार्थवादी चित्रण को ही मानते हैं। अमृतलाल नागर, उपेन्द्रनाथ 'अश्क' ऐसे ही यथार्थवादी उपन्यासकार हैं। इनके समाज और राजनीति सम्बन्धी विचार स्वतन्त्र हैं। समाजवादी यथार्थपरक धारा में बाबू वृन्दावनलाल वर्मा एक ऐसे उपन्यासकार थे जिन्होंने अपने ऐतिहासिक और सामाजिक दोनों प्रकार के उपन्यासों में युग-चेतना को अत्यन्त प्रभावशाली और यथार्थपरक रूप में अंकित किया है। वह राजनीतिक ऊहापोह से सर्वथा निर्लिप्त रह समाज की यथार्थ स्थितियों और समस्याओं का चित्रण करते रहे।

हम पीछे कह आए हैं कि समाजवादी जीवन-दर्शन और राजनीति से प्रभावित प्रगतिवादी उपन्यासकारों ने अपनी राजनीतिक विचारधारा के साथ समाज का यथार्थपरक चित्रण करना आरम्भ किया था। कुछ समय तक इस समाजवादी राजनीतिक विचारधारा का इनकी कृतियों में प्राधान्य रहा। परन्तु धीरे-धीरे राजनीति का यह प्रभाव कम होता चला गया। कम इस अर्थ में होता चला गया कि आगे चलकर राजनीति का बिना नाम लिए या अंकन किए ही नए उपन्यासकार केवल यथार्थ चित्रण पर ही बल देने लगे। नागार्जुन आदि ऐसे ही नए उपन्यासकार थे। इनके उपन्यासों में समाज की यथार्थ स्थितियाँ इतनी सम्पूर्णता के साथ उभरीं कि उनमें समाज का सारा

दुख-दैन्य, शोषण, विषमताएँ आदि अपने सभी पक्षों और रूपों के साथ साकार हो उठीं। यद्यपि इनकी प्रेरक शक्ति समाजवादी विचारधारा ही रही परन्तु उपन्यासों में उसका स्पष्ट उल्लेख होना बन्द-सा हो गया। यह यथार्थवाद का एक नया और अधिक सशक्त रूप था।

यथार्थवाद का नया उभरता रूप—हिन्दी के नए उपन्यासकारों ने यथार्थवाद के इस नए रूप को अपनाते हुए उपन्यास लिखने आरम्भ किए। राजेन्द्र यादव, मोहन राकेश, कमलेश्वर, हिमांशु श्रीवास्तव आदि यथार्थवाद के इस नए सशक्त रूप को लेकर हिन्दी-उपन्यास क्षेत्र में आए। इनके उपन्यासों में आजादी के बाद देश में उभरने वाली नई स्थितियों, मानव-जीवन की जटिलताओं और परेशानियों के मार्मिक और प्रभावशाली यथार्थवादी रूप उभरे। क्योंकि इनमें समाजवादी राजनीति का स्पष्ट चित्रण नहीं हुआ था, इसलिए प्रगतिवाद के राजनीतिक रूप के विरोधियों ने यह समझा कि अब प्रगतिवाद मर गया। परन्तु वे यह समझने में असमर्थ रहे कि यथार्थवाद के इस नए रूप की असली प्रेरक शक्ति समाजवादी विचारधारा ही थी। उस पर से राजनीति का 'लेबल' हट गया था परन्तु मूल भावना यथावत् रही। इस प्रकार यथार्थपरक समाजवादी विचारधारा अपने इस नए रूप में अधिक सशक्त, अधिक यथार्थ और अधिक प्रभावशाली बन कर आगे बढ़ी। यह सन् १९३५-४० के आसपास विकसित साहित्य का ही विकसित और परिवर्द्धित रूप था।

आंचलिक यथार्थवाद—हिन्दी में देश के किसी अंचल विशेष को कथा-भूमि बना अनेक उपन्यास लिखे जा रहे थे। इनमें किसी अंचल विशेष के समग्र जीवन का यथार्थ चित्रण किया जाता था। अमृतलाल नागर का 'सेठ बाँकेमल' एक ऐसा ही उपन्यास था। परन्तु सन् १९५४ में प्रकाशित फणीश्वरनाथ रेणु के प्रथम उपन्यास 'मैला आँचल' को स्वयं उपन्यासकार ने हिन्दी का पहला 'आँचलिक उपन्यास' घोषित किया। इस घोषणा के उपरान्त ही हिन्दी में अनेक आँचलिक उपन्यास लिखे जाने आरम्भ हो गए। इन उपन्यासों की कथा-वस्तु किसी एक भूखंड या अंचल विशेष तक ही सीमित रहती है। उपन्यासकार उसी भू भाग के समस्त निवासिओं के जीवन का, उनकी भावनाओं-आकांक्षाओं, समस्याओं, रहन-सहन, पर्व-त्यौहार, विचार, संघर्ष

आदि का, स्थानीय भाषा का पुट देते हुए, एक कथा के माध्यम से वर्णन करता है। इस वर्णन द्वारा वह विशेष भूभाग अपने सम्पूर्ण परिवेश के साथ साकार सजीव हो उठता है। यह उपन्यासों में यथार्थ चित्रण का एक नया रूप था। रेणु को 'मैला आँचल' द्वारा अभूतपूर्व ख्याति मिलते देख हिन्दी के अनेक उपन्यासकारों ने इसी ढंग के उपन्यास लिखने आरम्भ कर दिए। रेणु से पूर्व कई लेखक ऐसे उपन्यास लिख चुके थे परन्तु उन्हें किसी ने आंचलिक उपन्यास की संज्ञा नहीं प्रदान की थी। नागार्जुन के 'बलचनमा'; 'रतिनाथ की चाची', निराला का 'बिल्लेसुर बकरिहा', शिवप्रसाद मिश्र 'रुद्र' का 'बहती गंगा' आदि ऐसे उपन्यास 'मैला आँचल' से बहुत पहिले लिखे जा चुके थे। 'मैला आँचल' के उपरान्त उदय शंकर भट्ट के 'सागर, लहरें और मनुष्य', 'शेष अशेष', उग्र का 'फागुन के चार दिन' आदि अनेक आंचलिक कहे जा सकने वाले उपन्यास निकले। कुछ दिनों तक आंचलिकता को खूब हवा वही परन्तु शीघ्र ही यह खुमार गया। इन उपन्यासों की केवल एक ही नई विशेषता थी कि इनमें स्थानीय बोली का खूब प्रयोग किया जाता था।

शीर्षक मुक्त यथार्थवाद—हम पीछे कह आये हैं कि सन् १९५०-५५ के उपरान्त यथार्थवाद 'प्रगतिवाद', 'आंचलिकता', 'मनोविश्लेषण' आदि के शीर्षकों से मुक्त हो केवल यथार्थ-चित्रण को ही अपना मूल लक्ष्य बना आगे बढ़ा। इसकी प्रेरक मूल-भावना समाजवादी रही। नए उपन्यासों में यथार्थ-वाद का अत्यन्त सशक्त और व्यापक रूप उभरने लगा। ऐसे अनेक उपन्यास लिखे जाने लगे। हमें पिछले पन्द्रह वर्षों में प्रकाशित यथार्थवादी सामाजिक उपन्यासों में चार उपन्यास अत्यन्त सशक्त और कलापूर्ण लगे। ये हैं—यशपाल का 'झूठा सच', शानी का 'काला जल', राही मासूम रजा का 'आधा गाँव', और श्रीलाल शुक्ल का 'राग दरबारी'। इन उपन्यासों में 'झूठा सच' का कथा-क्षेत्र बहुत व्यापक है। शेष तीनों एक अंचल विशेष को ही अपनी कथा भूमि बना वहाँ के जीवन का जैसा गहरा, मार्मिक, विस्तृत और यथार्थ-चित्रण करते हैं, वैसा प्रेमचन्द के गोदान जैसे उपन्यासों के अतिरिक्त अन्यत्र दुर्लभ ही है। इन उपन्यासों में बदलती हुई परिस्थितियों के कारण आन्दोलित जन-जीवन अपने सम्पूर्ण पक्षों के साथ उभर आया है। यह यथार्थवाद का

अत्यन्त विकसित और सशक्त नया रूप है। आज भी जन-जीवन के यथार्थ की अवहेलना करने वाले व्यक्तिवादी, विचार-बोझिल उपन्यास लिखे जा रहे हैं, परन्तु वे प्रकाशित होने के बाद कुछ समय तक चर्चा के विषय बन भुला दिये जाते हैं। परन्तु उपर्युक्त प्रकार के यथार्थवादी उपन्यास व्यापक चर्चा के विषय बन निरन्तर चर्चित होते रहते हैं।

निष्कर्ष—जनता द्वारा ऐसे उपन्यासों का स्वागत किया जाना इस जन-भावना का प्रमाण है कि जनता अपने जीवन के यथार्थ रूप के चित्रण का ही सम्मान करती है। आज भारत का जन-मानस बुरी तरह से आन्दोलित हो रहा है। अर्थ-व्यवस्था, सामाजिक मूल्य, धर्म, राजनीति आदि के क्षेत्रों में अशान्ति मची हुई है। भाषा, क्षेत्रीयता, मँहगाई, शोषण, भ्रष्टाचार आदि की समस्याओं ने जन-जीवन को भयंकर रूप से त्रस्त बना रखा है। विद्यार्थियों में अनुशासन-हीनता बढ़ रही है, शिक्षा का स्तर गिर रहा है। जगह-जगह विभिन्न प्रकार की समस्याओं को लेकर हिंसक और अहिंसक आन्दोलन हो रहे हैं। आज सारा देश बुरी तरह से आन्दोलित हो, अराजकता के कगार पर खड़ा किसी भावी भयंकर जन-क्रन्ति का-सा आभास दे रहा है। इस विषम स्थिति को देख हमारे जागरूक साहित्यकार चुप नहीं बैठे हैं। उनकी लेखनी से जनता का यह असन्तोष और विद्रोह अभिव्यक्त हो रहा है। जन-समाज उनकी रचनाओं में अपने इसी असन्तोष और विद्रोह को व्यंजित होता हुआ देख ऐसे साहित्य का स्वागत कर रहा है। यथार्थवाद का यही दायित्व और कर्त्तव्य है।

यहाँ हमें यह ध्यान रखना चाहिए कि सामन्तवाद और पूँजीवाद साहित्य में यथार्थ के चित्रण का सदैव विरोधी रहा है। इसका कारण यह है कि यथार्थवाद इनके अत्याचारों और शोषण का नग्न और स्पष्ट चित्र प्रस्तुत कर जनता में इनके विरुद्ध विद्रोह की भावना जगाता रहता है। आज देश का शासन-तंत्र इन्हीं पूँजीपतियों और राजनीतिक सामन्तों के हाथ में है। इसलिए सरकार या पूँजीपति यथार्थवादी साहित्य के प्रकाशन को प्रश्रय या प्रोत्साहन नहीं देते। देश की सभी प्रमुख भाषाओं के समाचार-पत्रों और प्रकाशन-संस्थाओं पर छोटे-बड़े पूँजीपतियों का एकाधिपत्य है। इसलिए जन-जीवन

को वाणी देने वाले साहित्य और समाचारों की इनके द्वारा निरन्तर उपेक्षा की जा रही है। इनके स्वार्थों का समर्थन करने वाले, या जीवन की वास्तविक समस्याओं के प्रति उपेक्षा और उदासीनता का भाव रखने वाले साहित्य का इनके यहाँ से निरन्तर प्रकाशन और प्रचार किया जा रहा है। साथ ही खरीदे हुए साहित्यकार यथार्थवादी साहित्य का विरोध और व्यक्तिवादी साहित्य का समर्थन कर रहे हैं। पूँजीपतियों ने ऐसे लोगों को अपने यहाँ मोटी-मोटी तनख्वाहों पर नौकर रख लिया है। यथार्थवादी लेखक को प्रकाशक बड़ी मुश्किल से मिल पाते हैं, परन्तु अस्तित्ववाद, मनोविश्लेषण, आदर्शवाद आदि का चित्रण करने वाले लेखकों की रद्दी-से-रद्दी रचनाएँ भी बड़ी आकर्षक साज-सज्जा के साथ प्रकाशित होती रहती हैं। परन्तु यथार्थवादी लेखक सच्चा और निर्भीक साधक होता है। अपने सत्य के प्रति उसकी अटूट और दृढ़ निष्ठा होती है। इसलिए वह इन उपेक्षाओं और बाधाओं से कभी विचलित नहीं होता।

यही कारण है कि हिन्दी में यथार्थ का चित्रण भारतेन्दु युग के उन साहित्य-मनीषियों ने प्रारम्भ किया था जो कट्टर देशभक्त और जन-शक्ति के परम उपासक थे। उनकी उस धारा को, आगे चलकर प्रेमचन्द जैसे जन-प्रतिनिधि-साहित्यकारों ने, अपने जीवन की सम्पूर्ण सुख-सुविधाओं का त्याग कर आगे बढ़ाया था। प्रेमचन्द की उस निर्भीक उज्ज्वल परम्परा को यशपाल आदि ने नई शक्ति और गति प्रदान की थी। और आज उसी सशक्त परम्परा को नागार्जुन, राही, श्रीलाल शुक्ल, शानी जैसे कथाकार आगे बढ़ा रहे हैं। यह यथार्थवाद की जीवन्त परम्परा का अटूट विकास और रूप है। यथार्थवादी साहित्य हमेशा से जनता में लोकप्रिय रहता आया है। जन-मानस ऐसे साहित्य में अपने ही जीवन, उसकी असफलताओं और उपलब्धियों, आशा और निराशा, तथा सुख-दुख के स्वर गूँजते सुनता रहा है। इसलिए ऐसे साहित्य को अपनाता और प्यार करता है। क्षुब्ध जन-मानस के लिए ऐसा साहित्य नई प्रेरणा प्रदान करता है। आदर्श आकर्षक अवश्य होता है, परन्तु जन-जीवन की वास्तविक समस्याओं का प्रत्यक्ष और व्यावहारिक समाधान प्रस्तुत नहीं कर पाता। इसलिए वह मन्दिर में स्थापित प्रतिमा के समान

पूजनीय बन कर ही रह जाता है। यथार्थ जनता का अभिन्न सखा होता है, उसके सुख-दुख में समान भाग लेने वाला। इसीलिए जनता उससे प्यार करती है।

हिन्दी कथा-साहित्य को यशपाल की देन

एक विशिष्ट महत्त्व—हिन्दी कथा-साहित्य में यशपाल का एक विशिष्ट और महत्त्वपूर्ण स्थान है। आलोचक उन्हें प्रेमचन्द की यथार्थवादी परम्परा का सशक्त और योग्य प्रतिनिधि तथा चितेरा मानते हैं। प्रेमचन्द के प्रारम्भिक काल में हिन्दी कहानी के क्षेत्र में दो शैलियाँ, और दृष्टिकोण उभर रहे थे। एक शैली और दृष्टिकोण प्रसाद का व्यष्टिवादी दृष्टिकोण था जो व्यक्ति को आधार बना जीवन्त रूप प्रदान कर रहा था। इसके विपरीत दूसरा दृष्टिकोण स्वयं प्रेमचन्द का था जो समष्टिवादी था। प्रेमचन्द का कथा-साहित्य समष्टि चिन्तन, समष्टि-सत्य, समष्टि-मंगल और समष्टि-यथार्थ से प्रेरित था और प्रसाद का व्यष्टि-सत्य, व्यष्टि-हित तथा व्यष्टि-यथार्थ से अनुप्राणित था। इनमें से यशपाल ने प्रेमचन्द की समष्टिवादी परम्परा को अपनाया। वह एक प्रकार से प्रेमचन्द के पूरक बनकर हिन्दी-साहित्य में उतरे। प्रेमचन्द जिस स्थिति के प्रति केवल संकेत दे कर रह गए थे, यशपाल ने उस संकेत को स्थूल और स्पष्ट रूप प्रदान किया। यशपाल के पास एक निश्चित समाजवादी दृष्टिकोण है जो आर्थिक विषमता को ही मानव-जीवन की सारी विकृतियों, समस्याओं और विषमताओं का मूल कारण मानता है। यहीं यशपाल प्रेमचन्द से भिन्न हो जाते हैं। परन्तु यथार्थ-चित्रण के रूप में वह प्रेमचन्द्र की जीवन्त यथार्थवादी परम्परा का ही अनुगमन करते हैं। इन दोनों की इसी समानता को लक्ष्य कर पं० शान्तिप्रिय द्विवेदी ने लिखा था—

"प्रेमचन्द के बाद यशपाल ही सही माने में जनसाधारण के लिए हिन्दी कथा-साहित्य का प्रतिनिधित्व करते हैं। उनकी रचनाएँ एक ओर साहित्यिकों के लिए हैं तो दूसरी ओर जनता के लिए भी आकर्षक हैं। भाषा और शैली की दृष्टि से ऐसा जान पड़ता है मानो प्रेमचन्द जी नए युग में नया शरीर धारण कर पुनः सजीव हो उठे हों। यशपाल, एक शब्द में, प्रेमचन्द की तिरोहित प्रतिमा की तरुण शक्ति हैं।"

यशपाल की देन—यशपाल की हिन्दी कथा-साहित्य को सबसे बड़ी देन यह है कि उन्होंने प्रेमचन्द की परम्परा को आगे बढ़ाया है। यह परम्परा समष्टि-मंगल भावना से अनुप्राणित रही है। यशपाल मार्क्सवादी समाज-शक्ति से गहरे रूप से प्रभावित हैं, इसी कारण कटु यथार्थ के प्रति उनका प्रबल आग्रह रहा है। वह जब सामाजिक समस्याओं को उठाते हैं तो प्रेमचन्द के समान उनका समाधान किसी आश्रम, सदन आदि के रूप में नहीं खोजते। यशपाल उनका समाधान समस्त सामाजिक विधान में ही खोजते हैं। और हमारा सामाजिक विधान अर्थ की विषमता से पीड़ित है, इसलिए वह उसके आर्थिक पक्ष पर ही प्रहार करते हैं। नारी की सारी समस्यायें भी इसी आर्थिक धुरी पर घूमती रहती हैं। इसलिए यशपाल नारी की आर्थिक स्वतंत्रता के प्रबल समर्थक हैं। यशपाल से पूर्व हिन्दी कथा-साहित्य में यह अर्थवादी दृष्टि कहीं नहीं दिखाई देती। इसलिए इसे यशपाल की एक महत्त्वपूर्ण देन माना जाना चाहिए। यशपाल सामाजिक या सामूहिक विकास के सन्दर्भ में ही व्यक्ति के विकास की बात सोचते हैं। यही उनका समाज-चिन्तन और सामाजिक मूल्यों का दृष्टिकोण है। वह व्यक्ति को सामान्य मनुष्य के रूप में मानकर उसके लिए सामाजिक मूल्यों का निर्धारण करते हैं। यशपाल की एक अनन्य विशेषता यह है कि वह समस्याओं को उठा कर बड़े साहस के साथ उनका समाधान प्रस्तुत करते हैं। और यह समाधान आदर्शवादी और अव्यावहारिक न होकर यथार्थवादी और व्यावहारिक होता है।

मध्य वर्ग को महत्त्व—यशपाल की एक अन्य महत्त्वपूर्ण देन, जो प्रेमचन्द से भिन्न है, यह है कि उन्होंने अपने कथा-साहित्य में मध्य वर्ग का ही प्रधान रूप से चित्रण कर मध्य वर्ग की यथार्थ स्थिति का पहली बार अंकन करने का प्रयत्न किया था। मध्य वर्ग समाज का एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण अंग है। ऊपर से सफेद पोश रहने वाला यह वर्ग भीतर से कितना पीड़ित, अभावग्रस्त, थोथे जीवन-मूल्य के प्रति आस्था-अनास्था के संघर्षों में उलझा और यथार्थवादी दृष्टि वाला होता है, यह हिन्दी में सबसे पहले प्रभावशाली रूप में यशपाल के कथा-साहित्य में ही उभरा है। यशपाल स्वयं इस वर्ग के अंग हैं, इसलिए उनके द्वारा किया गया इस वर्ग का चित्रण स्वानुभूतिपूर्ण होने के कारण

अधिक यथार्थ और मार्मिक बन पड़ा है। यह वर्ग पढ़ा-लिखा होने के कारण विचारशील होता है। संसार में जितनी भी राज्य-क्रान्तियाँ हुई हैं, सब इसी वर्ग के चिन्तन से प्रेरित रही हैं। इसलिए इस वर्ग में छाया असन्तोष भावी जन-क्रान्ति की सूचना दे रहा है।

साम्यवादी दृष्टिकोण—हिन्दी में प्रगतिवाद के उदय के साथ साम्यवादी विचारधारा का चित्रण होना प्रारम्भ हो गया था। यशपाल ने अपने कथा-साहित्य के माध्यम से इस विचारधारा को पहली बार सशक्त स्वर प्रदान किए थे। उनके प्रारम्भिक उपन्यास और कहानियाँ इसी विचारधारा से अनुप्रेरित होकर लिखी गई थीं। 'साम्यवाद' को हौआ मानने वाले आलोचक इसके लिए आज तक यशपाल की कटु आलोचना करते आए हैं। इन लोगों को हिंसा का नाम तक नहीं सुहाता, परन्तु इतिहास के सत्य को नकारना स्वयं अपनी कमजोरी और अज्ञान का ही प्रमाण देना है। प्रेमचन्द भी जन-क्रान्ति के समर्थक होते हुए उसका हिंसक रूप धारण करना पसन्द नहीं करते थे। परन्तु प्रेमचन्द की इस धारणा के अपने विशिष्ट कारण थे। उनका अन्तर्मन कहीं न कहीं भावी हिंसक क्रान्ति की सम्भावनाओं के सम्बन्ध में सोचता रहता था। परन्तु वह संकोचवश इस तथ्य को प्रकट नहीं कर पाते थे। यशपाल ने प्रेमचन्द के इसी संकोच पर से परदा हटाते हुए स्पष्ट शब्दों में जन-क्रान्ति का आह्वान किया था। यह हिन्दी कथा-साहित्य को यशपाल की मौलिक देन थी। यशपाल स्वयं सक्रिय क्रान्तिकारी रहे हैं, इसलिए न्यायोचित हिंसा का महत्त्व और प्रभाव जानते हैं।

साम्यवादी विचारधारा के सन्दर्भ में यशपाल की दूसरी मौलिक देन थी, आर्थिक विषमता को ही सारी सामाजिक विकृतियों और समस्याओं का मूल कारण मानना। अपने 'मनुष्य के रूप' शीर्षक उपन्यास में उन्होंने वर्तमान समस्त सामाजिक विकृतियों और रूढ़ियों को दूर करने का एक मात्र उपाय साम्यवाद को माना है। हिन्दी कथा-साहित्य में इतनी स्पष्टता के साथ साम्यवाद का खुला समर्थन अन्यत्र दुर्लभ है।

महान उपलब्धि—यशपाल के दो उपन्यासों को हिन्दी कथा-साहित्य की महान उपलब्धि माना जा सकता है। ये दो उपन्यास हैं—"दिव्या' और

'झूठा सच'। "दिव्या के माध्यम से उन्होंने पहली बार ऐतिहासिक यथार्थवाद का अत्यन्त निखरा हुआ रूप प्रस्तुत किया। उन्होंने अन्य ऐतिहासिक उपन्यासकारों के समान अपने अतीत को नितान्त भव्य, गौरवमय और स्वर्णिम न मान इतिहास की एक नवीन व्याख्या प्रस्तुत की है। इस दृष्टि से हिन्दी के ऐतिहासिक उपन्यासों में 'दिव्या' का अपना एक विशिष्ट और अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान माना जाना चाहिए। 'झूठा सच' हिन्दी का एक ऐसा उच्च कोटि का उपन्यास है, जो प्रेमचन्द के 'गोदान' के पश्चात् हिन्दी का सर्वश्रेष्ठ उपन्यास माना जाना चाहिए। इतनी विशाल कथा-भूमि को लेकर एक जन-समाज और उसकी संस्कृति के उखड़ने, भटकने और संघर्ष झेलते हुए पुनः नए सिरे से स्थापित होने की भयानक संघर्ष पूर्ण, साहस भरी और साथ ही करुणा से ओतप्रोत कहानी को इतनी निस्संगता के साथ हिन्दी में तो कहा ही नहीं गया; अन्य भारतीय भाषाओं में भी कहा गया है, इसके सम्बन्ध में हमें सन्देह है। व्यापकता और महानता की दृष्टि से इस उपन्यास को निस्संकोच तोलस्तोय के 'युद्ध और शान्ति' जैसे विश्व-प्रसिद्ध उपन्यास के समकक्ष रखा जा सकता है।

इस प्रकार यशपाल हिन्दी कथा-साहित्य के एक ऐसे कलाकार हैं जिन्होंने अपनी कृतियों द्वारा साहस, निर्भीकता, स्वस्थ जनवादी दृष्टिकोण और व्यंग्यपूर्ण सशक्त शैली का प्रणायन कर अपने समकालीनों और परवर्ती कलाकारों को प्रेरणा प्रदान की है।

'झूठा सच'

कथा-सारांश

कथा की पृष्ठभूमि—इस उपन्यास की कथा १९४७ में हुए भारत-पकिस्तान विभाजन से कुछ समय पूर्व से आरम्भ होती है और विभाजन के उपरान्त बदलती नई परिस्थितियों और उनके प्रभावों के साथ समाप्त हो जाती है। इसलिए इसकी सम्पूर्ण कथा को भारतीय इतिहास की सन् १९४५ के आसपास से लेकर सन् १९५७ तक के बारह-तेरह वर्ष की कथा माना जा सकता है। इस सम्पूर्ण कथा को यशपाल ने दो भागों में विभाजित कर लिखा है। पहले भाग का शीर्षक है—'वतन और देश,' तथा दूसरे भाग का 'देश का भविष्य'। इस उपन्यास के मूल वृहद् संस्करण में यह सम्पूर्ण कथा लगभग १५०० पृष्ठों में कही गई है। उस वृहद् कथा को छात्रोपयोगी रूप में ४०८ पृष्ठों में सीमित कर पृथक रूप से प्रकाशित किया गया है। इसमें भी मूल कथा उपर्युक्त दो खंडों में विभाजित है। प्रथम खंड में कथा मई सन् १९४५ के आसपास से आरम्भ होती है जब इसका एक प्रधान पात्र जयदेवपुरी सन् १९४२ के आन्दोलन में भाग लेने के कारण जेल की सजा भुगत छूट कर आता है। कथा यहाँ से आरम्भ होकर विभाजन के पूर्व तनावभरी हलचलों और परिस्थितियों को पार करती हुई, विभाजन के समय हुई भयानक हिंसक, दिल दहला देने वाली घटनाओं का वर्णन करती, पंजाब के हिन्दुओं के पाकिस्तान से पलायन और भारत के विभिन्न नगरों में आश्रय पाने तक आकर अपनी पहली यात्रा पूरी कर समाप्त हो जाती है। इस उपन्यास के प्रथम खंड में यहीं तक की कथा कही गई है।

इसके उपरान्त इसका दूसरा खंड 'देश का भविष्य' आरम्भ होता है। इसमें पश्चिमी पंजाब से उखड़े हुए हिन्दुओं के भारत में आकर पुनः जमने

की कहानी शुरू होती है। इसके विभिन्न पात्र भारत में आकर जालन्धर, अमृतसर, दिल्ली आदि नगरों में आश्रय खोजते और जमने का प्रयत्न करते हैं। नवीन कठिन परिस्थितियों में संघर्ष करते हुए कुछ पात्र या तो मर जाते हैं या आत्महत्या कर लेते हैं। शेष पात्र साहस के साथ परिस्थितियों के विरुद्ध संघर्ष करते हुए नई जगहों पर जमते चले जाते हैं। और कहानी सुखान्त वातावरण में समाप्त हो जाती है। इस उपन्यास में दर्जनों पात्र हैं जिनमें से जयदेव पुरी, तारा, कनक, महेन्द्र नैयर, डा० प्राणनाथ, सूद, कनक, पिता पंडित गिरधारीलाल आदि प्रमुख रहे हैं। ये प्रमुख पात्र उपन्यास की कथा के आरम्भ से ही आते हैं और अन्त तक बने रहते हैं। बीच-बीच में कुछ अन्य पात्र उभरते हैं और अपना भाग अदा कर रंगमंच से हट जाते हैं। प्रथम भाग में लगभग सभी पात्र किसी न किसी वर्ग के प्रतिनिधि बन कर आते हैं और दूसरे भाग में अपना वह रूप त्याग व्यक्ति-संघर्ष के प्रतीक बन जाते हैं। प्रमुख पात्रों में से सूद ही एक ऐसा पात्र है जो दूसरे भाग के आरम्भ में रंगमंच पर आता है और जयदेव के जीवन में महत्त्वपूर्ण भाग अदा करता है। उर्मिला भी ऐसी ही नारी पात्र है।

अब हम इन दोनों भागों की संक्षिप्त कथा को प्रस्तुत करने का प्रयत्न करेंगे।

संक्षिप्त कथा :

भाग एक : वतन और देश

१

बाबू रामज्वाया और मास्टर रामलुभाया सगे भाई थे। बड़े भाई रामज्वाया लाहौर की 'भोला पांधे की गली में स्थित अपना किराये का घर छोड़ 'पीपल बेहड़े' मुहल्ले की 'उच्ची गली' में अपने दो तिमंजिले मकान बनवा वहीं रहने लगे थे। वह रेलवे पार्सल दफ्तर में नौकर थे। उनके बड़े लड़के का विवाह हो चुका था। मास्टर रामलुभाया डी० ए० वी० स्कूल में अध्यापक थे। और सुधारवादी विचारों के थे। वह अपने भोला पांधे की गली में स्थित किराये के मकान में ही रहते थे। उनकी आर्थिक स्थित अच्छी नहीं थी। उन

दोनों भाइयों की माँ कभी अपने बड़े बेटे के साथ रहती थी और कभी छोटे बेटे के साथ। रामज्वाया की घरवाली तीखे स्वभाव की थी इसलिए सास से उनकी नहीं पटती थी। अतः सास नाराज होकर छोटे बेटे रामलुभाया के यहाँ चली आती थी। सन् १९४७ की सर्दियों में माँ छोटे बेटे के यहाँ आई तो सर्दी खा गई और निमोनिया से पीड़ित होकर मर गई। उसकी मृत्यु पर घर में रोना पीटना मचा हुआ था। बुढ़िया भाग्यवान थी। भरा-पूरा घर और परिवार छोड़ कर मरी थी। इसलिए मुहल्ले वाले उसका विमान निकालना चाहते परन्तु आर्यसमाजी विचारों के मास्टर रामलुभाया विमान निकालने के विरोधी थे। वह हवन और ईश्वर भजन द्वारा सूतक दूर करना चाहते थे।

माँ की मृत्यु का समाचार सुन बाबू रामज्वाया सपरिवार वहीं आ गए थे। उन्होंने अपने छोटे भाई की आर्थिक स्थिति को जान क्रिया-कर्म का सारा भार और खर्च स्वयं सम्हाल लिया। घर में जगह कम थी, इसलिए स्यापे के लिए गली में चटाइयाँ बिछा दी गईं। रामज्वाया की घरवाली ने पुराने रीति-रिवाज के अनुसार ही स्यापे का प्रबन्ध किया। उसने स्यापा-विशारद कौला नाऊन को बुलवा कर अन्य स्त्रियों के साथ उच्च समवेत स्वर में स्यापा आरम्भ करवा दिया। चारों ओर क्रम से बैठी स्त्रियाँ कौला नाऊन के बोलों और संकेतों के अनुसार अपनी छाती, जाँघ आदि पीटती हुई उच्च स्वर में स्यापा करने लगीं। स्यापा समाप्त हो जाने के बाद दोनों भाइयों ने अपने सिर, दाढ़ी-मूँछ उस्तरे से मुड़वा लिए। लोग उनके पास सहानुभूति प्रकट करने आने लगे। मृत्यु के चौथे दिन 'मरना' बाँटा गया। रामलुभाया की लड़की तारा और रामज्वाया की लड़की शीलो भी रंगीन कपड़े पहन स्यापे में शामिल हुई थीं। शीलो की छः महीने पहले सगाई हो चुकी थी। तारा की अभी नहीं हुई थी। तारा शीलो से ढाई महीने बड़ी थी। उसकी माँ को तारा की सगाई न होने का अफसोस था।

मृत्यु के क्रिया-कर्म समाप्त हो जाने के पूर्व एक दिन तारा और शीलो तारा के घर बैठी बात कर रही थीं। घर में और कोई नहीं था। उसी समय पड़ोसी बाबू गोविन्दराम के लड़के रतन ने कमरे में झाँक कर पूछा कि मेरी

माँ स्यापे से लौटकर नहीं आई ? रतन तारा से तीन वर्ष बड़ा था और ग्यारहवीं श्रेणी में पढ़ रहा था। वह गोरा और लम्बा था। उसके जाने के बाद शीलो ने तारा से कहा कि यह तो बड़ा सुन्दर निकल आया है, तुझसे बोलता-चालता है या नहीं ? तारा ने कहा कि बिगड़ गया है। मुझे अक्सर छेड़ता रहता है मगर मैं फटकार देती हूँ। इसी समय रतन ने तारा को पुकारते हुए कहा कि खाने के लिए सब्जी नहीं है, तेरे यहाँ हो तो दे जा। तारा जाने को सहमत नहीं हुई तो शीलो जाकर उसे दाल दे आई। वे दोनों बड़ी देर तक बातें करती रहीं। अभी तक तारा की माँ आदि स्यापे से लौटकर नहीं आई थी। इसलिए तारा देर होती देख रसोई के लिए आटा सँवारने लगी। शीलो तारा की छोटी बहन मुन्नी को गोद में ले ऊपर छत पर चली गई। तारा रसोई का सारा काम समाप्त कर स्वयं भी ऊपर छत पर आ गई। उसे शीलो वहाँ न दिखाई दी। उसने बिना पुकारे झाँक कर देखा तो रतन शीलो को दोनों बाहों में लिये था। तारा की आहट पाकर दोनों घबड़ा गये। तारा मुन्नी को गोद में उठा क्रोध से पैर पटकती नीचे उतर आई। कुछ देर बाद शीलो भी नीचे आ गई। तारा उससे बोली नहीं। इस घटना के बाद तारा रतन से घृणा करने लगी। वह रतन और शीलो दोनों से नाराज थी। दोनों ने उसे धोखा दिया था।

तारा शीलो से दो श्रेणी आगे पढ़ रही थी। कद की लम्बी और स्वस्थ थी। पन्द्रह वर्ष की होते हुए भी लोग उसे सोलह-सत्रह वर्ष की समझते थे। उसकी माँ उसकी शादी के लिए बहुत चिन्तित थीं। जेठानी से सहायता मिलने के लोभ में वह उसके अनेक काम कर देती थी। उसकी जेठानी बड़े ठाठ के साथ रहती थी। तारा की माँ गरीबी के कारण अपनी उम्र से भी पाँच वर्ष बड़ी लगती थी। जो अन्तर इन दोनों दौरानी व जेठानी में था, वही दोनों भाइयों में था। रामज्वाया की सज-धज और चेहरे में सम्पन्नता की चमक थी। मास्टर रामलुभाया पोशाक और चेहरे—दोनों से ही थके और बुझे से लगते थे। माँ के स्यापे में लाला सुखलाल साहनी भी आये थे। उनसे रामज्वाया का गूढ़ व्यावसायिक सम्बन्ध था। सुखलाल प्रकट में ट्रकों द्वारा माल का यातायात करते थे परन्तु गुप्त रूप से उनके कई अन्य व्यवसाय भी चलते थे। उनके बड़े लड़के

सोमराज की पहली पत्नी तीन मास पूर्व मर गई थी। इसलिए इस समय सोमराज की सगाई की चर्चा भी चली।

सोमराज की माँ जयरानी भी स्यापे में आई थी। उसने शीलो की माँ से सोमराज के दूसरे विवाह के सम्बन्ध में बातें कीं कि यदि सुन्दर, स्वस्थ लड़की मिल जाय तो वह दान-दहेज नहीं लेगी। अवसर देख शीलो की माँ ने तारा के सम्बन्ध में बातें कीं। लड़की सुन्दर-स्वस्थ है, दसवीं में पढ़ रही है। इसी बीच सोमराज कुछ समय के लिये बाहर चला गया, इसलिये प्रायः वर्ष भर इस सम्बन्ध में कोई बात नहीं उठी।

तारा ने सन् १९४३ में फर्स्ट डिवीजन में मेट्रिक किया था। उसका बड़ा भाई जयदेव पुरी लाहौर के दयालसिंह कालेज में एम० ए० के दूसरे वर्ष में पढ़ रहा था। उसके आग्रह पर तारा को भी वहीं दाखिल करा दिया गया। दूसरे दो महीने बाद गुप्त राजनैतिक आन्दोलन में भाग लेने के कारण जयदेव जेल चला गया। तारा अकेली कालेज जाती रही। तारा की इन्टर की परीक्षाएँ चल रही थीं। तारा रोज सुबह नौ बजे परीक्षा देने जाती थी। एक दिन शीलो ने आकर उसके साथ चलना चाहा। शीलो की आँख में रहस्य की चमक थी। शीलो के आग्रह पर तारा को उस दिन सज-धज कर जाना पड़ा। घर से नीचे उतर शीलो ने बताया कि आज सोमराज तुझे देखने आयेगा, तू भी उसे देख लेना। तारा को अच्छा नहीं लगा। रास्ते में शीलो ने रेशमी सूट पहने सोमराज की ओर इशारा किया। तारा ने एक बार देख कर फिर उस तरफ़ नहीं देखा। तारा लड़कियों को घूरने और छेड़ने वाले लड़कों को पसन्द नहीं करती थी। उसे अनायास और कोमल व्यवहार करने वाले लड़के अच्छे लगते थे। जैसे क्रिश्चियन कालेज के असद भाई साहब। बिल्कुल सरल, अनायास, सहृदय, और विनीत।

तारा अभी विवाह न कर एम० ए० तक पढ़ना चाहती थी। परन्तु घरवालों ने उसकी एक न सुनी और सोमराज के साथ सगाई पक्की कर दी। तारा छिपकर बहुत रोई। उसका भाई घर होता तो ऐसा न होने देता, उसे इस बात का भरोसा था। कालेज में तारा की अनेक सहेलियाँ बन गई थीं जो राजनीति में लड़कों के साथ निःसंकोच भाग लेती थीं। सुरेन्द्र कौर उसकी ऐसी ही

सबसे आत्मीय सहेली थी । तारा उसके साथ सभाओं में जाने लगी । इन सभाओं में द्वितीय विश्व-युद्ध की राजनीति पर विचार किया जाता था । इनमें भाग लेने वाले जर्मनी, जापान जैसे फासिस्ट आक्रमणकारियों के विरोधी और रूस, अमेरिका, ब्रिटेन आदि के समर्थक थे । तारा कुछ समझती कुछ न समझती परन्तु उसे इन लोगों का साथ अच्छा लगता । तारा को पिता का कट्टर आर्यसमाजी अनुशासन अधिक अच्छा नहीं लगता था। वह स्वभाव और रुचि से भली लड़की थी । अपनी सहेलियों और साथियों के साथ खाते-पीते, साथ रहते उसके बहुत से संकोच दूर हो गये थे और वह समता और आत्म-सम्मान का अनुभव करने लगी थी ।

२

जयदेव पुरी एम० ए० में पढ़ते समय जेल चला गया था । वह अपने घर की आर्थिक स्थिति सुधारना चाहता था । परन्तु उसने सोचा कि जेल से लौटने और देश के स्वतन्त्र हो जाने के बाद उसके दुःख भी दूर हो जायेंगे । वह जेल में अध्ययन करता और कहानियाँ लिखता रहता था । उसमें साहित्यिक प्रतिभा थी । वह प्रोफेसर और लेखक बनना चाहता था । जेल में रहते हुए उसने अपनी सोलह कहानियों का एक संग्रह तैयार कर लिया था । महायुद्ध में विजय प्राप्त करने की खुशी में सन् १९४५ में मई के दूसरे सप्ताह में उसे जेल से रिहा कर दिया गया । उसने देखा—घर की स्थिति बहुत खराब है । सबके कपड़े पुराने और फटे हुये हैं । जैसे-तैसे गुजारा हो रहा है । उसने देखा-कि सभी लोगों की ऐसी ही एक सी स्थिति थी । अच्छे कपड़ों का बाजार में अभाव था और मँहगाई कमर तोड़े डाल रही थी । पूरणदेई की हालत बहुत खराब थी । वह पाठशाला में बीस रुपये महीने पर बुलाने वाली का काम करती थी । उसकी पन्द्रह साल की एक लड़की सीता थी । किसी पर भी साबुत कपड़े नहीं थे । मास्टर रामलुभाया अतिरिक्त समय में ट्यूशनें किया करते थे । परन्तु घर की दशा बिगड़ती चली जा रही थी ।

तारा इण्टर में फर्स्ट डिवीजन में पास हो गई थी । वह आगे पढ़ना चाहती थी मगर पिता लाचार थे । जयदेव आगे न पढ़ किसी पत्र में नौकरी करने की

बात सोच रहा था। जयदेव ने सुना था कि तारा का भावी पति सोमराज लफँगा लड़का था। बी० ए० में फेल हो गया था। जयदेव इस सम्बन्ध से सन्तुष्ट नहीं था। पंजाब में पक्षपात चल रहा था। जाट और मुसलमान लड़के थर्ड डिवीजन में बी० ए० पास कर के भी सरकारी नौकरी पा जाते थे परन्तु हिन्दू लड़के फर्स्ट डिवीजन प्राप्त करने पर भी नौकरी नहीं पा पाते थे। मास्टर जी सेठ गोपालशाह के परिवार में ट्यूशन करते थे। डा० प्राणनाथ इसी परिवार के सदस्य थे। वह मास्टर जी का बहुत सम्मान करते थे। वह अन्तरराष्ट्रीय ख्याति के अर्थशास्त्री माने जाते थे। पंजाब युनिवर्सिटी में अर्थशास्त्र के प्रोफेसर थे। युद्ध काल में गवर्नर ने उन्हें सरकारी परामर्शदाता नियुक्त कर दिया था। जयदेव की उनके प्रति श्रद्धा थी। प्राणनाथ कम्युनिष्ट न होते हुए भी मार्क्सवादी विचारों के और उग्र परिवर्तन के समर्थक थे। तारा के दाखिले के लिए जयदेव ने उनकी सहायता लेनी चाही। प्राणनाथ ने उसे सुझाव दिया कि तारा को स्वावलम्बी बनना चाहिये। वह गर्मियों की छुट्टियों में तीन महीने उनके छोटे-छोटे भतीजे-भतीजियों को पढ़ा दे। बात तय हो गई।

लाला बाधवामल नारंग ने मास्टर जी से अनुरोध किया कि वह उनकी लड़की उर्मिला को पढ़ा दिया करें। मास्टर जी उसे पढ़ाने जाने लगे। परन्तु उनके बीमार पड़ जाने पर जयदेव ने उनकी ट्यूशनों को सम्हाल लिया। वह उर्मिला को पढ़ाने जाने लगा। जून में नारंग जी का परिवार मरी पहाड़ पर गया तो जयदेव को भी अपने साथ लेता गया। उर्मिला का मन पढ़ने में नहीं लगता था। जयदेव को समझा दिया गया कि वह उसे पढ़ाने में सख्ती से काम ले। पुरी कद का छोटा था। उसे इस बात का अहसास था, इसलिए सदा अकड़ कर बैठता और चलता था। वह उर्मिला को पढ़ाता रहता परन्तु उर्मिला उधर ध्यान नहीं देती थी। वह उसे कोई किस्सा सुनाती या ऊटपटाँग सवाल कर बैठती। जयदेव समझाता तो हँसने लगती। उर्मिला सुन्दर न होने पर भी आकर्षक थी। जयदेव को बड़े संयम से काम लेना पड़ता। वह पढ़ाते समय गम्भीर बना रहता। एक दिन उर्मिला की माँ ने उसे जयदेव से चुहल करते सुन लिया तो खूब मार लगाई। जयदेव ने इस घटना से विक्षिप्त सा होकर उसी दिन लाहौर लौट जाने का संकल्प कर लिया। वह

दूसरे दिन अकस्मात् लाहौर लौट आया । परन्तु प्रतिक्षण उर्मिला की याद में डूबा रहता । मगर उच्चाकांक्षी जयदेव ने सोचा कि दलदल में फँसने से बच गया । वह पत्नी के रूप में एक सुशिक्षित कलात्मक रुचि वाली लड़की चाहता था ।

३

जयदेव की कहानियाँ 'पैरोकार,' 'निशात' आदि स्थानीय पत्रों में प्रकाशित होने लगी थीं । कुछ कहानियों को प्रशंसा हुई । जयदेव और भी अकड़ कर चलने लगा । 'पैरोकार' के सम्पादक ने उसकी प्रशंसा की । अब अन्य पत्रों के सम्पादक भी उसकी रचनाओं के लिए आग्रह करने लगे परन्तु पारिश्रमिक कोई भी नहीं देता था । जयदेव अपने अभावों के विषय में सोचता रहता । अन्त में पैसों के लिए 'मुनव्वर प्रकाशन' से एक उपन्यास अनुवाद करने के लिए ले आया, परन्तु समय पर पैसे न मिल सके । उसके एक मित्र ने उसे 'नया हिन्द पब्लिकेशन' के मालिक पंडित गिरधारी लाल से मिलने की सलाह दी । पंडित जी की मँझली लड़की कनक एम. ए. में पढ़ते हुए हिन्दी की परीक्षा देना चाहती थी । पंडित जी देशभक्त और उदार विचारों के थे । कनक भी प्राय: सभाओं,जुलूसों में भाग लेती थी । वह सुन्दर और आकर्षक थी । उसने जयदेव पुरी की कहानियाँ पढ़ी थीं और अपने पिता को भी पढ़ कर सुनाई थीं । उसने अपने एडवोकेट जीजा नैयर को जयदेव का परिचय एक महान साहित्यकार के रूप में दिया था । यह सम्मान पाकर जयदेव ने पारिश्रमिक न लेने को शर्त पर कनक को हिन्दी पढ़ाना स्वीकार कर लिया । वह कनक को पढ़ाने आने लगा । परन्तु उस सम्पन्न परिवार के सम्मुख अपनी आर्थिक हीनता कभी प्रकट नहीं होने देता था ।

जयदेव कनक की प्रतिभा और संयमित सहज व्यवहार को देख उसके प्रति आकर्षित हो उठा । अब तक एक कहानीकार के रूप में जयदेव काफी प्रसिद्धि प्राप्त कर चुका था । परन्तु उसे कोई नौकरी के लिए नहीं बुलाता था । अब उसे अपनी आर्थिक दीनता और अधिक खलने लगी । डा० राधे विहारी कांग्रेस के प्रमुख नेता और प्रभाव शाली व्यक्ति थे । सरकार में भी उनका आदर और प्रभाव था । जयदेव उनके सहायक डाक्टर प्रभुदयाल पुरी के साथ

उनसे मिलने गया। उन्होंने उसे 'पैरोकार' में नौकरी दिलवा दी। सम्पादक कर्मचन्द 'कशिश' के प्रथम साक्षात्कार का उस पर अच्छा प्रभाव नहीं पड़ा। उसने 'पैरोकार' में काम करना आरम्भ कर दिया। अब वह कनक के यहाँ कई-कई दिनों बाद जा पाता। आने पर कनक उसे उलाहना देती। अब वह जयदेव का आदर करने लगी थी। एक दिन जयदेव वहाँ पहुँचा तो पंडितजी और कनक बाजार जाने को उतर रहे थे। परन्तु पंडितजी ने कनक को रोक कर पढ़ लेने के लिए कहा। कनक बाजार नहीं गई। कनक की छोटी वहन कंचन भी पिता के साथ बाजार चली गई। उस दिन एकान्त पा जयदेव और कनक ने अपने प्रेम को प्रकट करते हुए जीवन भर एक दूसरे का साथ देने की प्रतिज्ञा की। पुरी ने उसे अपनी हीन आर्थिक दशा भी बता दी। कनक भी रुपये-पैसे की भूखी नहीं थी। अब वे लोग बाहर भी परस्पर मिलने लगे। कनक ने भी पत्रकारिता सीखने का निश्चय कर लिया।

४

जयदेव ने पत्र के कार्यालय में शीघ्र ही अपनी उपयोगिता प्रमाणित कर दी। उसकी राय का मूल्य समझा जाने लगा। एक दिन सोमराज परीक्षा-भवन में एक मुसलमान प्रोफेसर द्वारा नकल करता हुआ पकड़ा गया। चारों ओर इसकी चर्चा होने लगी। तारा के माँ-बाप ने यह समाचार सुन तारा की पढ़ाई बन्द कर देनी चाही और इस सम्बन्ध में जयदेव से बात की परन्तु जयदेव ने अपने बलबूते पर उसकी पढ़ाई जारी रखने की बात कही और तारा को भी चिन्ता न करने के लिए कहा। इधर मुहल्ले में कुछ हिन्दू औरतों ने आकर मुसलमानों के खिलाफ जहर उगलते हुए हिन्दुओं को संगठित होने का प्रचार करना आरम्भ कर दिया। तारा उनकी बातें सुनती डा० प्राणनाथ के घर ट्यूशन पढ़ाने चली गई।

५

तारा जब हवेली में पढ़ाने पहुँची तो उसे नौकर ने सूचना दी कि बच्चे उससे नहीं पढ़ेंगे। तारा निराश हो लौट रही थी कि डा० प्राणनाथ ने उसे बुला लिया। तारा पिछले वर्ष भी यहाँ ट्यूशन कर चुकी थी। वह कभी-कभी डाक्टर

के कमरे में बैठ उनके साथ चाय पी लेती थी। घर की औरतें इसी बात पर तारा से नाराज हो गईं थीं। असद भी वहाँ तारा से मिलने का सुयोग पा डाक्टर के पास आ बैठता था। तारा डाक्टर के कमरे में चली गई। वहाँ असद ने बताया कि हिन्दू और मुसलमानों में परस्पर भयंकर जहर फैलाया जा रहा है इसलिए डाक्टर इसकी सूचना गवर्नर तक पहुँचा दें। डाक्टर ने समझाया कि अंग्रेज सरकार अपना भला हिन्दू-मुस्लिम वैमनस्य में ही देख रही है, इसलिए अंग्रेज गर्वनर कुछ भी नहीं करेगा। तारा असद के साथ जाना चाहती थी परन्तु डाक्टर ने उसे रोक लिया और समझाया कि इस घर का वातावरण उसके अनुकूल नहीं है, इसलिए वह आना बन्द कर दे। यह कहकर डाक्टर ने उसे सौ रुपए एक का नोट देकर विदा कर दिया। डाक्टर असद के प्रति तारा के आकर्षण को भी भाँप गये थे और उन्होंने असद की प्रशंसा की थी। तारा घर लौट आई।

६

कड़ाके की सर्दी पड़ने लगी थी। शाम को चारों ओर कोहरा छा जाता। शहर में मुस्लिम-लीग के समर्थन में नारे लगते और जुलूस निकलते। मुसलमान खिजर-मिनिस्ट्री का विरोध करते और हिन्दू-मुस्लिम एकता के साथ ही 'पाकिस्तान जिन्दाबाद' के भी नारे लगाते। यह देख-देख लाहौर के हिन्दू सहमने लगे। जयदेव ने 'पैरोकार' के माध्यम से इस साम्प्रदायिक घृणा के भयंकर भावी परिणाम के सम्बन्ध में दो बार चेतावनी दी थी। उसने पाकिस्तान की मांग का विरोध किया था। कुछ हिन्दू और मुसलमान नवयुवक और लड़कियाँ इस साम्प्रदायिक विद्वेष के विरुद्ध आन्दोलन व प्रचार कर रहे थे। ये सब कम्युनिस्ट थे। एक दिन उन लड़कियों ने मुस्लिम-महिलाओं के एक जुलूस में शामिल हो हिन्दू-मुस्लिम एकता के नारे लगाये। परन्तु सरकारी गुन्डों और जासूसों ने अचानक हिन्दू-मुस्लिम दंगा करवा दिया। झगड़ा करवाने में वहीद नामक एक पुलिस के सिपाही ने प्रमुख भाग लिया था। लोगों के उसे पकड़ रखा था। जयदेव ने कम्युनिस्टों का विरोध किया क्योंकि वे पाकिस्तान की मांग का समर्थन कर रहे थे। असद ने उसे समझाया कि हम देश के बँटवारे के खिलाफ हैं। कांग्रेस ने ही बटवारे की माँग स्वीकार कर ली है।

जुलूस खत्म हो जाने के बाद सब लोग अपने-अपने घर चले गये। असद तारा को उसके घर पहुँचाने गया। रास्ते में दोनों एक दूसरे के विचारों को टोहने का प्रयत्न करते रहे।

लीग का आन्दोलन बढ़ता देख खिजर-मिनिस्ट्री ने पंजाब के कई शहरों में दफ़ा १४४ लगा दी थी। मुस्लिम लीग ने लाहौर में इसके खिलाफ अहिंसात्मक सत्याग्रह छेड़ दिया। लीग के बड़े-बड़े नेता जेल चले गए थे। लीग के स्वयं-सेवक सत्याग्रह करते और गिरफ्तार हो जाते। एक दिन तारा और असद—दोनों ने एक दूसरे के प्रति अपने प्रेम को प्रकट कर दिया। असद ने तारा को एम० ए० करने की राय दी। तारा घर लौट माँ को मुन्नी के कारण परेशान देख रसोई बनाने के लिए बैठ गई। मास्टर जी ट्यूशन पढ़ा कर लौटे और भोजन करने बैठ गये। उसी समय तारा की माँ ने जयदेव की शादी की चर्चा चलाई कि भाभी बहुत जोर दे रही है। मास्टर जी ने समझाया कि जब जयदेव अभी शादी नहीं करना चाहता तो उसे दबाना बेकार है। उसके ताऊ उसी से बातें कर लें तो अच्छा रहे। तारा ने भी कहा कि भाई बिना लड़की देखे शादी नहीं करेंगे। इसी सन्दर्भ में तारा ने यह भी बता दिया कि भाई एक बड़े घराने की ब्राह्मण लड़की कनक से विवाह करना चाहते हैं। माँ द्वारा विरोध किये जाने पर तारा ने बताया कि अब तो अन्तरजातीय विवाह होने लगे हैं। कनक की बड़ी बहिन खत्रियों में व्याही है। इसी समय जयदेव आ गया। जयदेव भोजन करके बैठा ही था कि उसके ताऊ रामज्वाया आ गये। जयदेव चौके से उठकर कोठरी में आ गया और ताऊ को प्रणाम किया। उन्होंने इधर-उधर की बातें करने के बाद जयदेव के विवाह की बात छेड़ दी और जयदेव से पूछा कि वह लड़की वालों को क्या उत्तर दे दें? जयदेव ने अगली साल तक इन्तजार करने के लिये कहा तो बाबू रामज्वाया बिगड़ कर कहने लगे कि लड़की अपने माँ-बाप की अकेली सन्तान है, पाँच हजार नकद और मकान जायदाद मिलेगी जिसके द्वारा तारा का भी विवाह किया जा सकेगा। शीलो के विवाह में उन्होंने आठ हजार खर्च किये थे। जयदेव ने लड़की को बिना देखे शादी करने से इन्कार कर दिया तो ताऊ नाराज होते हुए उठ कर चले गये। इस वार्तालाप से उत्साहित होकर तारा ने असद की बात करते हुए कहा

कि वह कह रहे हैं कि मैं स्कालरशिप की परीक्षा देने की तैयारी करूँ, वह मदद कर देंगे। इस पर जयदेव ने कहा कि असद जैसे कम्युनिस्टि इसी प्रकार भोले-भाले लोगों को फाँस कर अपनी पार्टी का मेम्बर बना लेते हैं। परन्तु तुम परीक्षा दो, मैं सहायता कर दूँगा। सुनकर तारा पढ़ाई में लग गई। असद ने एक दिन उन दोनों के सम्बन्ध में जयदेव के रुख के बारे में पूछा तो तारा बोली कि भाई थिंकर हैं, साम्प्रदायिकता से चिढ़ते हैं। कनक वाला मामला हो जाये तो स्वयं बात बन जायेगी।

७

एक दिन सुबह ही अखबारों में सूचना छपी कि खिजर के मन्त्रिमंडल ने इस्तीफा दे दिया है और गवर्नर ने हुकूमत सम्हाल ली है। लीगी अखबारों ने इसे लीग की विजय घोषित किया। हिन्दुओं ने सोचा कि अब मुसलमानों की हुकूमत चलेगी। जयदेव पुरी और तारा अपने-अपने काम पर जाने के लिए घर से निकल शहालमी तक पहुँचे ही थे कि एक जुलूस मिल गया जो लीगी नारे लगा रहा था। जुलूस के मुसलमान 'खिजर जिन्दाबाद' के नए नारे लगा रहे थे। यह एक नया परिवर्तन था, खिजर के विरोधी उसके समर्थक बन गये थे। जुलूस निकल जाने के बाद पुरी अपने दफ्तर में पहुँच गया और तारा लाइब्रेरी चली गई। दफ्तर में नये समाचार आ रहे थे, वातावरण में उत्तेजना थी। लोग सोच रहे थे कि अब नवाब ममदोत विशुद्ध मुस्लिम-मिनिस्ट्री बनायेगा। परन्तु नया समाचार आया कि गवर्नर ने लीग को मिनिस्ट्री बनाने के लिये नहीं बुलाया है। असेम्बली के सामने मास्टर तारासिंह के नेतृत्व में सिखों की तथा उनके विरोध में लीगी मुसलमानों की उत्तेजित भीड़ें इकट्ठी हो रही हैं। 'पैरोकार' के सम्पादक कशिश जी ने अपने अखबार का सप्लीमेन्ट्री अंक निकालने का निश्चय किया। दफ्तर के सब लोग विज्ञापन और समाचार जुटाने में लग गये। उधर असेम्बली के सामने मास्टर तारासिंह ने कृपाण खींच लीगियों को चुनौती दे डाली। कांग्रेस ने इस नई स्थिति पर विचार करने के लिए एक सभा करने का ऐलान किया।

जयदेव शाम को उस सभा में गया। वहाँ कांग्रेस के बड़े-बड़े नेता नहीं थे। नगर कांग्रेस के प्रधान कामरेड कपूर ने गम्भीरता से विचार करने की अपील

की परन्तु कुछ हिन्दू वक्ताओं ने मुसलमानों का घोर विरोध करते हुए पंजाब में पाकिस्तान न बनने देने की बात कही। इससे उत्तेजना फैल गई और सभा समाप्त हो गई। इसी समय मास्टर तारासिंह और डा० गोपीचन्द भार्गव वहाँ आ गये। मास्टर ने चुनौती भरा व्याख्यान दिया और भार्गव ने असेम्बली के माध्यम से पाकिस्तान का विरोध करने की प्रतिज्ञा की। असद आदि का कहना था कि इस सब में खिजर और गवर्नर की मिली-भगत है। लीगी मुसलमान मास्टर की धमकी से उत्तेजित हो रहे थे। उनमें यह प्रचार हो रहा था कि कांग्रेस ने अपने झंडे में से हरा रंग फाड़ डाला है, वह भी मुसलमानों की विरोधी है। कम्युनिस्ट इस नई स्थिति से परेशान थे।

४ मार्च को लीगी अखबारों ने रंगे समाचार छाप कर इस उत्तेजना को और अधिक बढ़ाने की कोशिश की। इससे हिन्दू, सिक्ख, मुसलमान-सभी उत्तेजित हो उठे। जगह-जगह भीड़ें जुटने लगीं और पुलिस ने गोली चलानी प्रारम्भ कर दी। नगर में कर्फ्यू लग जाने की सम्भावना बढ़ गई। तारा लाइब्रेरी गई हुई थी इसलिए जयदेव साइकिल पर उसे लिवा लाने चल दिया। बीच में उसे छुरे चलने का समाचार मिले। असद ने उसे बताया एक विद्यार्थी भारद्वाज अपनी गाड़ी में तारा को घर पहुँचा देगा। पुरी अपने दफ्तर चला गया। वहाँ से लौटते समय पुरी को जगह-जगह दंगा होने के समाचार मिले। अपनी गली में आकर उसने गली के दौलू मामा को घायल पड़ा देखा। पुरी और रतन उसे अस्पताल ले गये। परन्तु मामा मर गया। वहाँ से लौटते समय उन्होंने सुना कि कई जगह दंगे हो रहे हैं। दोनों घर लौट आये। शहर में कर्फ्यू लग गया था।

५ मार्च को पाँच बजे कर्फ्यू समाप्त हुआ तब अखबार निकले। मास्टर तारासिंह के नेतृत्व में हिन्दू-सिक्ख-कांग्रेसियों ने ऐन्टी पाकिस्तान लीग की स्थापना कर ली थी। हिन्दू और मुसलमान अखबार परस्पर एक दूसरे को दोष दे रहे थे। उस दिन पुरी को 'पैरोकार' का सम्पादकीय लिखना पड़ा। घर पहुँच कर उसे समाचार मिला कि वधावामल की लड़की उर्मिला के पति का कत्ल हो गया था। पुरी उनके यहाँ सम्वेदना प्रकट करने गया। उस दिन पुरी ने अपने सम्पादकीय में दौलू मामा के प्रति श्रद्धांजलि अर्पित करते लीग और

कांग्रेस दोनों को दोषी ठहराया था। कुछ लोगों ने इस लेख की प्रशंसा की, कुछ ने राजनीतिक भूल बताया। पुरी काफी उत्साहित हुआ। कनक के यहाँ गया परन्तु कनक के व्यवहार में उपेक्षा की-सी खनक पाकर लौट आया। ७ मार्च को उसके लिखे सम्पादकीय को लेकर कशिश जी ने कांग्रेस का पक्ष लेते हुए उसकी भर्त्सना की तो पुरी ने क्रोध में आकर त्यागपत्र दे देने की बात कही—कशिश जी ने उसे विश्वासघाती कहा। बदले में पुरी ने भी उन्हें विश्वासघाती बताया। इस पर कशिश जी ने चपरासी को बुला पुरी को दफ्तर से निकलवा दिया।

८

जयदेव पुरी के 'पैरोकार' से निकाले जाने की घटना सभी पत्रकारों को मालूम हो गई, परन्तु सब खामोश रह गए। सभी पत्रों की अपनी-अपनी राजनीतिक और साम्प्रदायिक नीतियाँ तथा अनुशासन के नियम थे। कम्युनिस्टों ने पुरी के साथ किए गए व्यवहार का विरोध किया और पत्रकारों की सभाएँ कर पुरी की प्रशंसा की। इससे पुरी को उत्साह मिला और उसने सर्व-साधारण के कल्याण के लिए प्राण तक दे देने की शपथ ले ली। अब वह भी कामरेडों के जलूसों में भाग लेने लगा। उन्होंने उसे नौकरी दिलाने की भी कोशिश की मगर कामयावी नहीं मिली। अब पुरी को आर्थिक अभाव सताने लगा। वह पैसों का मुहताज हो गया। इस परेशानी में पुरी को बार-बार कनक की याद आती परन्तु इस स्थिति में उसे कनक के यहाँ जाना अपमानजनक लगता। उसने एक अनुवाद करना आरम्भ कर दिया था परन्तु उसके भी पैसे नहीं मिले क्योंकि प्रकाशक को पुस्तक छापने की जल्दी नहीं थी।

पंजाब में गवर्नर का शासन चल रहा था। पाकिस्तान की माँग और हिन्दू-सिखों द्वारा उसका विरोध—दोनों ही जोरों पर थे। पूर्वी पंजाब के मुसलमान पश्चिम की ओर और पश्चिमी पंजाब के हिन्दू-सिख पूर्व की ओर भाग रहे थे। दोनों तरफ हथियार इकट्ठे किये जा रहे थे। कहीं न कहीं दंगा हो ही जाता था। इसलिये तारा का घर से बाहर जाना बन्द था। पुरी घर पर ही लिखता रहता और कामरेडों द्वारा आयोजित नागरिक एकता की सभाओं में भाग लेता। उसके साथ तारा भी वहाँ जाती और असद भी आ जाता। परन्तु

तारा ने महसूस किया कि तारा और असद का मिलन भाई को पसन्द नहीं। वह सतर्क हो गई। पुरी कनक के नये व्यवहार से परेशान था। उसे कनक का 'फ्री' होना पसन्द नहीं था। मुहल्ले के रतन, बीरसिंह आदि नवयुवक पाकिस्तान के विरोधी थे और पुरी हिन्दू-मुस्लिम एकता का प्रचारक। इसलिये वे लोग पुरी से खिचे-खिचे से रहने लगे। पुरी के अनुवाद के प्रकाशक गौस मुहम्मद ने उसे कुछ रुपये दिए और इतिहास की एक पुस्तक लिखने के लिये कहा जिस पर एक प्रोफेसर का नाम जाना था। परन्तु पुरी ने इस प्रस्ताव को स्वीकार नहीं किया। पुरी जब घर लौटा तो उसे गली में उत्तेजना दिखाई थी। रतन के हाथ में पिस्तौल थी। इसी समय बाबू रामज्वाया पुरी के घर आ गए। उन्होंने कहा कि लड़के वाले तारा की शादी की जल्दी मचा रहे हैं। भाई-बहन दोनों ने विरोध किया परन्तु उन्हें डाँट कर चुप कर दिया गया। बाबू रामज्वाया शादी की बात तय कर चले गये।

इसी समय मुसलमानों की एक भीड़ ने गली पर हमला कर दिया। एक घर में आग लग गई। गली वालों ने सामना किया तो मुसलमान लौट गये। गली वालों ने अब पहरे का इन्तज़ाम कर लिया। पुरी ने परेशान हो इतिहास की पुस्तक लिखने का प्रस्ताव स्वीकार कर लेने का निश्चय कर लिया। गली में पुलिस आई और कुछ लोगों को गिरफ्तार कर ले गई।

९

पुराने लाहौर में दंगों का आतंक छाया था परन्तु बाहर की बस्तियों में कारोबार पूर्ववत् चल रहा था। कनक सवा महीने से पुरी से नहीं मिल पाई थी इसलिए व्याकुल थी। वह पुरी से मिलने के लिए व्यग्र हो उठी। उसे पुरी सम्बन्धी सारे समाचार मिलते रहते थे। पुरी के प्रति उसकी श्रद्धा और अधिक बढ़ गई थी। पत्रों में भोला पाँधे की गली की घटना को पढ़ कर उसने पुरी से मिलने का दृढ़ निश्चय कर लिया। वह पिता से एक सहेली के यहाँ जाने का बहाना बना पुरी के यहाँ जा पहुँची। वहाँ तारा से उसकी मुलाकात हुई, माँ से भी मिली। तारा से उसे पुरी के सारे समाचार मिल गये। तारा कनक की पुरी के प्रति श्रद्धा और प्रेम को भाँप गई। कनक कुछ देर वहाँ बैठ कर लौट गई। वह पुरी की दयनीय दशा को जान उसे कुछ रुपए देना

चाहती थी, इसलिए उसने जुबेदा के बहाने से पिता से सत्तर रुपए ले लिए। जैसा कि उसे मालूम था कि पुरी मंगलवार को तीन बजे पार्टी-दफ्तर जायेगा। वह जुबेदा के यहाँ जाने का बहाना बना वहाँ पहुँच गई। वहाँ दोनों मिले और परस्पर उलाहना देते रहे। कनक ने शादी की बात चलाई तो पुरी ने कुछ समय इन्तजार करने के लिए कहा। कनक ने उसे रुपए देने चाहे तो पुरी ने स्वीकार नहीं किये। घर लौट कर कनक ने रुपए पिता को वापस कर दिए। उसे यह नहीं मालूम था कि इस बीच जुबेदा उसके घर आई थी और पिता जी को उसकी बहानेबाजी का पता चल गया था। परन्तु उन्होंने कनक से कुछ कहा नहीं। सावधान जरूर हो गये।

कम्युनिस्टों ने हिन्दू-सिख-मुस्लिम एकता और शान्ति-स्थापना के लिए बड़े-बड़े विशाल जुलूस निकालने प्रारम्भ कर दिए। दोनों वर्गों के मजदूरों ने पहरे बैठा दिए। पुरी घर पर नई पुस्तक लिखता रहता। वह अब बाहर कम जाता था। उसे पैसे प्राप्त करने के लिए, कुछ समय के लिए अपने सिद्धान्तों से समझौता कर लेना उचित लगा, इसलिए वह पूरी लगन से पुस्तक लिखने में जुट गया। नगर में वातावरण शान्त सा हो गया परन्तु विवाह की तैयारियाँ होते देख तारा की अशान्ति बढ़ गई। वह असद से मिलने को छटपटा रही थी। एक दिन कनक के पिता का बुलावा पाकर पुरी उनसे मिलने उनके घर गया। उन्होंने बड़े प्रेम से उनका स्वागत किया और उसके सामने 'रेत को नींव' नामक हिन्दी उपन्यास का उर्दू में अनुवाद करने का प्रस्ताव रखा। सौदा तय होगा और उसे सौ रुपए अग्रिम मिल गए। इसके बाद पुरी कनक से मिला और फिर पुरी और कनक घर से बाहर आ सड़क पर चलने लगे। पुरी कल्पना करने लगा कि एक दिन उसे पंडित जी का प्रकाशन सम्हालना पड़ेगा, तब वह कशिश जी आदि से बातें करेगा।

१०

पुरी उस अनुवाद के कार्य को अधिक सरल समझ उसी में जुट गया। वह सुबह इतिहास की पुस्तक लिखता और दोपहर में अनुवाद करता। कम्युनिस्ट पार्टी से निमंत्रण पा वह १ मई को उनकी सभा में भाषण देने गया। तारा भी उसके साथ गई। वहाँ असद से उनकी मुलाकात हुई। उन

दोनों ने शीघ्र ही सुरेन्द्र कौर के यहाँ मिलने का वायदा किया। पुरी के भाषण की खूब प्रशंसा हुई। पाँच मई को तारा ने सुरेन्द्र के यहाँ जाने की बात कही। पुरी ने शाम को चलने का वायदा किया परन्तु शाम को शीलो अपने बच्चे को लेकर आ गई। इसलिए तारा का जाना न हो सका। शीलो ने बताया कि सोमराज यह सुन कर बहुत नाराज है कि तारा ने उसे पसन्द नहीं किया है। उसे तारा का इधर-उधर घूमना पसन्द नहीं है। यह सुनकर पुरी बहुत नाराज हुआ। पुरी कनक को दो बार मिलने के लिए लिख चुका था परन्तु कोई उत्तर नहीं मिला था। अनुवाद समाप्त कर पुरी तारा को साथ लेकर घर से निकला। तारा सुरेन्द्र के घर रुक गई और पुरी कनक के यहाँ चला गया। पंडित जी ने अनुवाद को देख उसकी प्रशंसा की। इसके बाद उन्होंने पुरी से कहा कि तुमने कनक को छोटी बहन की तरह माना है, उस सम्बन्ध को निबाहने का उत्तरदायित्व भी तुम पर है। पुरी ने कनक से मिलना चाहा परन्तु पंडितजी ने टाल दिला। क्रोध से उबलता पुरी वहाँ से सुरेन्द्र के यहाँ पहुँचा और तारा को लेकर घर की ओर चल पड़ा। असद के न आने के कारण तारा की उससे मुलाकात नहीं हो सकी थी।

बाबू रामज्वाया की देखरेख में तारा के विवाह की तैयारियाँ होने लगी। तारा भी घरवालों को ज्यादा नाराज न करने के लिए छोटे-मोटे कामों में हाथ बँटाने लगी। पुरी यह परिवर्तन देख दंग रह गया। वह तारा की ओर से उदासीन हो उठा। तारा उसे इस प्रकार उदासीन देख घबड़ा उठी। सोचा, भाई भी बदल गये। पुरी पंडित गिरधारीलाल द्वारा पहुँचाए गए आघात से बहुत क्रुद्ध और क्षुब्ध था। वह कनक से जबाव तलब करना चाहता था। वह उसके घर के सामने से कई बार निकला। एक बार कंचन ने उसे देख नमस्ते की परन्तु बुलाया नहीं। इस अपमान से पुरी और भी तिलमिला उठा। तारा को बारह तारीख को सुरेन्द्र के यहाँ असद से मिलना था। पुरी उसे बारह तारीख को वहाँ पहुँचाने का वायदा कर दस तारीख को तारा को कनक के यहाँ ले जाने के लिए घर से निकलने वाला ही था कि दंगा होने और कर्फ्यू लगने का शोर मच उठा। वे लोग रुक गए। रात को गली के कुछ मकानों पर जलते हुए पलीते आकर गिरे। रात भर सब लोग आतंक के मारे सो

नहीं पाए। कर्फ्यू चौदह तारीख को खुला। पुरी तारा को लेकर कनक के यहाँ पहुँचाने चल दिया। तारा ने लौट कर बताया कि कनक अपनी बड़ी बहन के यहाँ गई है। इससे निराश हो पुरी तारा को सुरेन्द्र के यहाँ छोड़ कुछ देर बाद आने का वायदा कर चला गया। पुरी जब लौट कर सुरेन्द्र के यहाँ गया तो पता चला कि सुरेन्द्र और तारा पार्टी दफ्तर गई हैं। पार्टी दफ्तर पहुँचने पर उसे मालूम हुआ कि तारा असद के साथ कहीं चली गई है। वहाँ से लौटते समय पुरी ने तारा और असद को एक रेस्तोराँ से बाहर निकलते देखा।

हुआ यह था कि तारा सुरेन्द्र के घर से असद के साथ चली आई थी और एक रेस्तोराँ में बैठ कर उससे बातें की थी। तारा द्वारा शादी की बात चलाने पर असद ने कहा था कि अभी पार्टी इसके लिए इजाजत नहीं दे रही। इसलिए तारा हिम्मत से काम ले और मामलों का मुकाबला करे। वे लोग वहाँ से निकल ही रहे थे कि पुरी ने उन्हें देख लिया। पुरी ने असद का अपमान किया और तारा को अपने साथ ताँगे पर बैठा लिया। रास्ते में उसने तारा से सारी बातें पूछी और निराश और हताश तारा ने उसे खूब जवाब दिए। फिर दोनों मौन धारण किए घर लौट आए। शाम को तारा को बुखार आ गया। दूसरे दिन पुरी लिखता रहा परन्तु कनक की उपेक्षा और तारा के एक मुसलमान से विवाह करने की इच्छा उसे क्षुब्ध बनाए रही। अपनी इसी मनःस्थिति में वह तारा से कहने लगा कि यदि वह यह विवाह नहीं करना चाहती थी तो तैयारियों में हाथ क्यों बटा रही थी। तुम दरअसल विवाह न कर उच्छृंखल बन कर रहना चाहती हो। तुम दोनों भागने की योजना बना रहे थे। यह लांछन सुन तारा ने अपना माथा खाट की पाटी पर दे मारा। खून निकल आया। माँ के आने पर दोनों ने तारा के गिर जाने से चोट लगने की बात कह दी। पुरी अपनी क्रूरता के लिए बहुत पछताया। तारा के घाव की मलहम-पट्टी कर दी गई।

अखबारों में समाचार छपा कि कांग्रेस ने विभाजन को स्वीकार कर लिया है। पुरी ने लोगों को समझाया कि पाकिस्तान का मतलब लीग की मिनिस्ट्री ही तो है, हिन्दू-मुसलमानों को तो एक साथ ही रहना है। तारा उसके इस पाखंड को देख वितृष्णा से भर उठी। डाक्टर प्रभुदयाल ने लोगों को

समझाया कि इस विभाजन की बात से गांधी जी का कोई सम्बन्ध नहीं है। यह तो नेहरू, पटेल और काँग्रेस ने स्वीकार किया है। उसी रात तारा ने मिट्टी का तेल छिड़क आत्महत्या करनी चाही परन्तु पकड़ी गई। दूसरे दिन समाचार मिला कि हिन्दुओं ने मुसलमानों पर गोलियाँ चलाई हैं और कई बाजार बन्द हो गये हैं। उसी दिन तारा, शीलो और पुष्पा में तारा के विवाह की समस्या को लेकर काफी बातें होती रहीं। तारा ने अपना असद सम्बन्धी रहस्य उन्हें बता दिया। शीलो ने बताया कि सोमराज तारा से बहुत नाराज है। इधर पुरी भी तारा और असद के सम्बन्ध को लेकर तारा से बहुत नाराज था।

जून के प्रथम सप्ताह में आधा पश्चिमी पंजाब पाकिस्तान को दिए जाने का निर्णय हो गया। लाहौर किसमें रहेगा, यह विवाद और अनुमान का विषय बन गया। इस निर्णय ने फिर दंगे भड़का दिए। हिन्दुओं ने मुसलमानों पर आक्रमण कर दिया। मुसलमान डर कर लाहौर से भागने लगे। कुछ हिन्दुओं ने मुसलमानों को समझा-बुझा कर रोका भी। कामरेड महाजन ने पुरी को बताया कि अंग्रेज पंजाब को अपने ही अधिकार में रखना चाहते हैं। प्रोफेसर प्राणनाथ का भी यही विचार है। अंग्रेज अपने हित के लिए यह विभाजन करवा रहे हैं। पुरी इन बातों को सुन परेशान हो उठा। उसने घर लौट रतन और डाक्टर प्रभुदयाल को अंग्रेजी चाल के सम्बन्ध में समझाया। परन्तु रतन ने अंग्रेज और मुसलमान दोनों को हिन्दुओं का दुश्मन घोषित किया।

११

अप्रैल के अन्त में पुरी और कनक ने परस्पर मिलने और बातें करने की तरकीब निकाल ली थी। एक दिन जब कनक पुरी से मिलने गई थी, उसकी बड़ी बहन कान्ता और जीजा नैयर आ गए। काफी देर तक भी कनक के न लौटने पर उन्होंने चिन्ता प्रकट की। कनक के लौटने पर नैयर ने उस पर व्यंग्य कसा। वह मालरोड पर उसे पुरी के साथ घूमता देख चुका था। दूसरे दिन कनक को कंचन से पता लगा कि इस बात से पिताजी बहुत दुःखी हैं। हमें उनकी भावना का ख्याल रखना चाहिये। कनक ने पिता को सफाई देनी चाही परन्तु पिता ने उसे समझाते हुए कहा कि उसे कुछ समय तक पुरी से मिलना जुलना बन्द कर देना चाहिए। कनक चुप रह गई। दूसरे दिन उसे पुरी से मिलना

था। उसने उसे पत्र लिखा कि वह नहीं आ सकेगी, परन्तु उसका वह पत्र चुपचाप पिता ने रोक लिया। कनक को पता नहीं चला। कनक अपने पत्र का उत्तर न पाकर व्याकुल हो उठी। एक दिन दोपहर को वह चुपचाप पुरी से मिलने नियत स्थान पर पहुँची, परन्तु पुरी नहीं आया। नौकर से कनक को यह पता चल गया कि उसका पत्र रोक लिया गया था। इससे वह मर्माहत हो उठी। उसने सोचा कि अब पिताजी से सारी बात साफ-साफ कह देनी चाहिए। परन्तु अवसर नहीं मिला।

एक दिन कान्ता के पति नैयर ने कनक से परिहास करते हुए कहा कि पुरी हीन-भावना से बुरी तरह से ग्रस्त है, इसीलिए अकड़ दिखाता रहता है। इस पर कनक नैयर का अपमान कर बैठी। कनक की बैचेनी को सब समझ रहे थे मगर उससे कोई कुछ भी नहीं कहता था। कनक ने नैयर पर अपना रहस्य प्रकट नहीं किया था, इसलिए वह भी चुप था। एक दिन उसने कनक से उसकी उदासी और परेशानी का कारण पूछा तो उसने पत्र रोके जाने की बात बता दी। नैयर और कान्ता उसे अपने साथ अपने घर माडल-टाउन ले गये। नैयर ने उसे समझाया कि हम लोग इस सम्बन्ध का विरोध केवल तुम्हारे हित के लिए ही कर रहे हैं। परन्तु कनक ने अपना दृढ़ निश्चय बता दिया कि वह पुरी से ही शादी करना चाहती है। उसे धन नहीं चाहिए। कान्ता के समझाने पर भी उसने यही बात कही। अन्त में नैयर ने उससे वायदा किया, अगर साल भर बाद भी तुम्हारा यह निश्चय अडिग रहा तो तुम्हारे विवाह में बाधा नहीं डाली जायेगी। उसे तीन महीने तक पुरी से कोई सम्बन्ध नहीं रखना होगा। कनक के आग्रह करने पर उसने समय घटा कर दो महीने का कर दिया। कनक मान गई।

जून के पहले सप्ताह में लीग ने बटवारा पूरी तरह स्वीकार कर लिया। पंजाब और बंगाल को आबादी के हिसाब से बाँटा जायेगा। इसने संघर्ष और अधिक बढ़ा दिया। हिन्दू-मुसलमान दोनों कुछ जिलों और लाहौर पर अपना-अपना दावा करने लगे। पढ़े-लिखे, सम्भ्रान्त हिन्दू-मुसलमानों में भी इस सम्बन्ध में विवाद होने लगे। आधी मई से नगर में कत्ल, आग और आतंक बढ़ गया था। कनक माडल-टाउन में ही कान्ता के पास रह रही थी। एक

रात को उन लोगों ने शहर में भयंकर आग लगी देखी। नैयर ने फोन कर पता लगाया कि आग शहालमी दरवाजे में लगी है, जो पुरी के घर के पास है। यह सुन कर कनक व्याकुल हो उठी। नैयर और उसके पड़ोसी मिर्जा में हिन्दू-मुसलमानों को लेकर बहस होने लगी। दोनों बटवारे के विरोधी थे, हिन्दू मुसलमानों को एक समझते थे। परन्तु दोनों के विचारों में विरोध था। सुरक्षा के ख्याल से उस दिन दोनों एक ही मोटर में कचहरी गए। व्याकुल कनक ने अपनी सहेली सरला शर्मा को फोन कर पता चलाया कि आग भोला पांधे की गली के पास ही लगी है। वह और अधिक चिन्तित हो उठी–पुरी के लिए। कचहरी से लौट कर नैयर ने बताया कि एक हिन्दू लड़के ने एक मुसलमान मजिस्ट्रेट के पक्षपात करने पर उस पर गोली चला दी थी। इससे चिढ़ कर वह हिन्दुओं पर अत्याचार कर रहा है। मुसलमान अफसर हिन्दुओं से बदला ले रहे हैं।

शहालमी की आग तीन दिन तक जलती रही। छः दिन से नगर में शान्ति थी। कनक अपने घर ग्वालमंडी आ गई थी। नगर की स्थिति देख पंडित जी अपना प्रेस दिल्ली, लखनऊ या इलाहाबाद उठा ले जाने की बात करने लगे। कनक ने एक अखबार में पढ़ा कि कुछ हिन्दू नौजवानों के साथ पुरी भी गिरफ्तार हो गया है और हवालात में है। वह धक्क से रह गई। अन्त में वह अपनी एक सहेली के यहाँ जाने का बहाना बना नौकर विधिचन्द के साथ कोतवाली पहुँची और पुरी से मिली। पुरी ने उससे कहा कि वह नैयर से कह कर उन सबको जमानत पर छुड़वाने का प्रयत्न करे। विधिचन्द ने पंडित जी को सारी बातें बता दीं। पंडित जी के कहने पर नैयर ने उन सब लोगों को बगैर जमानत के ही छुड़वा दिया। अदालत से भी पुरी बरी हो गया। घर पर उसका सबने स्वागत किया। इस घटना से कनक के प्रति उसका मन साफ हो गया। वह प्रसन्न मन में काम में लग गया। शाम को वह कनक के यहाँ गया। नैयर भी वहीं था। पुरी ने उसके प्रति आभार प्रकट किया। पुरी से बात करते समय नैयर को तारा और सोमराज के विवाह की बात पता चली। वहाँ से लौटकर उसने कनक और कान्ता को पुरी से अपनी भेंट की बात बताई। यह भी बताया कि तारा यह विवाह करना नहीं चाहती थी

परन्तु पुरी ने उसे दबाया था। कनक इस बात पर विश्वास न कर सकी, परन्तु दुखी हो उठी।

१२

नैयर के अपमान भरे व्यवहार से पुरी बहुत दुखी था। उसे अपनी आर्थिक दीनता पर लज्जा और क्षोभ भी था। उसने सोचा कि अपना और कनक का भविष्य बिगाड़ने से क्या लाभ? रेडक्लिफ कमेटी ने बटवारे की सीमाएँ निश्चित कर दी थीं परन्तु अभी लाहौर के सम्बन्ध में कोई निश्चय नहीं हुआ था। पश्चिमी पंजाब के भीतरी जिलों के हिन्दू भाग-भाग कर लाहौर आ रहे थे। जगह-जगह उनके कैम्प लगे हुए थे। दूसरे दिन पुरी इतिहास की पुस्तक लेकर गौस मुहम्मद के यहाँ जाने निकला। रास्ते में उसे मसऊद मिल गया। उसने बताया कि गौस मुहम्मद मारा गया। सुनकर पुरी की आखों के आगे अँधेरा छा गया। उसकी तीन महीने की मेहनत मिट्टी में मिल गई। उसने एक अन्य हिन्दू प्रकाशक से उस पुस्तक के सम्बन्ध में बात की तो उसने बताया कि अब केवल मुसलमान प्रकाशकों की पुस्तकें ही कोर्स में लगती हैं। पुरी को कहीं भी सफलता नहीं मिली।

लाहौर के पाकिस्तान में चले जाने की आशंका थी परन्तु वहाँ के हिन्दुओं ने लाहौर न छोड़ वहीं जमे रहने का निश्चय कर लिया। जुलाई के मध्य में सरकार ने घोषणा की कि सरकारी कर्मचारी यह निर्णय कर लें कि उन्हें पाकिस्तान में रहना है या हिन्दुस्तान में। इस घोषणा ने खलबली मचा दी। भोला पाँधे की गली के कई लोग बाहर जाने की योजना बना रहे थे, परन्तु तारा की शादी के नौ दिन रह गये थे, सारा सामान इकट्ठा किया जा चुका था। निश्चय हुआ कि विवाह बिना धूमधाम के निश्चित तिथि को ही होगा। कनक नैयर परिवार के साथ नैनीताल जा चुकी थी। वहाँ से उसने पुरी को दो सौ रुपये के साथ एक पत्र भेजा। उसने पुरी को नैनीताल बुलाया था। पुरी ने उत्तर दिया कि वह तारा के विवाह के बाद पहली-दूसरी तारीख तक आयेगा।

लाहौर में हिन्दू और मुसलमान शरणार्थियों के झुंड-के-झुंड चले आ रहे थे। रतन, बीरसिंह, मेवाराम आदि कैम्पों में जा कर हिन्दुओं की सहा-

यता कर रहे थे। एक दिन बीरसिंह लौट कर नहीं आया तो सारी गली में शोक छा गया। वह मारा गया था। उसके दुखी माँ-बाप लाहौर छोड़ कर चले गये। मास्टर जी के यहाँ तारा के विवाह की तैयारी चल रही थीं। एक दिन डाक्टर प्राणनाथ मास्टर जी से मिलने आए। वह इधर-उधर की बातें कर तारा के लिए नगीने जड़े बुन्दों की जोड़ी देकर चले गए। निश्चित दिन तारा का सोमराज के साथ विवाह हो गया। तारा विदा होकर अपनी ससुराल चली गई।

३० जुलाई को अखबारों में कांग्रेस और लीग की यह घोषणाएँ प्रकाशित हुईं कि हिन्दुस्तान में मुसलमानों को और पाकिस्तान में हिन्दुओं और सिखों को पूरी आजादी मिलेगी। दोनों वर्गों के लोगों ने समझा कि चलो, चिन्ता मिटी। लाहौर के हिन्दू आश्वस्त हो गए। मास्टर जी के कहने पर पुरी तारा को ससुराल से लिवा लाने के लिए चलने वाला ही था कि बाबू रामज्वाया, शीलो आदि ने घबड़ाए हुए आकर सूचना दी कि तारा की ससुराल पर मुसलमानों ने हमला कर दिया था और तारा और सोमराज की बुआ गायब है। मकान जल गया था। सुन कर गली में रोना-पीटना मच गया।

१३

पुरी के हवालात से छूटने के कुछ समय बाद लाहौर हाईकोर्ट बन्द हो गया था। नैयर नैनीताल जा रहा था। पंडितजी ने कनक और कंचन को भी उसके साथ भेज दिया। नैनीताल पंजाबियों से भरा हुआ था। नैयर पहले भी वहाँ आ चुका था, इसलिए वहाँ से परिचित था। वह शाम को ब्रिज-खेलने क्लब चला जाता था। वहाँ नैयर का उत्तर प्रदेश के पार्लियामेन्टरी सेक्रेटरी श्री कृष्णनारायण अवस्थी से परिचय हुआ। नैयर ने कनक से भी उनका परिचय करा दिया। एक दिन कनक को रास्ते में घूमते अवस्थी जी मिल गए। उन्होंने उसे नैयर के साथ घर आने का निमंत्रण दिया। नैयर कान्ता आदि के साथ उनके घर गया। चाय-पान के बाद अवस्थी जी अपनी पर्दानशीन बीबी से मिलाने कान्ता और कनक को घर के भीतर ले गये। उन्होंने उन दोनों से सामाजिक कार्यों में सहयोग देने का आग्रह भी किया। लौटते समय रास्ते में कनक ने नैयर से कहा कि दो महीने की अवधि समाप्त

हो रही है और मैं पुरी को पत्र लिखना चाहती हूँ। नैयर ने उसे टाल दिया। एक दिन कनक अवस्थी जी के यहाँ अकेली गई। अवस्थी जी से उसने, नौकरी के सम्बन्ध में कहा तो उन्होंने उत्तर दिया कि वह लखनऊ आ जाय, वह प्रबन्ध कर देगें। कनक प्रसन्न हो लौट आई। तीसरे दिन वह मिसेज पन्त से मिलने उनके बँगले पर गई। वहाँ अवस्थी जी भी थे। उन्होंने उसकी प्रशंसा करते हुए मिसेज पन्त से उसका परिचय करा दिया। वहाँ से कनक उत्साह में भरी लौटी। उसने बैंक की नौकरी करने का निश्चय कर लिया था।

लाहौर से पंडित जी का पत्र आया कि यहाँ हालत बहुत खराब है। उन्होंने अपना रुपया बैंक की दिल्ली ब्रांच में भिजवा दिया है और नैयर को भी ऐसा ही करना चाहिए। अब लाहौर में रहना सम्भव नहीं है। नैयर ने लाहौर जाने का इरादा किया। कनक ने पुरी को नैनीताल आने के लिए पत्र लिखा। कुछ दिन बाद उसे पुरी का पत्र मिल गया। क्लब में हिन्दुस्तान पाकिस्तान की स्थिति और राजनीति को लेकर काफी विवाद होता रहा। कुछ लोगों ने मुसलमानों की नियत में सन्देह व्यक्त किया, लीग की उपर्युक्त घोषणा के बावजूद भी। परन्तु नैयर को उस घोषणा पर पूरा-पूरा विश्वास था कि उसे लाहौर नहीं छोड़ना पड़ेगा। पुरी नैनीताल आकर, कनक की पूर्व-व्यवस्थानुसार एक शानदार होटल में ठहर गया। यह एक यूरोपिय होटल था। छोटे होटल सब भरे थे। पुरी इस होटल की शान और आराम को देख भौंचक-सा रह गया परन्तु उसे खूब आनन्द आया। दोनों मिलकर बड़े प्रसन्न थे। कनक ने पुरी को अवस्थी जी द्वारा दिए गए आश्वासन के सम्बन्ध में बताया। पुरी ने उसे तारा के विवाह और बाद की घटनाओं के सम्बन्ध में भी बताया। वह दोनों नैनीताल में चुपचाप परस्पर मिलते रहे परन्तु एक दिन नैयर ने उन्हें देख ही लिया। नैयर ने पुरी का स्वागत कर हालचाल पूछे। कनक के घरवाले इस घटना से मन ही मन नाराज और खिन्न हुए। कनक के कहने पर पुरी अवस्थी जी से मिलने लखनऊ चला गया।

पुरी लखनऊ चला गया था। कनक दुविधा में थी। उसने अपने निश्चय के सम्बन्ध में पिताजी को लाहौर पत्र लिखा। उन्होंने उत्तर दिया कि कनक अभी प्रतीक्षा करे। १५ अगस्त के बाद स्थिति पर गौर कर १८ अगस्त तक

नैनीताल आयेंगे और तभी उससे बातें करेंगे। नैयर ने समाचार पढ़ कर बताया कि पश्चिमी पंजाब में हिन्दुओं का कत्लेआम हो रहा है। लाहौर में आग लग रही है और हिन्दू लाहौर छोड़-छोड़ कर भाग रहे हैं। यह सुन कर सब स्तब्ध रह गए।

१४

ससुराल पहुँचने पर घर की औरतों ने तारा का स्वागत किया। मुँह दिखाई की रस्में अदा की गईं। रात को तारा को ऊपर एक कमरे में पहुँचा दिया गया। सोमराज के आने पर तारा ने रोमांच का अनुभव करते घूँघट निकाल लिया। सोमराज ने पिछली बातों का उल्लाहना देते हुए कि वह उससे शादी नहीं करना चाहती थी, उसे खूब मारा-पीटा। तारा ने आत्महत्या करने का निश्चय कर लिया। रात में मुसलमानों ने आक्रमण कर दिया। सोमराज कमरे से बाहर निकल गया परन्तु तारा बगल के एक मकान की छत पर कूद गई। वह घर मुसलमानों का था। वे लोग भले आदमी थे, इसलिए उन्होंने तारा के आग्रह करने पर उसे नीचे गली में उतर जाने दिया। वह गली कुछ दूर ही गई थी कि एक मुसलमान गुंडा उसका मुँह बन्द कर उसे अपने घर उठा ले गया। उसने तारा पर बहुत अत्याचार किया परन्तु तारा ने आत्म-समर्पण नहीं किया। उसे कोठरी में बन्द कर दिया गया। सुबह होने पर तारा को लेकर उस गुन्डे नब्बू और उसकी बीवी में खूब झगड़ा और मार-पीट हुई। नब्बू के बाहर चले जाने पर उस औरत ने मुहल्ले वालों को बुला कर सारी स्थिति उन्हें बता दी। तय हुआ कि तारा को मुहल्ले के एक प्रभावशाली बुजुर्ग हाफिज इनायत अली को सौंप दिया जाय। उनका मुसलमानों में बहुत आदर था। वह तारा को जहाँ वह चाहे वहाँ पहुँचा देने का आश्वासन देकर अपने घर लिवा ले गए। उनके घर की औरतों ने तारा को हाथों-हाथ लिया। तारा बहुत कृतज्ञ हुई।

तारा की तबियत सम्हलने पर हाफिज जी उसे कुरान सुनाने और मुसलमान बन जाने के लिए समझाने लगे। तारा घर के कामों में हाथ बटाने लगी। एक दिन उसने हाफिज जी से कहलवाया कि वह उसे उसके पिता के घर पहुँचवा दें। उन्होंने बताया कि उसकी गली के सब हिन्दू लाहौर छोड़कर चले

गए हैं। एक दिन उनका छोटा पुत्र अमजद अमृतसर से बचकर आ पहुँचा। दूसरे दिन से ही उसे लाहौर-पुलिस में ड्यूटी पर लगा दिया गया। हाफिज जी ने तारा को मुसलमान बन जाने के लिए फिर समझाया मगर उसने इन्कार कर दिया। इस पर सब लोग तारा से नाराज हो गए। तारा ने अमजद से कहा कि वह उसे हिन्दुओं के कैम्प में पहुँचा दे, परन्तु अमजद ने इन्कार कर दिया। ईद के दूसरे दिन अमजद ने तारा से कहा कि कल तुम्हें पुलिस के साथ कैम्प में पहुँचा दिया जायेगा।

१५

१४ अगस्त को सब लोग घर और दुकानें सजाने लगे। नैनीताल में सब जगह राष्ट्रीय झंडे फहरा दिए गए। पंजाब के कत्ल के समाचार सुन पंजाबियों के चेहरे मुरझाए हुए थे। बोट-क्लब में भोज की तैयारियाँ हो रही थीं। कनक पुरी के लखनऊ से लौटने की प्रतीक्षा कर रही थी। पुरी ने उसी दिन लौट कर समाचार सुनाए कि लखनऊ में वह मिसेज पन्त, अवस्थी जी आदि सबसे मिला परन्तु सफलता नहीं मिली। पंजाबियों के प्रति वहाँ अच्छी भावना नहीं थी। सुनकर कनक व्याकुल हो उठी कि अब क्या होगा। पुरी लाहौर लौट जाने के लिए छटपटा रहा था परन्तु उसने उसे अठारह तारीख तक रुक जाने के लिए कहा। घर लौटने पर कनक को मालूम हुआ कि लाहौर स्थिति नैयर की सारी जायदाद पर मुसलमानों ने कब्जा कर लिया था। घर के सब लोग दुःखी थे और कान्ता आदि रो रही थीं। शाम को सब मन मार कर क्लब के भोज में गए। वहीं उन्होंने रेडियो पर दिल्ली में होने वाले स्वतंत्रता-उत्सव के समाचार और डाक्टर राजेन्द्र प्रसाद का भाषण सुना। फिर नेहरू का भाषण हुआ। नेताओं ने आजादी पर हर्ष प्रकट करते हुए स्वतन्त्रता संग्राम में भाग लेने वालों के प्रति अपनी श्रद्धा प्रकट की। रात के ठीक बारह बजे देश स्वन्तत्र हो गया। झील के किनारे जनता उत्सव मना रही थी।

पुरी ने इस शर्त पर अठारह तक ठहरने का वायदा किया कि उन्नीस को कनक उसके साथ लखनऊ चलेगी। परन्तु पंडित जी अठारह को नहीं आए। अखबारों से समाचार मिला कि लाहौर के सारे हिन्दू हिन्दुस्तान चले आए थे। पंजाब में हिन्दुओं पर भयंकर अत्याचार हो रहे थे। पढ़ कर पुरी धक्क्

से रह गया । पुरी तुरन्त अपना सामान समेट, कनक से मिल नैनीताल से रवाना हो गया । परिस्थिति ऐसी ही थी । कनक विरोध न कर सकी ।

१६

गाड़ी में बड़ी भीड़ थी । मुसलमान पश्चिम की ओर भाग रहे थे । रुकती-रुकाती गाड़ी अम्बाला पहुँची और वहाँ से बड़ी धीमी चाल से आगे बढ़ी। आगे गाड़ी सरहिन्द स्टेशन से कुछ आगे बढ़ी ही थी कि हिन्दुओं ने उस पर आक्रमण कर दिया । उन्होंने मुसलमानों को मारा और सामान लूट लिया। सैनिकों के आने पर लुटेरे भाग गए । लुधियाना पहुँचने पर हुक्म मिला कि आगे गाड़ी पर हमला होने का खतरा है , इसलिए गाड़ी आगे नहीं जायेगी। सब लोग नीचे उतर आये । पुरी वहीं उतर गया । उसने वहाँ के हिन्दू-कैम्पों में अपने घर वालों को ढूँढ़ने का निश्चय किया परन्तु सफलता नहीं मिली। तीसरे दिन वह वहाँ से फिरोजपुर रवाना हो गया । वहाँ और भी ज्यादा भीड़ थी । अपना विस्तर उठा मुसाफिर खाने में पहुँचा । वहाँ उसने कैम्पों में घूम-फिर कर अपने घरवालों को ढूँढ़ा । वहाँ उसे अपनी गली का कालीचरन मिला परन्तु उससे भी घरवालों का कोई पता न मालूम हो सका । एक कैम्प में उसे बाधवामल नारंग का परिवार मिल गया । नारंग जी ने उसे लाहौर के सारे समाचार सुनाए । दूसरे दिन बाजार जाते समय गुन्डों ने उसे लूट लिया । दुखी पुरी ने वहाँ नंगी मुसलमान लड़कियों को नीलाम होते देखा ।

१७

तारा को सूचना दी गई कि उसे कैम्प ले जाने के लिए सिपाही आया है । वह प्रसन्न मन से नीचे खड़ी जीप में आकर बैठ गई । गाड़ी रावी के पुल को पार कर जाने लगी तो तारा ने विरोध किया परन्तु उसे जबरदस्ती चुप कर दिया गया । मार पड़ने से वह बेहोश हो गई । होश आने पर उसने अपने को एक घर के आँगन में पड़ा पाया । वहाँ आधे कपड़े पहने और भी कई हिन्दू स्त्रियाँ थीं । बन्ती, सतवन्त आदि ने रो-रोकर उसे अपनी दुःख-भरी कहानी सुनायी । सुनकर तारा दहल गई । उन्होंने यह भी बताया कि उन्हें यहाँ एक गुन्डे ने बेचने के लिये कैद कर रखा है । एक बुढ़िया आकर उन्हें रोटी दे जाती थी परन्तु कभी कई-कई दिनों तक नहीं आती थी । तारा

को उसने फुसलाने की कोशिश की परन्तु तारा ने उसे झिड़क दिया। एक दिन उस अड्डे का मालिक गफ़ूरा वहाँ दो-तीन लड़कियों को और ले आया। एक दिन वह फिर आया और दुर्गा नामक स्त्री को जबरदस्ती पकड़ कर ले गया। उसे बेच दिया गया था। परन्तु एक दिन उन अभागी स्त्रियों का उद्धार करने वाले आ गए। हिन्दुस्तानी पुलिस के साथ एक हिन्दू सम्भ्रान्त स्त्री उन्हें छुड़ाने और भारत ले जाने के लिए आई थी। असद और जुबेद ने पुलिस को इस अड्डे की सूचना दी थी। वह दोनों भी पुलिस के साथ आए थे। हिन्दू स्त्री कौशिल्या देवी थी, जो भारत-सरकार की प्रतिनिधि बन कर वहाँ आई थीं। असद और जुबेद तारा को वहाँ देख आश्चर्यचकित रह गए। असद के पूछने पर तारा ने उसे सारी घटना सुना दी। असद ने तारा को बताया कि सब लोग तारा को मर गई समझते हैं।

उनकी गाड़ी को साथ लिए सैनिक दल पुल पार कर लाहौर की सीमा में आ गया था। तारा को उन सड़कों को देख पुराने दिनों की याद हो आई, जब वह अपनी सहेलियों के साथ वहाँ से गुजरा करती थी। कैम्प के सामने पहुँचकर असद ने कहा कि तुम हिन्दू के रूप में लाहौर में तो रह नहीं सकती। अब अपने भविष्य का निश्चय तुम्हें स्वयं और अभी करना होगा। मैं शाम को पाँच बजे फिर आऊँगा। उसके जाने के बाद कौशल्या देवी ने सब स्त्रियों से उनके घर के पते पूछे। तारा ने कह दिया कि मेरा कोई नहीं है। कुछ देर बाद सबको गाड़ी में बैठ वहाँ से चलने के लिए कहा गया। तारा ने उसे वहीं छोड़ देने की प्रार्थना की, परन्तु सुनी नहीं गई। अन्त में सशस्त्र सैनिकों के पहरे में पाकिस्तान से बचाई गई हिन्दू स्त्रियों से भरी दस बसें हिन्दुस्तान की सीमा की ओर रवाना हो गईं। रास्ते के दोनों ओर सामान और सड़ती लाशें बिखरी पड़ी थी जिनसे उठती बदबू और मक्खियाँ सब का दम घोटे दे रही थीं। तारा सोच रही थी कि वह अपने घरवालों को कहाँ ढूँढ़ेगी और उनसे क्या कहेगी। रास्ते में उन्हें भारत से आता मुस्लिम शरणार्थियों का एक विशाल काफिला मिला। उन सबकी बड़ी बुरी हालत थी। घन्टों में वह काफिला गुजरा, तब कहीं इन लोगों की बसें आगे बढ़ीं। ड्राइवर ने कहा कि देश के बटवारे से हिन्दू-मुसलमानों को यह मिला कि दोनों अपने-अपने घरों

से मार-मार कर निकाले गए। अन्त में सारी गाड़ियाँ भारत-पाकिस्तान के सीमा-स्थल 'वागा' पर पहुँच गईं। इसके बाद भारत की सीमा में प्रवेश करने के बाद सारी स्त्रियों ने चैन और सुरक्षा की साँस ली। वहाँ से गुजरते मुसलमानों के काफिले को देख एक ड्राइवर बोला—"रब्ब ने जिन्हें एक बनाया था, रब्ब के बन्दों ने अपने वहम और जुल्म से उसे दो कर दिया"।

भाग दो : देश का भविष्य

१

पंजाब से आए हिन्दू शरणार्थियों को खाने के लिए मुफ्त राशन बाँट रहा था—फी आदमी डेढ़ पाव आटा और छटाँक भर दाल के हिसाब से। जयदेव पुरी भी लाइन में खड़ा था। जो वहाँ थे, वे साथ न आए अपने परिवार वालों के लिए भी राशन माँग रहे थे, परन्तु मिल नहीं रहा था। पुरी ने अपना राशन लिया और मंडी बाजार में निकल आया। ढाबे में राशन और एक आना देने पर पकी दाल-रोटी मिल जाती थी। पुरी के पास एक आना भी नहीं था। उसे दो रोटी और दाल मिल गई। ढाबे वालों ने उससे चार आने और भोजन प्रतिदिन पर उनके यहाँ नौकरी कर लेने के लिए कहा। पुरी ने और कोई चारा न देख मंजूर कर दिया। शाम को उसे भोजन की एक थाली सूद जी के यहाँ पहुँचाने जाना पड़ा। जब वह थाली लेकर वहाँ पहुँचा तो सूद जी को देख चौंक पड़ा। वह उसके पुराने परिचित निकले। जालन्धर के नामी कांग्रेसी नेता थे। सूद जी के पूछने पर उसने अपनी पूरी कहानी सुना दी। सूद जी ने उसे, जब तक कहीं और जगह काम न मिले, अपने साथ ही रहने के लिए कहा। रात को सोते समय सूद जी ने उसे पंजाब की नई राजनीति को समझाते हुए बताया कि डाक्टर का गुट यहाँ सब पर हावी होना चाह रहा है।

सूद जी के साथ पुरी की पहली भेंट लाहौर में डाक्टर राधेबिहारी के यहाँ हुई थी। वह मुल्तान जेल में भी उनके साथ रहा था। सूद जी राजनीति में 'गद्दी' की अपेक्षा काम की माँग करने वाले दल के उग्र प्रतिनिधि थे। उन्हें समाजवादी कांग्रेसिओं का भी समर्थन प्राप्त था। डा० उन्हें

पंजाब से हटा दिल्ली भेजना चाहता था। परन्तु सूद जी पंजाब की राजनीति में ही रहना चाहते थे। यह सब सुन कर पुरी उनके साथ आत्मीयता अनुभव करने लगा। अन्त में बातें करते-करते दोनों सो गए। सूद जी वकील थे। जनता उनकी भक्त थी परन्तु उनका परिवार उनसे विरक्त था। सन् १९४६ में सूद जी पंजाब असेम्बली के मेम्बर चुन लिए गए थे। प्रभाव और आमदनी बढ़ जाने पर भी सूद जी का रहन-सहन बड़ा सादा था। सरकार में उनका असर था।

सुबह उठने पर स्नान, नाश्ते आदि से फारिग हो सूद जी ने पुरी से पूछा कि अब उसका क्या इरादा है ? पुरी ने कहा कि वह अपने परिवार वालों का पता लगाना चाहता है। सूद जी ने उनके नाम लिखकर कोतवाली के माध्यम से उनका पता लगवा देने का वायदा किया, परन्तु पता न लग सका। पुरी ने अमृतसर जाकर भी ढूँढ़ा मगर असफल हो लौट आया। सूद जी ने उससे कहा कि पहले वह स्वयं कहीं जम जाय, फिर खोजने में आसानी रहेगी। उन्होंने उसे एक प्रेस का काम सम्हाल लेने के लिए कहा। पुरी तैयार हो गया। "कमाल प्रेस" जालन्धर की एक गली में स्थित था। सूद जी ने उसे उस प्रेस का काम सौंप दिया। इस प्रेस का मालिक ईसाक मुहम्मद राष्ट्रीय विचारों का मुसलमान था इसलिए पाकिस्तान नहीं गया था। परन्तु उसके मुहल्ले पर निरन्तर हिन्दुओं के हमले होते रहे। यह स्थिति देख सरकार ने वहाँ के सारे मुसलमानों को वहाँ से हटा एक कैम्प में पहुंचा दिया। बेचारा ईसाक सूद जी को प्रेस की चाबी सौंप पाकिस्तान चला गया। अन्त में पुरी ने रिखीराम नामक पाकिस्तान से आए एक प्रेस वाले की सहायता से प्रेस का काम प्रारम्भ कर दिया।

पुरी चुपचाप रिखीराम का काम देखता और समझता रहता था। काम खूब आ रहा था सूद जी ने पुरी का वेतन सवा सौ रुपया मासिक बाँध दिया। प्रेस का नाम भी बदल कर 'कमल प्रेस' कर दिया गया। अब पुरी कनक को पत्र लिखने और उसे अपने पास बुलाने के लिए व्याकुल हो उठा। उसने नैनीताल के पते पर कनक को प लिखा। एक दिन उसे बाजार में उर्मिला का भाई जगदीश मिला जिसके परिवार को कैम्प छोड़ देने की आज्ञा मिल गई थी।

पुरी उन सब को प्रेस के ऊपरी हिस्से में ले आया। उर्मिला की दशा बहुत खराब थी। वह विधवा हो गई थी। तीन दिन बाद नारंग जी और जगदीश अपने परिवार को वहीं छोड़ काम और जगह की तलाश में दिल्ली चले गये। उर्मिला की माँ उसका दूसरा विवाह करना चाह रही थी। पुरी भी इससे सहमत था। उर्मिला पुरी से खिंची सी रहती थी। बारहवें दिन पुरी का पत्र लौट आया, इस सूचना के साथ कि कनक शहर छोड़ गई है। पुरी बहुत चिन्तित और दुखी हो उठा। कनक को खोकर अब उसने उर्मिला की ओर ध्यान देना आरम्भ कर दिया। धीरे-धीरे उर्मिला की उदासीनता दूर होने लगी। पुरी को अपने परिवार का भी पता चल गया। वह बस्ती जिले के सोनवा नामक स्थान पर स्थित डाक्टर प्राणनाथ के पिता की चीनी मिल में रह रहे थे। मास्टर जी वहाँ मुन्शी का काम करने लगे थे। उन्होंने पुरी को फौरन मिलने के लिए बुलाया। परन्तु वह व्यस्तता के कारण न जा सका। पुरी और उर्मिला परस्पर घुलते-मिलते जा रहे थे। यह देख माँ ने एक दिन उर्मिला को बहुत फटकारा। अन्त में एक दिन माँ उर्मिला को वहीं छोड़ सामान ले चुपचाप दिल्ली चली गई। पुरी उस समय घर से बाहर गया हुआ था। उर्मिला उसके सीने पर सिर रख फफक उठी।

२

पुरी के नैनीताल से चलते समय, उसकी मजबूरी और परिस्थितियों को देख कनक मन मार कर रह गई थी। परन्तु उसके लिए सदैव छटपटाती रहती। सोलह सितम्बर को नैयर को पंडित जी का एक तार मिला जिसमें उसे परिवार सहित दिल्ली आने के लिए लिखा था। पंडित जी १३ अगस्त को परिवार सहित दिल्ली आ गये थे। वहाँ उन्हें सिर छिपाने को एक मकान मिल गया था। इसके बाद उन्होंने फैज बाजार में सैयद अब्दुल समद के मकान को दो हजार रुपए देकर इस शर्त पर खरीद लिया कि वह लाहौर जाकर उनके मकान पर कब्जा कर ले। वह उस मकान में आ गए। इसके बाद उन्होंने नैयर को आ जाने के लिए तार दे दिया। परिवार के आ जाने पर पंडित जी बहुत प्रसन्न हुए। दिल्ली आकर कनक बहुत चिन्तित हो उठी। उसे पुरी का कोई समाचार नहीं मिल रहा था। एक दिन उसने पिता से कहा कि वह किसी

अखबार में काम करना चाहती है। पिता की सहमति पाकर उसने नैयर के साथ अखबारों के दफ्तरों के चक्कर काटने आरम्भ कर दिये अन्त । में 'सरदार' के स्वामी सत्यप्रकाश 'असीर' ने उसकी सहायता करने का आश्वासन दिया। कनक को वह भरोसे का आदमी लगा। कनक पिता के साथ गांधी जी की सान्ध्य-प्रार्थना में भी गई। वहाँ हिन्दू शरणार्थी गांधी जी की कटु आलोचना कर रहे थे। कनक क्षुब्ध हो उठी।

कनक 'सरदार' में काम करने लगी। परन्तु असीर गांधी-नीति का विरोधी और कनक उसकी समर्थक थी। इसलिये असीर उसके लेखों में परिवर्तन कर दिया करता था। कनक ने देखा कि बड़े-बड़े हिन्दू भी गाँधी जी के कट्टर आलोचक थे। वह उन्हें पाकिस्तान का समर्थक मानते थे खिन्न होकर कनक ने लखनऊ जाने की बात उठाई। पंडित जी ने टाल दिया। एक दिन असीर ने कनक के साथ अभद्र व्यवहार किया। कनक वहाँ से उठ कर चली आई। सैयद ने पाकिस्तान से लौटकर अपने मकान का झगड़ा खड़ा कर दिया था। नैयर के आने पर कनक ने असीर के सम्बन्ध में उसे बताया और यह आग्रह किया कि वह पिताजी को समझा कर उसे लखनऊ चले जाने देने के लिए राजी कर ले।

३

पश्चिम पंजाब के हिन्दू वहाँ से निकाले जाने पर पूर्वी पंजाब चले आ रहे थे। उनका एक काफिला अमृतसर के शरणार्थी कैम्प के सामने पहुँचा। यह तारा वाला काफिला था। सबसे छोलदारी में जाकर अपना नाम और पता लिखवाने के लिए कहा गया। तारा ने किसी का भी नाम नहीं बताया। बन्ती भी उसके साथ थी। अन्त में तारा और बन्ती पूर्व की ओर जाने वाली गाड़ी में बैठ आगे चल पड़ीं। गाड़ी दो दिन में अमृतसर से अम्बाला पहुँच पाई। वहाँ स्टेशन पर बन्ती को अपने मुहल्ले का एक छोटा सा लड़का मिल गया। वह उसे अपने बाप के पास ले गया। उससे बन्ती को पता चला कि उसके ससुराल वाले दिल्ली में हैं। दूसरे दिन तारा और बन्ती दिल्ली पहुँच गईं। वहां उन्हें 'कश्मीरी गेट' के शरणार्थी कैम्प में आश्रय मिल गया। दूसरे दिन दोनों थोड़ा सा खाना खाकर पहाड़गंज में बन्ती के ससुराल वालों को

ढूँढ़ने निकल पड़ीं। वह दिन भर गलियों में पूछती फिरीं परन्तु कोई पता न चला। इसी तरह शाम हो गई। दोनों थक कर एक चबूतरे पर बैठ गईं। एकाएक बन्ती को वहाँ अपना लड़का दिखाई दे गया। उसने झपट कर उसे छाती से लगा लिया। माँ-बेटा-दोनों ऊँचे स्वर में रोने लगे। रोना सुनकर गली वाले और बन्ती की सास बाहर निकल आये। परन्तु बन्ती की सास ने लड़के को बन्ती से छीन लिया और उसे भाग जाने के लिए कहा। बन्ती अवाक् रह गई। बन्ती की सास का कहना था कि मुसलमानों द्वारा खराब की गई औरत को वह अपने घर में नहीं रख सकती। बन्ती के पति ने भी उसे स्वीकार करने से इन्कार कर दिया। हताश बन्ती ने घर की दहलीज पर पटक-पटक कर अपना माथा फोड़ लिया। बन्ती मर गई। उसके घर वाले उसकी अर्थी बना श्मशान उठा ले गए। तारा कैम्प लौट आई।

तारा के रात को कैम्प लौटने पर वहाँ की स्त्रियों ने हल्ला मचाया कि हम ऐसी आवारा लड़की को अपने साथ नहीं रख सकती। तारा अर्द्ध मूर्च्छित दशा में पड़ी सोच रही थी कि कैम्प का चपरासी उसे बुलाने आया। वह छोलदारी में पहुंची जहाँ विमल जी, डाक्टर श्यामा और दो-एक अन्य व्यक्ति बैठे थे। ये सब कांग्रेसी समाज-सेवी थे। उनके पूछने पर तारा ने अपनी सारी कहानी सुना दी। सुन कर उन्होंने तारा को वापस झोपड़ी में भेज दिया और स्त्रियों को फटकार दिया। दूसरे दिन तारा ने विमल जी से कुछ काम देने का आग्रह किया। उसे कैम्प की लिस्टें बनाने का काम दे दिया गया। तारा काम करने लगी। अब कैम्प की स्त्रियाँ उसका आदर करने लगी थीं। एक दिन विमल जी ने प्रसाद जी नामक एक खद्दरधारी सज्जन से तारा का परिचय करवा दिया। परन्तु तारा ने पाया कि प्रसाद जी का चरित्र अच्छा नहीं है। एक दिन कैम्प को प्राइमिनिस्टर कैम्प देखने आ रहे थे, इसलिए वहाँ बड़ी सफाई की जा रही थी। उसी समय डाक्टर श्यामा ने मिसेज अगरवाला से तारा का परिचय करवाते हुए उसकी सहायता करने की प्रार्थना की। प्रधान मंत्री के आने पर कुछ लोगों ने उनसे कहा कि उन्हें कैम्प से न निकाला जाय। फिर प्रधानमंत्री एक संक्षिप्त भाषण देकर वहाँ से चले गए। इसके बाद मिसेज अगरवाला अपने बच्चों को पढ़ाने के लिए तारा को अपने साथ लिवा ले गईं।

४

मिसेज अगरवाला की कोठी भव्य और दो मंजिली थी। तारा को कोठी के पिछले भाग में कमरा दिया गया। उन्होंने तारा से कहा कि यहाँ बड़े-बड़े लोग, सरकारी अफसर, लीडर आदि आते रहते हैं, इसलिए उसे सफाई और सलीके से रहना होगा। उन्होंने उसके लिए धुले, साफ कपड़ों का भी तुरन्त प्रबन्ध कर दिया। तारा ने कपड़े बदले, केश ठीक किए। फिर उसे ड्राइंग-रूप में बुलाया गया। वहाँ अगरवाला साहब और मिसेज अगरवाला दोनों बैठे थे। उन्होंने उससे कुछ प्रश्न पूछे और फिर कहा कि वह बच्चों को अंग्रेजी में बात करना सिखाए। दूसरे दिन से तारा ने मालकिन के निर्देशानुसार काम करना आरम्भ कर दिया। तारा के व्यवहार से सब लोग प्रसन्न हो उठे। कोठी में अगरवाला साहब की पहली पत्नी का लड़का नरोत्तम और लड़की डौली भी थे। तारा ने उन्हें भी प्रसन्न कर लिया। नरोत्तम की अपनी सौतेली माँ से बनती नहीं थी। धीरे-धीरे तारा और नरोत्तम आपस में बातें करने लगे। नवम्बर में दिल्ली में 'आल इंडिया कांग्रेस कमेटी' का अधिवेशन होने वाला था। अगरवाला साहब स्वागत-समिति के उपध्यक्ष थे, इसलिए उनकी कोठी में चहल-पहल बढ़ गई। उस व्यस्तता में तारा को भी सहयोग देना पड़ा।

१३ जनवरी, सन् १९४८। समाचर मिला कि गान्धी जी ने पाकिस्तान को पचपन करोड़ रुपए दिलवाने के लिए आमरण अनशन करने की प्रतिज्ञा की है। सारा देश सिहर कर स्तब्ध रह गया। गांधी जी ने कहा कि जब तक साम्प्रदायिक विद्वेष शान्त नहीं होगा, वह अनशन करते रहेंगे। अधिकांश हिन्दू गांधी जी से नाराज थे। अगरवाला साहब की कोठी में नवम्बर अधिवेशन के कारण बड़ी व्यस्तता छा रही थी। एक दिन अगरवाला साहब ने तारा के पास गरम कोट न देख कर कहा कि वह नरोत्तम के साथ जाकर नया कोट खरीद लाए। इधर तारा और नरोत्तम पर लोग उँगलियाँ उठाने लगे थे। कोठी में आने वाले सम्मान्य लोग भी गांधी जी की नीति का विरोध कर रहे थे। प्रसाद जी ने मिसेज अगरवाला से कहा कि उन्हें स्त्रियों का एक प्रतिनिधि मंडल ले जाकर गांधी जी को विश्वास दिलाना चाहिए कि हम नगर में शान्ति

स्थापित करने का उत्तरदायित्त्व लेरहे है । नेहरू और पटेल की भी यही राय है । प्रसाद जी ने शरणार्थियों के प्रतिनिधि के रूप में तारा से भी जाने का आग्रह किया ।

आदेशानुसार मिसेज अगरवाला तारा आदि को साथ ले बिड़ला-भवन पहुँच गईं । रास्ते में उन्हें गांधी-विरोधी लोगों के जुलूस मिले जिन्हें नेहरू ने फटकार कर भगा दिया । महिला प्रतिनिधि मंडल से गांधी जी ने कहा कि वे लोगों को सद्बुद्धि देने के लिए भगवान से प्रार्थना करें । १६ जनवरी को समाचार छपा कि सरकार ने पाकिस्तान को पचपन करोड़ रुपये देना स्वीकार कर लिया हैं । यह निर्णय मंत्रिमंडल के पहले निर्णय के विरुद्ध था । इसके उपरान्त दिल्ली में शान्ति के प्रयत्नों का तूफान सा छा गया । हिन्दू, सिख और मुसलमान नेताओं ने जनता से शान्ति रखने का आग्रह किया । नेहरू ने कई सार्वजनिक भाषण दिए । अन्त में सभी लोगों द्वारा शान्ति के लिए किए जा रहे प्रयत्नों और आश्वासनों के आधार पर गांधी जी ने १८ जनवरी को अपना अनशन समाप्त कर दिया । राष्ट्र ने चैन की साँस ली ।

उसी दिन कोठी में कुछ मेहमान आने वाले थे । उनके खाने और पीने का प्रोग्राम था । मिस्टर रावत, मिस्टर डे, सूर्या, डाक्टर श्यामा आदि के आ जाने पर मालिक के आग्रह करने से तारा को भी उनके साथ खाने के लिए बैठना पड़ा । बाद में उसने सबको शराब 'सर्व' करने का भार अपने ऊपर ले स्वयं को पीने से बचा लिया । रावत ने अपनी, नयी मित्र, इस सन्ध्या की अतिथि तारा के स्वागत में जाम पीने का आग्रह किया । तारा झेंप से लाल हो गयी । बाद में डाक्टर श्यामा ने रावत से तारा के भविष्य के सम्बन्ध में कुछ प्रबन्ध कर देने का आग्रह किया । रावत केन्द्रिय गृह-विभाग के सेक्रेटरी थे । कुछ समय तक वर्तमान राजनीति पर बातें होती रहीं । रावत ने कहा कि गांधी जी ने लार्ड माउन्टबेटन के दबाव में आकर पाकिस्तान को रुपए देने की जिद की थी । इससे भारत और सरकार—दोनों की साख गिर गई है । तारा ने कहा कि इससे पाकिस्तान में भारत की साख बढ़ी है । परन्तु रावत ने यह रहस्य बताया कि यह सब कुछ होते हुए भी पाकिस्तान गांधी जी को अपने यहाँ आने की इजाजत नहीं दे रहा है । फिर अनशन करने की सामर्थ्य पर बहस

होने लगी। डे ने बताया कि क्रान्तिकारी कितने लम्बे समय तक अनशन करते थे और उनके अनशन को तुड़वाने के लिए सरकार उन पर कैसे-कैसे भयानक अत्याचार करती थी। तारा ने रावत से कहा कि जनता हिंसा का सहारा न ले अनशन द्वारा सरकार का विरोध करने लगे तो यह सरकार के लिए सुविधाजनक ही रहेगा। रावत तारा की बुद्धि से प्रभावित हुए।

इसके उपरान्त सबके लिए डिनर का प्रबन्ध किया गया। तारा को भी सबके साथ बैठना पड़ा। विदा होते समय रावत ने तारा से हाथ मिलाया और उसे मिसेज अगरवाला के साथ अपने यहाँ आने का आमंत्रण दिया। तारा को इन बड़े लोगों का व्यवहार, आचरण और वातावरण अच्छा नहीं लगा। नरोत्तम ने भी उसे सलाह दी कि कोठी का वातावरण उसके अनुकूल नहीं है, वह रावत से कह कर कहीं और काम ढूँढ़ ले। इसी बीच गाँधी जी की प्रार्थना-सभा में एक शरणार्थी ने बम फेंक दिया। वातावरण क्षुब्ध होकर फिर शान्त हो गया। लोग शरणार्थियों की आलोचना करने लगे। एक दिन गांधी जी की हत्या हो जाने का समाचार सुन सारा संसार स्तब्ध रह गया। मिसेज अगरवाला अपने साहब के साथ बिड़ला-भवन चली गईं। गांधी जी की शव-यात्रा बड़े सम्मान और राष्ट्रीय शोक के साथ निकाली गई। यह देख एक खद्दरधारी नवयुवक ने क्षोभ व्यक्त किया कि इन काँग्रेसियों ने गांधी जी के सिद्धान्तों को उनके शव के साथ ही दफना लिया। सरकार ने गरीबों के गांधी को गरीबों से छीन लिया है। किसी ने कहा 'अरे भाई, वे तो अवतर थे।

५

अभावों से ग्रस्त मनुष्य साधन मिल जाने पर महत्त्वाकांक्षा के मार्ग पर बढ़ने लगता है। जयदेव पुरी ने विभाजन से पूर्व 'पैरोकार' की सहायक-सम्पादकी पाकर ऊँचे चढ़ना चाहा था, परन्तु फिसल कर गिर पड़ा था, विभाजन ने अपने बाढ़ के रेले में उसे अनाश्रित और अनाथ बना दिया। फिर सूद जी की सहायता से उसके पैर मजबूत जमीन पर जमने लगे। उसके पास थोड़ी सी पूँजी भी जमा होने लगी थी। वह उसके द्वारा सूद जी का समर्थक एक साप्ताहिक पत्र प्रारम्भ करना चाहता था। सूद जी ने उसे प्रोत्साहित किया। उसने पत्र निकालने का निश्चय कर लिया। साथ ही सूदजी

ने उससे कहा कि वह उर्मिला को अपने यहाँ से हटा दे। उसके राजनीतिक भविष्य के लिए यही अच्छा रहेगा। पुरी गहरी चिन्ता में डूब गया। पुरी अपने नए पत्र 'नाजिर' के सम्बन्ध में कचहरी गया तो वहाँ नैयर से उसकी भेंट हो गई। नैयर ने उसे पंडित जी का दिल्ली का पता बता दिया। पुरी बात बढ़ने पर उर्मिला से विवाह कर लेने के सम्बन्ध में सोचने लगा। अब वह कनक के सम्बन्ध में उदासीन सा हो उठा। इसलिए उसने दिल्ली कोई पत्र नहीं लिखा। उसने उर्मिला से भी अपना विवाह सम्बन्धी निश्चय बता दिया। अचानक एक दिन सुबह ही एक स्त्री पुरी के कमरे के किवाड़ खोल आ खड़ी हुई। पुरी ने उसे देखा, पहचाना और साँस रोके खड़ा रह गया।

६

सन् १९४७ नवम्बर का दूसरा सप्ताह। कनक लखनऊ के स्टेशन पर गाड़ी से उतरी। वह ताँगा लेकर मिसेज पन्त के यहाँ चल दी। मिसेज पन्त ने आत्मीयता से उसका स्वागत किया। फिर वह उसे अपने साथ असेम्बली-भवन ले गईं। असेम्बली का अधिवेशन चल रहा था। उसके बाद मिसेज पन्त कनक को अवस्थी जी के पास ले गईं। अवस्थी जी ने उससे इधर-उधर के समाचार तो पूछे परन्तु काम दिलाने की कोई बात नहीं की। कनक मिसेज पन्त के यहाँ रहती रही। उसे सूचना विभाग में इन्टरव्यू के लिए बुलाया गया। उसका लाहौर का परिचित प्रीतमसिंह गिल भी वहाँ इसी सिलसिले में आया था। गिल ने कनक के कारण इन्टरव्यू नहीं दिया। दोनों साथ-साथ बातें करते वहाँ से लौटे। गिल ने उसे अपनी सारी राम-कहानी सुनाई। कनक को नौकरी मिल गई। वह काम पर जाने लगी। एक दिन अवस्थी जी मिसेज पन्त की अनुपस्थिति में सन्ध्या समय कनक के पास आए। वह उसके साथ खिलवाड़ करना चाहते थे। कनक ने उन्हें फटकार दिया। उसी समय मिसेज पन्त आ गईं और उन्होंने कनक को ही फटकारते हुए अपने कमरे से निकल जाने के लिए कह दिया। कनक रोती हुई गिरजा भाभी के यहाँ पहुँची। उन्होंने उसका सारा प्रबन्ध करवा देने का आश्वासन दे उसे शान्त कर दिया। वह जानती थी कि अवस्थी बदमाश आदमी है। उन्होंने एक कायस्थ परिवार में पचहत्तर रुपए मासिक पर एक पेइंग गेस्ट के रूप में प्रबन्ध करवा दिया। कनक वहीं रहने लगी।

इसके उपरान्त कनक और गिल आपस में मिले। कनक ने उसे इस बीच घटी सारी बातें बताई। कनक ने गिल के लिए एक स्वेटर बुन देने का भी वायदा किया और बातों-ही-बातों में अपने और पुरी के सम्बन्धों की भी चर्चा कर दी। सुन कर गिल गम्भीर हो उठा और उसने कनक के प्रति अपना प्रेम-भाव प्रकट कर दिया। सुनकर कनक रोमांचित हो उठी। उसने सोचा कि वह गिल के प्रति आकर्षित हो उठी है। इसके बाद दोनों काम समाप्त करने के बाद साथ-साथ घूमने जाने लगे। बड़े दिन की छुट्टी में कनक अपने परिवार वालों से मिलने दिल्ली चली गई। वहाँ पंडित जी ने उसके सामने पुरी की बड़ी प्रशंसा की। कनक सोमवार को लखनऊ लौट आई। कनक अब भी पुरी के ख्याल में डूबी रहती, उसकी चर्चा करती। गिल को यह बात अच्छी नहीं लगती। फरवरी के दूसरे सप्ताह में उसे नैयर की चिट्ठी और 'नाजिर' के प्रकाशन का इश्तिहार मिला। उसमें पुरी का पता भी लिखा था। पुरी पत्र का प्रधान सम्पादक था।

कनक गिल को यह शुभ समाचार सुना, छुट्टी की अर्जी दे दूसरे ही दिन जालन्धर के लिए रवाना हो गई। वह पौ फटते जालन्धर पहुँची और रिक्शा कर पुरी के कमरे में जा खड़ी हुई। पुरी पलंग पर से उठ रहा था परन्तु कनक उसके पीछे छिपे एक लड़की के चेहरे को देख स्तब्ध खड़ी रह गई। पुरी भी उसके आगमन से उमंगित नहीं दिखाई दिया। कनक का सारा उत्साह समाप्त हो गया। उसने दोनों हाथों में अपना मुँह छिपा लिया। पुरी ने उसे सम्हाल कर दरवाजे से एक ओर हटा दिया। कनक खड़ी न रह सकी परन्तु सम्हल कर बैठ गई। पुरी ने उसकी खुशामद करते हुए बताया कि उसने संकट, विवशता और यातना की दारुण परिस्थितियों से विवश होकर, बेसुध सी दशा में उर्मिला को शरण दी थी और उससे यह सम्बन्ध स्थापित किया था। उर्मिला भी ऐसी ही विवश, यातना भरी परिस्थितियों में यहाँ आई थी, इसीलिए यह सब कुछ हो गया। साथ ही उसने यह भी बताया कि नैनीताल से आते समय उसके प्राणों पर कैसे-कैसे भयानक संकट आए थे और वह कैसे बच पाया था। यह सब सुन कर कनक सिहर उठी। फिर उसने वह दर्दभरी कहानी भी सुनाई कि उसे इस प्रेस में कैसे शरण मिली थी।

कनक को यह सब बता कर पुरी चाय का प्रवन्ध करने के लिए दूसरे कमरे में उर्मिला के पास पहुँचा। उर्मिला ने इन दोनों की सारी बातें सुन ली थीं। यह जान पुरी चकरा गया। उसने उर्मिला को समझाते हुए चाय बनाने के लिए कहा। उर्मिला विना उससे आँखें मिलाए चुपचाप चाय बनाने चली गई। पुरी ने कनक के पास लौट कर उससे परिस्थिति को किसी प्रकार सम्हाल लेने का अग्रह किया। उर्मिला चाय बना कर ले आई। तीनों ने चाय पी परन्तु कनक और उर्मिला नीची गर्दन किए सन्न और मौन बैठी रहीं। इतने में वहाँ सूद जी आ गए। उन्होंने पुरी को नीचे बुला कर डाँटा कि यह क्या तमाशा कर रखा है। फिर उन्होंने कनक से बात कर फैसला सुनाया कि वह पंडित जी को पत्र लिखेंगे, तब तक कनक अपनी बहन के घर रहे। उर्मिला के लिए उन्होंने नर्स का काम सीखने का प्रबन्ध कर देने की बात कही। उनके जाने के बाद पुरी सोचने लगा कि अब क्या करे? मैं दोनों में से किसी को भी धोखा नहीं दे सकता। दोनों का अपराधी हूँ। दोपहर को उर्मिला को बुलाने के लिए अस्पताल से एक दाई आई। उर्मिला चुपचाप उसके साथ अस्पताल चली गई। कनक ने सान्त्वना की साँस ली। पुरी उसे नैयर के यहाँ पहुँचा आया। पुरी ने अपनी भूलों और विक्षिप्त जीवन के कारण अव्यवस्थित मानसिक अवस्था का परिणाम समझ लिया और भविष्य में नियमित और संयमित जीवन विताने का निश्चय कर लिया। तीन सप्ताह बाद उर्मिला ट्रेनिंग के लिए लुधियाना भेज दी गई।

७

गांधी जी के निधन के पश्चात् रावत व्यस्त रहने के कारण तारा के सम्बन्ध में सोचना भूल गए। फिर एक दिन मिस्टर अगरवाल से भेंट होने पर उन्होंने सब को क्लब में बुलाया। वहाँ उन्होंने तारा के साथ निस्संकोच आत्मीयता पूर्ण व्यवहार किया। अपनी नौकर तारा के सामने अपनी उपेक्षा मिसेज अगरवाला को बहुत खली। वह अब अक्सर तारा को ताने देने लगी। तारा परेशान हो उठी। नौकरी के लिए उसका प्रार्थना-पत्र जा चुका था। रावत नरोत्तम के साथ अपनी लड़की नीलम का विवाह करना चाहते थे परन्तु नरोत्तम को नीलम पसन्द महीं थी। उसका झुकाव तारा के प्रति था। तारा इस बात को

जानती थी । इस बीच नरोत्तम एक आर्डनेन्स फैक्टरी में नौकरी पाकर वहाँ से जा चुका था । तारा स्वयं को अकेला और असहाय अनुभव करने लगी । एक दिन तारा मिस्टर अगरवाला के साथ रावत से मिलने क्लब चली गई तो लौटने पर मिसेज अगरवाला ने उसे खूब खरी-खोटी सुनाई । उन्होंने उससे वहाँ से निकल जाने के लिए भी कह दिया । नरोत्तम आ गया था । पिता-पुत्र दोनों ने तारा को आश्वासन दिया कि वह परेशान न हो । यह भी बताया कि कल से उसे नौकरी पर जाना है । दूसरे दिन से तारा नौकरी पर जाने लगी । अब वह नरोत्तम के साथ मकान ढूँढ़ने की कोशिश में जुट गई । X

नर्स मर्सी सोरल नरोत्तम की परिचित थी । वह दरियागंज में एक फ्लैट लेकर एक दूसरी नर्स के साथ रहती थी । नरोत्तम का एक पुराना मास्टर निरंजन चड्ढा उसका प्रेमी था । मर्सी के साथ रहने वाली नर्स सिल्वा विवाह कर मैसूर चली गई थी । चड्ढा गिरफ्तार हो चुका था । नरोत्तम ने मर्सी से कहकर तारा का उसके यहाँ रहने का प्रबन्ध कर दिया । तारा ने स्वीकार कर लिया । तारा ने मर्सी को अपनी असली कहानी न बता एक गढ़ी हुई कहानी सुना सन्तुष्ट कर लिया । कुछ दिन बाद तारा को पता चला कि उसके यहाँ कम्युनिष्ट लोग आते रहते हैं और राजनीतिक समस्याओं पर बहसें होती हैं । मर्सी का तारा पर विश्वास जम गया था, इसलिए उसने धीरे-धीरे उसे चड्ढा आदि के साथ अपने सारे सम्बन्ध बता दिए । वह और चड्ढा परस्पर विवाह करना चाहते थे, परन्तु आजकल चड्ढा फरार था । मर्सी और तारा अब परस्पर खूब घुल-मिल गई थीं । एक दिन तारा को लाहौर वाली पूरणदेई की लड़की सीता मिल गई । सीता उसी दफ्तर में क्लर्क थी । तारा ने उसे अपनी सारी कहानी सुना दी । धीरे-धीरे तारा के काम के कारण दफ्तर में उसका महत्व बढ़ गया ।

जून, सन् १९४८ में शरणार्थियों की सहायता का काम एक नए मंत्री सक्सेना साहब को सौंप दिया गया था । वह अब शरणार्थियों को सहायता न देकर उन्हें कारोबार से लगा, बसा देने की नीति पर चल रहे थे । इसलिए उन्होंने नोटिस दे दिया कि छः महीने में सारे शरणार्थी-कैम्प समाप्त कर दिए जायेंगे । शरणार्थियों के खिलाफ यह शिकायतें भी आ रही थीं कि वह छोटा-

मोटा व्यवसाय कर कमाने लगे थे मगर फिर भी सरकार से मुफ्त राशन और रहने का स्थान ले रहे थे। सरकार इस स्थिति को समाप्त कर देना चाहती थी। अब उसने शरणार्थियों को मकान बनाने के लिए जमीन, गृह-उद्योगों के लिए साधन और सुविधा देने की नीति अपना ली थी। इन सारी समस्याओं के कारण तारा के दफ्तर में काम बहुत बढ़ गया था। तारा को पौने तीन सौ रुपए वेतन मिल रहा था। अब उसे स्त्रियों को कर्ज और गृह-उद्योगों की सहायता के प्रार्थना-पत्रों पर कार्यवाई करने का काम सौंप दिया गया। इधर सीता के काम से अफसर असन्तुष्ट थे। तारा ने उसे समझाया परन्तु कोई असर नहीं हुआ।

पुनर्वास-विभाग के मंत्री ने आदेश दिया कि ३१ मार्च को देश के सारे शरणार्थी कैम्प बन्द कर दिए जायेंगे। उस दिन से किसी को मुफ्त राशन नहीं दिया जायगा। इसलिए शरणार्थी अपने रहने और खाने का प्रबन्ध अन्यत्र कर लें। सारे शरणार्थियों में बेचैनी फैल गई। सब इस आज्ञा का विरोध करने लगे। पुनर्वास-विभाग में काम करने वालों को भी आशंका होने लगी कि अब यह विभाग समाप्त कर दिया जायेगा और उनकी नौकरी चली जायेगी। मार्च के प्रथम सप्ताह में शरणार्थियों ने इस आज्ञा के विरोध में प्रदर्शन किए। परन्तु सरकार अपने निश्चय पर दृढ़ थी। आन्दोलन और उग्र हो उठा। प्रधानमंत्रो ने पुनर्वास मंत्री से अपने निर्णय पर पुनर्विचार करने के लिए कहा परन्तु उसने नहीं माना। उसने आज्ञा दी कि यदि कैम्प खाली नहीं किए गए तो कैम्पों के सभी कर्मचारियों को बर्खास्त कर कैम्पों को सैनिक-नियंत्रण में दे दिया जायगा।

दफ्तर के कर्मचारियों ने प्रस्ताव रखा कि दफ्तर के सभी कर्मचारियों के हस्ताक्षरों से युक्त एक आवेदन पत्र इस आज्ञा को स्थगित करवाने के लिए मंत्री की सेवा में भेजा जाय। तारा ने सबल तर्क देते हुए हस्ताक्षर करने से इन्कार कर दिया। कुछ लोगों को इससे बल मिला परन्तु कुछ लोग तारा से असन्तुष्ट हो गए। एक दिन तारा को 'नाजिर' का एक अंक मिला जिसमें प्रधान-सम्पादक जयदेव पुरी ने इस सरकारी आज्ञा के विरोध में बड़ी दर्दभरी अपील निकाली थी। भाई की याद आ जाने से तारा विक्षिप्त-सी हो उठी।

८

पंडित गिरधारी लाल कनक और पुरी की 'सिविल मैरिज' के लिए सहमत हो गए थे। पुरी ने विवाह के लिए सोनवाँ से अपने परिवार को बुला लिया था। सूद जी के सहयोग से पुरी कांग्रेस के अधिक सम्पर्क में आता जा जा रहा था। वह 'नाजिर' में सम्पादकीय, टिप्पणियाँ आदि स्वयं लिखता था। वह नए शासन के विरुद्ध बड़े विद्रूप भरे लेख लिखता। कनक से विवाह हो जाने के उपरान्त पुरी ने 'कमल प्रेस' के हिसाब-किताब का सारा काम अपने पिता मास्टर जी को सौंप दिया और कनक के साथ स्वयं 'नाजिर' के प्रकाशन में जुट गया। पुरी ने घर का सारा प्रबन्ध कर दिया था। छोटी बहन ऊषा कालेज में दाखिल हो गई थी परन्तु उसकी माँ भागवन्ती कनक से असन्तुष्ट रहती थी। कनक पति का प्यार पा और अपनी कामना को सफल देख प्यार और काम में डूब गई। 'नाजिर' की लोकप्रियता दिनोंदिन बढ़ती जा रही थी। रिखीराम प्रेस का काम देखता था। एक दिन मास्टर जी ने पुरी से रिखीराम की बेईमानी की शिकायत की तो उसने कह दिया—सब चलता है। धर्मनिष्ठ और कर्त्तव्य परायण मास्टर जी को यह बात बहुत अखरी। उन्होंने हिसाब-किताब से अपना हाथ खींच लिया। यह देख पुरी ने सूद जी से कह कर पिता के नाम एक 'कोल डिपो' मंजूर करवा दिया। मास्टर जी को दो-तीन सौ रुपए माहवार की आमदनी होने लगी। कोल डिपो प्रेस से दो मील दूर था। इसलिए मास्टर जी ने वहीं मकान ले लिया और पत्नी, पुत्र हरी और पुत्री ऊषा को साथ ले वहीं जाकर रहने लगे।

सब के चले जाने पर पुरी के घर में सूनापन भर गया। परन्तु कनक पुरी तन्मयता के साथ घर और अखबार का काम करने लगी। अब पुरी अकारण चिड़चिड़ा उठता था, इससे कनक अपमान का अनुभव करती। कुछ समय बाद कनक ने अनुभव किया कि पुरी के स्नेह का आवेश क्षीण होने लगा था, प्रेम के व्यवहार में से उमंग मिटती जा रही थी। 'नाजिर' की नीति गांधीवादी और कांग्रेसी-समाजवादी विचारधारा की समर्थक थी, परन्तु पुरी और कनक के अतिरिक्त प्रेस के अन्य कर्मचारी कांग्रेस-विरोधी थे। कनक गर्भवती थी, इसलिए अब अधिक काम नहीं कर पाती थी। पुरी प्रीतमसिंह

गिल को सहायक-सम्पादक बनाना चाहता था। उसके बुलाने पर गिल जालन्धर आ गया और 'नाजिर' में काम करने लगा। रिखीराम चुपचाप प्रेस के नाम पर तेरह हजार एक सौ तीस रुपए कर्ज ले आया था और अब काम पर नहीं आ रहा था। रुपए देने वाले अच्छरूराम ने प्रेस पर दावा कर दिया। नैयर की मदद से पुरी को बड़ी मुश्किल से इस मुसीबत से छुटकारा मिल सका। मुकद्दमा समाप्त हो जाने पर सूद जी ने भविष्य में उठने वाले सारे झँझटों को दूर कर देने के लिए प्रेस पुरी के नाम अलाट करवा दिया।

९

३१ मार्च की सन्ध्या को सारे शरणार्थी कैम्प बन्द करवा दिए गए परन्तु पुर्नवास विभाग के दफ्तर में काम और अधिक बढ़ गया था। दफ्तर में कर्ज देने और पाकिस्तान में शरणार्थियों की छूट गई सम्पत्ति के दावों को निपटाने का बहुत बड़ा काम प्रारम्भ हो गया था। तारा इन दावों को देख रही थी। एक दावे पर शीलो के पति का नाम देख वह ठिठक गई। वह शीलो से मिलने के लिए बैचेन हो उठी। वह शीलो के घर पहुँची तो शीलो उसे देख अवाक रह गई। फिर दोनों बहनों ने अपनी-अपनी आप-बीती सुनाई। तारा नब्बू और हाफिज जी के प्रसंग को छिपा गई, सभी से छिपाती थी। शीलो ने तारा को बताया कि रतन ने कई बार रुपए-पैसे से उसको सहायता की थी जिसके कारण उसका पति उससे नाराज हो गया और सारा ने कहा कि बच्चा रतन का ही है। अब भी रतन महीने में एक बार उससे मिलने आ जाता है। सारे घर वाले इस बात से शीलो के खिलाफ हो गए हैं। शीलो ने यह बताया कि अब उसे अपना पति भी नहीं सुहाता, हमेशा लड़ता और रुलाता रहता है। तारा उसे सान्त्वना और अपना पता तथा फोन नम्बर देकर लौट आयी।

दूसरे दिन तारा को नरोत्तम का पत्र मिला कि उसकी बदली दिल्ली हो गई है। वह दिल्ली आकर सन्ध्या समय तारा से मिलने आने लगा। एक दिन नरोत्तम ने उससे कहा कि यदि तारा अनुमति दे दे तो वह तारा से बचनबद्ध होने की बात कह कर रावत की लड़की नीलम से विवाह करने से इन्कार कर दे। रावत बहुत जोर दे रहे थे। परन्तु तारा ने कहा कि वह उसे अपना भाई मानती है। नरोत्तम ने सदा के लिए अपनी बात वापस ले ली। इस घटना

के चार दिन बाद तारा को सुबह फोन मिला कि शीलो उसे तुरन्त बुला रही है। तारा के पहुँचने पर शीलो ने कहा कि वह उसके लड़के को अपने साथ ले जाये। उसके पति ने उससे अपने बाप के घर चले जाने के लिए कह दिया है। तारा जाकर रतन से मिली। रतन शीलो को रखने को तैयार हो गया और शीलो उसके घर चली आई। शीलो और रतन प्रसन्न और सन्तुष्ट थे।

एक दिन तारा और मर्सी चाय पीते हुए बातें कर रही थीं कि माथुर आ गया। माथुर चड्ढा का पुराना सहयोगी था। उसने कहा कि कांग्रेस और नौकरशाही में कुनबा-परस्ती और भ्रष्टाचार भर गया है। मर्सी ने कहा कि आजादी क्या हुई, पूँजीपतियों के हौसले और प्रभाव बढ़ गया है। माथुर को तारा से सहानुभूति हो गई और वह उसका विवाह कराने की फिक्र में जुट गया। उसने तारा का परिचय नित्यानन्द तिवारी से करवा दिया जो अलीगढ़ यूनिवर्सिटी में इतिहास का लेक्चरर था। वह तारा से मिलने प्रति सप्ताह दिल्ली आने लगा। परन्तु तारा अपने विवाह के प्रसंग को सदैव टाल जाती।

१०

सन् १९४८ में जालन्धर में पुरी की सोमराज (तारा का पति) से भेंट हो गई थी। उसके पिता सुखलाल का देहान्त हो चुका था। मास्टर जी आदि उसके यहाँ मातम-पुर्सी करने गये। पुरी अब सूद जी का दाहिना हाथ और एक प्रभावशाली व्यक्ति बन गया था। सोमराज ने पुरी के प्रति आदर और आत्मीयता प्रकट की। दोनों परिवारों में आना-जाना आरम्भ हो गया। सोमराज का अपने चचेरे भाई की पत्नी शान्ति से अनुचित सम्बन्ध था। उसके घरवाले इसके लिए उसकी आलोचना और निन्दा करते थे। सोमराज प्रायः पुरी के पास आने लगा। सूद जी मंत्रिमंडल में ले लिए गए थे। वह शिमला रहते थे। जालन्धर में पुरी उनका प्रतिनिधि था। एक दिन दिल्ली से गोविन्द राम ने पुरी को पत्र लिखा कि तारा जीवित है और साढ़े तीन सौ माहवार की नौकरी कर रही है उन्होंने तारा की खूब प्रशंसा की थी। पत्र पढ़ कर कनक बड़ी प्रसन्न हुई। उसने पुरी से कहा कि वह पत्र लिख कर तारा को फौरन बुला ले। परन्तु पुरी ने उत्तर दिया कि अभी तारा के यहाँ आ जाने से सोमराज आदि ऊधम उठा देगें, इसलिए पहले पत्र लिख कर तारा से सारी

स्थिति मालूम कर ली जाय। कनक ने मौन विरोध में मुँह फेर लिया। इस घटना ने उसके सामने पुरी का असली रूप स्पष्ट कर दिया। वह तारा के रूप में स्वयं को अपमानित समझने लगी। कनक उससे खिची-खिची सी रहने लगी। तीन सप्ताह बाद पुरी ने उसे बताया कि तारा ने उसके पत्र का उत्तर तक नहीं दिया। कनक ने स्वयं पत्र डालने की बात कही। इस पर फिर बात बढ़ गई और सम्बन्ध कटु हो गए। पुरी का सार्वजनिक जीवन बढ़ गया था। वह बाहर व्यस्त रहता और घर में कनक की उदासीनता उसे परेशान किए रहती।

एक दिन पुरी ने कनक को भरे दिल से बहुत समझाया कि वह तारा के भले के लिए ही उसे जालन्धर नहीं बुलाना चाहता। कनक चाहे तो दिल्ली जाकर स्वयं तारा से मिल आए। मार्च सन् १९५१ में पुरी पुराना मकान छोड़ 'माडल टाउन' में एक नए मकान में आ गया। उसने यह मकान ढाई हजार रुपया सालाना की किश्त पर लिया था। मगर नए मकान में आ जाने से खर्च बढ़ गया था। इसी उलझन में वह कभी-कभी कनक पर झुँझला उठता। एक दिन सूरज प्रकाश नामक उसके परिचित एक प्रकाशक ने पुरी से आग्रह किया कि वह उससे रुपए उधार लेकर अपनी प्रेस में एक और नई मशीन लगा ले। पुरी ने प्रस्ताव स्वीकार कर लिया। पुरी टैक्स्ट-बुक कमेटी का सदस्य भी था।

पंजाब मन्त्रिमंडल की भीतरी दलबन्दी और मत भेदों के कारण कांग्रेसी मंत्रिमंडल का शासन चलाना असम्भव हो गया। गवर्नर ने स्वयं शासन सम्हाल लिया। सारे देश की जनता नए शासन के भ्रष्टाचार, कुनबा-परस्ती आदि से बहुत परेशान हो रही थी। पुराने अंग्रेज-भक्त कांग्रेस के सदस्य बन उसमें घुस आए थे। लोग धारा-सभा के सदस्यों को एम. एल. ए. न कह घृणा से 'मैले' कहने लगे थे। नए उभरते संगठनों राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ, कम्युनिष्टों आदि ने कांग्रेस के प्रति विद्रोह कर, कांग्रेस को उन्हें कुचल डालने का अवसर दे दिया था। सारे देश की जनता कांग्रेस से असन्तुष्ट और निराश थी। परन्तु कांग्रेस में सूद जी जैसे नेता भी थे जो जर, जमीन, धन आदि के मोह से मुक्त थे। यद्यपि उनके समर्थक लाभ उठाते रहते थे। उसे तथा नए लाभ

उठाने के इच्छुक लोग सूद जी के कट्टर समर्थक थे। इसलिए सूद जी नए आम चुनावों की तैयारियों में जुट गए। वह अपने अधिक-से-अधिक समर्थक धारा-सभा में भेजना चाहते थे। वह पुरी को भी टिकट दिला देना चाहते थे। परन्तु कनक और गिल इस विचार के विरोधी थे। परन्तु पुरी इसके लिए उत्सुक और इच्छुक था। वह अपने और सूद जी के समर्थन के लिए 'नाजिर' का पूरा उपयोग करना चाहता था। अब गिल सम्पादक और कनक 'नाजिर' के संचालक बन गए थे। पुरी ने अपना नाम हटा दिया था। पुरी गिल के लेखों को पढ़ कर गद्‌गद् हो जाता।

एक दिन कामरेड दौलतराम आजाद, जिसके साथ गिल ने आजादी के संघर्ष में खुल कर भाग लिया था, जेल से छूट कर गिल से मिलने आया। वह बीमार था और गुजारे की चिन्ता से परेशान था। गिल के कहने पर पुरी ने सूद जी से उसे टीन का कोटा दिला देने की सिफ़ारिश कर दी परन्तु सूद जी ने उसका नाम कटवा कर किसी दूसरे को वह कोटा दिलवा दिया। यह जानकर कनक बहुत बिगड़ी तो पुरी ने उसे डाँट दिया। कनक और पुरी के बीच खिचाव बढ़ता चला गया। कान्ता और नैयर इस बात को भाँप गए। उनके समझाने पर कनक ने अपनी भूल स्वीकार कर पुरी से समझौता कर लिया। करवा चौथ के दिन दोनों ने एक थाली में खाना खाया।

११

तारा को नौकरी करते दो वर्ष हो गए थे। अब उसके जीवन में स्थिरता आ गई थी। शीलो को रतन की जिद के कारण उसके सास-ससुर ने स्वीकार कर अपने घर बुला लिया। तारा से पुरी का पता पाकर रतन ने उससे मिलने की इच्छा प्रकट की परन्तु तारा ने उसे समझाकर रोक दिया। बाद में रतन के पिता ने ही तारा के सम्बन्ध में पुरी को पत्र लिखा था। तारा ने अपने भाई का पत्र पाकर खूब सोचा और फिर गढ़े अतीत को न उखाड़ने के लिए पत्र का उत्तर न देना ही उचित समझा। मई सन् १९५० में तारा सेंट्रल सेक्रेटिरिएट की सर्विस के चुनाव में ले ली गई। अब वह अन्डर सेक्रेटरी के रूप में 'नारी कल्याण केन्द्रों' की अध्यक्ष के पद पर काम करने लगी। उसका वेतन बढ़ गया। जुलाई में चड्‌ढा अपने अज्ञातवास को त्याग प्रकट हो

गया और मर्सी ने उसे अपने साथ रख लिया। अब यहाँ माथुर तथा अन्य कामरेड आते और बहसें होती रहतीं। माथुर कम्युनिस्टों पर बाहर से प्रेरणा और सहायता लेने का आरोप लगाता और चड्ढा उसका उत्तर देता। वहाँ का यह जमघट और बहसबाजी देख तारा ऊब उठी और किसी दूसरी जगह रहने के लिए मकान तलाश करने लगी। उसके डिप्टी सेक्रेटरी बत्रा मेहता ने भी यही सलाह दी। कम्युनिस्टों का संगसाथ एक सरकारी अफसर के लिए ठीक नहीं था। काफी दौड़धूप के बाद उसे पचकुइयाँ रोड पर एक मकान मिल गया। उसने सहारे के लिए सीता और उसकी माँ को अपने ही साथ रख लिया। नए मकान में माथुर और नरोत्तम उससे मिलने आते रहते थे।

तारा को नया मकान दफ्तर के क्लर्क खुशीराम मेहता की सहायता से मिला था। मेहता ने अपनी बेटी गुड्डी का नाम तारा के नाम पर 'तारा' रख दिया। डाक्टर प्राणनाथ सरकार के आर्थिक परामर्श दाता बन गये थे। एक दिन बत्रा साहब के आदेशनुसार तारा पूरा ब्यौरा और रिपोर्ट तैयार कर उनके दफ्तर में ले गई। डाक्टर नाथ तारा को देख आश्चर्य चकित रह गए। उन्होंने तारा के मर जाने के सम्बन्ध में उड़ी अफवाह के सम्बन्ध में उससे पूछा। फिर डाक्टर ने अपने भारत आने की पूरी दास्तान सुनाई। अब वह प्रोफेसर सालिस के साथ पंचवर्षीय योजना पर काम कर रहे थे। फिर उन्होंने उससे पुरी, उसकी ससुराल, माता-पिता के सम्बन्ध में पूछा और तारा ने बता दिया। उस दिन कोई सरकारी काम नहीं हो सका। इसके बाद दोनों ने बाहर जाकर एक रस्तोराँ में चाय पी और अपने-अपन घर चले गए। सीता तारा के साथ रहते रहते पहले से सम्हल गई थी परन्तु अब फिर अकुलाने लगी थी। तारा ने प्रयत्न कर मेहता के ममेरे लड़के के साथ उसकी शादी करवा दी।

दूसरे दिन दफ्तर का काम समाप्त कर तारा रविवार को डाक्टर नाथ को अपने यहाँ भोजन करने का निमंत्रण दे आयी थी। डाक्टर ने बातों-ही बातों में कहा कि उसकी बीबी को तो किसी भी बात का सलीका नहीं है। सुन कर तारा को विस्मय हुआ और उसने डाक्टर से कहा कि वह भाभी जी से उसे मिलवाये। एक दिन मर्सी ने तारा को अपने घर मिलने को बुलाया। मर्सी ने उससे तिवारी के साथ विवाह करने के सम्बन्ध में पूछा तो तारा ने

साफ इन्कार कर दिया। मिसेज अगरवाला तारा से सम्पर्क बनाये रखती थी। उनके बुलाने पर तारा एक दिन उनके यहाँ गई। वहीं उसने डाक्टर श्यामा और मिस्टर डे को लेकर अनर्गल बातें सुनी। अवसर मिलने पर तारा ने डाक्टर श्यामा से इस बात की चर्चा की तो श्यामा ने अपने जीवन का सारा दुःख-दैन्य, विवशता उसके सामने उँड़ेल दी। सुन कर तारा कल्पना में डूब गई—दुखों और व्यथाओं का अन्त नहीं है। कहीं शारीरिक दुख है तो कहीं मानसिक।

दिल्ली आम चुनावों के बवन्डर के कारण क्षुब्ध थी। सभी लोग जानते थे कि शासन में धाँधली और अयोग्यता के बावजूद विजय कांग्रेस की ही होगी। विरोधी दल परस्पर एक दूसरे के दुश्मन थे। एक दिन तारा ने डाक्टर नाथ को फोन कर मिलना चाहा और आग्रह किया कि वह भाभी से अवश्य मिलवा दें। परन्तु डाक्टर नाथ अकेला ही आया, इससे तारा को बड़ी निराशा हुई। चुनावों में कांग्रेस की विजय हो चुकी थी। तीस कम्युनिस्ट चुन कर लोक सभा में आ गए थे। फिर सारा काम पूर्ववत् चलने लगा। तारा की बदली उद्योग और व्यापार विभाग में हो गई थी। एक दिन नरोत्तम ने उसे बताया कि डाक्टर नाथ अविवाहित है। सुन कर तारा चकरा गई। बीबी वाला रहस्य उसकी समझ में नहीं आया। मिलने पर तारा ने डाक्टर को उलाहना दिया तब डाक्टर ने बताया कि वह बीबी तो उनका बुड्ढा अर्दली भूपसिंह है।

१२

अब पुरी और नैयर में आत्मीयता बढ़ गई थी। पुरी उसका कृतज्ञ भी था परन्तु उसके द्वारा किए गये पुराने उपेक्षा भरे व्यवहार और अपमान के कारण उससे क्रुद्ध भी था। वह नैयर के लिए कुछ करके उसके सम-स्तर पर हो जाना चाहता था। उसने नैयर पर एक अहसान करना चाहा परन्तु उसने स्वीकार नहीं किया। नैयर का छोटा भाई लेफ्टीनेन्ट राजेन्द्र नैयर छुट्टी पर आया तो कनक से मिलने उसके घर भी आने लगा। पुरी की छोटी बहन ऊषा भी वहीं रह रही थी। तीसरी मुलाकात में ही दोनों ने एक दूसरे को स्वीकार कर लिया। उन दोनों की सगाई कर दी गई। ऊषा के विवाह पर कनक ने तारा को बुलाने का आग्रह किया तो पुरी ने उसे डाँट दिया। सितम्बर में माँ की तबियत खराब होने की सूचना पाकर कनक ने दिल्ली जाना चाहा परन्तु पुरी शिमला गया

हुआ था, इसलिए न जा सकी। अक्टूबर में पुरी लौटा। उसी समय शीलो के भाई किशोरचन्द ने बताया कि शीलो तीन बरस से गायब है। तारा उसे अपने साथ लिवा ले गई थी अब शीलो के सुसराल वाले सम्बन्ध-विच्छेद करने की धमकी दे रहे हैं। सुन कर पुरी चिन्तित हो उठा। किशोरचन्द ने तारा के चरित्र पर भी लांछन लगाया। पुरी को बुरा लगा। पुरी ने कनक से कहा कि वह किशोर चन्द और हरी के साथ दिल्ली जाकर वास्तविकता का पता लगाए। कनक दिल्ली जाकर रतन से मिली। उसने शाम को तारा के यहाँ ले चलने का वायदा किया। उसने फोन कर कनक के आने की सूचना भी तारा को दे दी।

कनक और तारा साढ़े पाँच वर्ष बाद मिली थीं। कनक के साथ उसकी बेटी जया भी थी। कंचन भी थी। वे लोग चाय पी रही थीं कि नरोत्तम आ गया। कंचन ने उसे बताया कि आर्थिक स्थिति खराब होने के कारण वह एक कालेज में कैमेस्ट्री पढ़ा रही थी। यह बात नरोत्तम को गढ़ गई। तारा और कनक बात करने दूसरे कमरे में चली गईं। तारा ने शीलो की परिस्थिति और उसके और रतन के पुराने सम्बन्धों के बारे में बताते हुए कहा कि शीलो अब रतन के साथ खुश है। उसने दोनों को केवल मिला दिया था। इसमें उसका कोई दोष नहीं। कनक ने बताया कि सोमराज जालन्धर में है। सुन कर तारा ने कहा कि मुझे उससे कोई मतलब नहीं। उसने कहा कि वह अपने भाई का विश्वास करके ही मारी गई थी। भाई ने उसके विरोध में कोई सहारा नहीं दिया। तारा ने कनक और कंचन को दूसरे दिन खाने पर बुलाया। नरोत्तम उन्हें अपनी गाड़ी में छोड़ गया। वहाँ से लौट कर कनक ने किशोरचन्द को बताया कि शीलो के पति ने शीलो को छोड़ दिया था इसलिए वह रतन के पास चली गई। अब वह लौट नहीं सकती, उसके दो बच्चे हैं। वह क्रोध में चुपचाप लौट आया।

कनक ने जालन्धर पहुँच पुरी को सारी बातें बताईं। उसने तारा और शीलो—दोनों की प्रशंसा की। बस, इसी को लेकर दोनों में ठन गई। बोल-चाल बन्द हो गई। गिल ने कनक को बताया कि पुरी अब थोड़ी सी पूँजी वाला बन जाने से बदल गया है। वह उलट-पलट से घबड़ाता है। तुम बेकार उसे चिढ़ा देती हो। कनक ने कहा कि मैंने झूठ को सहने के लिए सब का विरोध नहीं किया था। गिल ने दोनों को स्नेह से डाँटते हुये समझाया तो

पुरी कुछ खुला। कनक को अच्छा लगा। पुरी विधान-सभा के लिए चुन लिया गया था। एक दिन एक सिख उसके घर के सामने धरना देकर बैठ गया कि जब तक सरकार द्वारा छीनी गई उसकी जमीन उसे वापस नहीं मिल जायेगी, वह वहाँ से नहीं हटेगा। पुरी ने बहुत समझाया। वह नहीं माना तो पुरी ने पुलिस बुला कर उसे जेल भिजवा दिया। एक दिन पुरी की अनुपस्थिति में कनक ने 'नाजिर' का सम्पादकीय लिखते हुए राष्ट्रीयकरण और इवेक्वी जमीन के बटवारे पर एक तीखा लेख लिखा। उसे पढ़ कर पुरी और सूद जी, दोनों ही खिन्न और नाराज हो उठे। सूद जी ने धमकी दी कि दुबारा ऐसा होने पर वह प्रेस में ताला लगवा देंगे।

शिमला में पुरी को उर्मिला मिली थी। पुरी ने उसके प्रति पुनः झुकना चाहा परन्तु वह विमुख ही रही। फिर उसने एक डाक्टर से शादी कर ली। इस समाचार को सुन पुरी खिन्न मनः स्थिति में घर लौटा। कनक दफ्तर जा चुकी थी। यह देख पुरी ने सोचा कि कनक को अब दफ्तर के भार से मुक्त हो घर पर ही रहना चाहिए। कनक के प्रति उसके भावों में कोमलता और स्नेह की भावना भर गयी। रात को उसने यही बात कनक से कही तो कनक ने 'नाजिर' को छोड़ने में अपनी विवशता प्रकट की। इस व्यवहार से पुरी खिन्नता महसूस करने लगा। अब वह कनक से रूखा व्यवहार करने लगा। तीसरे दिन गिल के पूछने पर कनक ने स्पष्ट कह दिया कि उसका इस घर में रहना सम्भव नहीं है।

१३

तारा को डाक्टर नाथ पर क्रोध था। अप्रैल के अन्तिम सप्ताह में मिसेज अगरवाला के यहाँ से डाक्टर के साथ लौटते हुए जब डाक्टर ने उससे उसकी ससुराल के सम्बन्ध में पूछा तो तारा ने विवाह से लेकर अन्त तक की सारी घटना उसे संक्षेप में बता दी। डाक्टर ने पुरी के व्यवहार पर विस्मय प्रकट किया। उसने तारा की सारी दुखभरी सच्ची कहानी सुनने के बाद कहा कि तारा तुम बहुत बहादुर और साहसी हो। इसके बाद डाक्टर सरकारी काम से कुछ हफ्तों तक बाहर रहा। तारा उस पर अपना अधिकार समझने लगी थी। उसने सरकार से कर्ज लेकर एक नयी गाड़ी भी खरीद ली थी। एक दिन उसे डाक्टर

का तार मिला कि मैं तुमसे मिल कर नहीं आ सका। अपने कुशल और स्वास्थ्य का समाचार देना। पढ़ कर तारा गद्गद हो गयी। उसका मन असीम सान्त्वना और शान्ति से विभोर हो गया, जैसे अनन्त कृपा और शुभ कामना ने उसे सभी प्रकार के संकटों से शरण दे दी हो। उसने तार और पत्र द्वारा डाक्टर को अपनी कुशल-सूचना भेज दी।

सितम्बर में डाक्टर दिल्ली लौट आये और सन्ध्या को तारा से मिलने आए। तारा गद्गद हो उठी। जून, १९५३ के पहले सप्ताह में तारा को नरोत्तम से कनक के दिल्ली आने का समाचार मिला। उसने कनक से मिलने की उत्सुकता प्रकट की। नरोत्तम ने कनक से बात कर तारा को बताया कि कनक दिल्ली में ही नौकरी ढूँढ़ रही है। रविवार को कनक तारा से मिलने आई। कनक ने बताया कि अब वह पुरी के साथ नहीं रह सकती। उसने पाँच वर्ष तक अपने को दबा कर निवाह दिया। अब सम्भव नहीं है। हम लोगों की रुचि और प्रकृति एक दूसरे के अनुकूल नहीं है। अब नहीं निवाह सकती। कनक ने तारा सम्बन्धी कई कटु प्रसंग भी बताए। तारा को कनक के प्रति ममता और सहानुभूति तथा भाई के प्रति विरक्ति हो गई। कनक तारा की गोद में सिर रख देर तक रोती रही। पुरी और कनक के मनमुटाव को पंडित जी भाँप गए थे। वह चिन्तित हो उठे। उन्होंने पुरी को बड़ा आत्मीयतापूर्ण पत्र लिखा कि वह आकर कनक को ले जाये। पुरी तुरन्त दिल्ली पहुँच गया। पंडित जी ने तारा की प्रशंसा करते हुए बताया कि वह बड़ी अच्छी लड़की है, नौकरी ढूँढ़ने में कनक की सहायता कर रही है। सुन कर पुरी जल गया। उसने तारा से न मिलने का निश्चय कर लिया। पुरी के समझाने पर भी कनक लौटने को नहीं मानी। पुरी असफल होकर दिल्ली लौट गया।

पुरी के अनुरोध करने पर कान्ता कनक को समझाने दिल्ली आई। कनक ने उसे उर्मिला और पुरी के सम्बन्ध में बता दिया। कान्ता भी असफल होकर जालन्धर लौट गई। तारा नरोत्तम के साथ कभी-कभी क्लब चली जाया करती थी। वहीं मेजर कपूर से तारा की जान-पहचान हो गई। कपूर ने डाक्टर नाथ द्वारा तारा से विवाह का प्रस्ताव भिजवाया परन्तु तारा ने स्पष्ट इन्कार कर दिया। उसे उन लोगों का अंग्रेजी ढंग का यांत्रिक रहन-सहन

पसन्द नहीं था। तारा ने कपूर से न मिलने का निश्चय कर लिया। तारा नरोत्तम और कंचन के परस्पर विवाह के सम्बन्ध में सोचने लगी।

१४

तारा के प्रयत्न से कनक को दिल्ली से सत्ताईस मील दूर अलीगंज में 'समाज विकास केन्द्र' में अस्थाई नौकरी मिल गई। वहीं उसे एक मकान और परिचारिका भी मिल गई। कनक जया को लेकर नौकरी पर चली गई। जया की पढ़ाई में बाधा पड़ते देख वह सितम्बर में उसे माँ के पास दिल्ली छोड़ गई और प्रति सप्ताह उसे देखने आने-जाने लगी। परन्तु केन्द्र के अध्यक्ष वर्मा जी ने इस पर आपत्ति की। कनक इस नौकरी से खिन्न हो उठी। पंडित जी कंचन और नरोत्तम का विवाह करने को सहर्ष तैयार हो गए थे, परन्तु कंचन माता-पिता को अकेले छोड़ कर अभी जाना नहीं चाहती थी। गिल भी 'नाजिर' से त्यागपत्र दे दिल्ली आ गया था। वह साढ़े तीन सौ माहवार कमाने लगा था। उसने कनक के घर की स्थिति देख कनक को सलाह दी कि वह नौकरी छोड़ दिल्ली आ जाय। इसी बीच कनक की माँ का देहान्त हो गया। वह नौकरी छोड़ कर दिल्ली चली आई।

१५

पहली पंचवर्षीय योजना को तीन वर्ष बीत चुके थे। वह मुख्यतः कृषि सम्बन्धी थी। दूसरी पंचवर्षीय योजना में उद्योग-धन्धों को महत्व देने का प्रस्ताव था। नेहरू इसके कट्टर समर्थक थे। इसके अनुसार सरकार द्वारा नये बड़े-बड़े उद्योगों को स्थापित करने की योजना थी। इस नयी नीति ने कुछ क्षेत्रों में स्फूर्ति और कुछ में सनसनी उत्पन्न कर दी। योजना कमीशन के मुख्य आर्थिक सलाहकार डाक्टर सालिस और डाक्टर नाथ का महत्व और उत्तरदायित्व सहसा बढ़ गया था। डाक्टर नाथ से मिलने वालों की संख्या बहुत बढ़ गई थी। पूँजीपति, कम्युनिस्ट सभी उनसे मिलते रहते थे। दिल्ली आकर गिल फिर कम्युनिस्टों से मिलने-जुलने लगा था। वह प्रायः डाक्टर के यहाँ जाया करता था। एक दिन तारा चड्ढा, मर्सी, गिल आदि के साथ डाक्टर से मिलने उनके घर गई। घर की दशा और व्यवस्था बहुत ही खराब और गन्दी थी। मर्सी ने तारा से कहा कि डाक्टर तुम्हें बहुत चाहता है,

इसलिए अब इस घर का उत्तरदायित्व तुम शीघ्र सम्हाल लो। परन्तु तारा ने इन्कार कर दिया।

अब तारा नौकरी का सुरक्षित, नियमित परन्तु उत्साहहीन एकरस, नीरस जीवन बिता रही थी। परन्तु एक नई घटना ने उसके जीवन में क्षोभ और चिन्ता उत्पन्न कर दी। एक दिन उसके विभाग के डिप्टी सेक्रेटरी चारी ने तारा को फोन किया कि वह मिस्टर साहनी को 'कोआपरेटिव लोन' के लिए उनके पास भेज रहे हैं, उनका काम आज ही कर दिया जाय। उसका चपरासी सोमराज साहनी को तारा के पास पहुँचा गया। मंत्री ने उसकी सिफारिश की थी। सोमराज अफसर के रूप में सामने बैठी तारा को देख सकपका गया। तारा ने भी उसे पहचान लिया। सोमराज ने देश की स्वतन्त्रता के संघर्ष में दंड पाने वाले राजनीतिक पीड़ित के रूप में कर्ज के लिए अर्जी दी थी। उसके जेल काटने का प्रमाण-पत्र भी साथ में संलग्न था। यह झूठ देख तारा क्रोध से भभक उठी। फिर उसने तटस्थ रूप धारण कर कह दिया कि उत्तर डाक से भेज दिया जायेगा। सोमराज चुपचाप उठ कर चला गया। वह खून का घूँट पीकर रह गया। तारा ने केस चारी के पास वापस भेज दिया। चारी बौखला उठा। अतः तारा की बदली सूचना-विभाग में कर दी गई। यह घटना तारा को अपनी पराजय और अपमान महसूस हुई।

१६

कनक को जालन्धर से आए दो वर्ष हो गए थे। पुरी उसे समझाने और लौटा लाने का निरन्तर प्रयत्न करता रहा। कनक ने दो-एक जगह काम करना आरम्भ कर दिया था। पंडित जी का प्रेस दो सौ रुपए माहवार के ठेके पर उठा दिया था। पंडित जी कनक के सम्बन्ध में बहुत चिन्तित रहते थे। पुरी ने अप्रत्यक्ष-रूप से सम्बन्ध-विच्छेद कर लेने की धमकी दी, परन्तु कनक दृढ़ बनी रही। एक दिन पंडित जी ने तटस्थ भाव से कनक से कह दिया कि वह गिल से विवाह कर ले। गिल भी कनक को पत्नी रूप में प्राप्त करने के लिए उत्सुक था। कनक ने गिल से बात कर बात पक्की कर ली।

१७

सन् १९५७ के आरम्भ में, देश में आम चुनाव होने वाले थे। कांग्रेस सरकार जनता का विश्वास प्राप्त करने के लिए सन् १९५६ में अपनी दूसरी विशाल आर्थिक योजना लागू कर देना चाहती थी। पूँजीपतियों के समाचार पत्र सरकार की इस आर्थिक नीति को घातक बता रहे थे। इनका प्रचार था कि उद्योगों पर सरकारी नियंत्रण रहने से धाँधली और अपव्यय होगा। तारा की गणना भले अफसरों में नहीं थी क्योंकि वह रिश्वत नहीं लेती थी। इसीलिए लोग काम के लिए उसके पास कम आते थे। माथुर कहता था कि शासन में बड़े-बड़े अधिकारी रिश्वतखोरी और कुनबापरस्ती में डूबे हुए हैं। जनता टैक्स और मँहगाई की मार से परेशान है। अमीर और अफसर जनता के रुपए से अपनी जेबें भर रहें हैं। सरकारी धन और सामान की खुली लूट हो रही है। बाँधों में सीमेन्ट की जगह रेत भरी जा रही है। नरोत्तम का कहना था कि आज कल ईमानदारी और कर्तव्य परायणता दुर्लभ हो उठी है। विधान-सभा के सदस्य अपनी जेब से हजारों रुपया खर्च कर व्यर्थ ही चुनाव नहीं लड़ते। तारा अनुभव करती थी कि शासन और नेता-वर्ग में चलने वाली धाँधली और आपा-धापी जन-सामान्य के जीवन में भी उतर आई है। चारों ओर इसी का साम्राज्य है। जनता इसके विरुद्ध आवाज ही नहीं उठाती तो सरकार क्या करे।

डाक्टर नाथ जानते थे कि उद्योगपति और व्यवसायी नकली आय-व्यय का हिसाब दिखा कर लाभ कम दिखाते थे और सरकार को कम टैक्स देते थे। उनका विचार था कि उत्पादन पर राष्ट्रीय नियंत्रण रहने से मँहगाई दूर होगी और भावी विकास के लिए अधिक पूँजी मिलेगी। अपनी बात प्रमाणित करने के लिए उनका विभाग तत्सम्बन्धी आँकड़े और ब्यौरे एकत्र कर रहा था। चड्ढा भी व्यक्तिगत रूप में यही कर रहा था। एक दिन डाक्टर के घर पर चड्ढा गिल, तारा, नरोत्तम कनक आदि की महफिल जमी। वहाँ अनेक विषयों पर बातें हुईं। तारा ने सबके लिए चाय का प्रबन्ध किया। अन्त में उसने डाक्टर से घर जाने की अनुमति माँगी।

दिल्ली के घरेलू नौकर दिन में तीन-चार घन्टे की छुट्टी चाहते थे। तारा ने अपने नौकर परसू को इसकी इजाजत दे दी। यह हवा उस क्षेत्र के सारे

घरेलू नौकरों में फैल गई। इस बात से मुहल्ले के लोगों ने तारा को खूब कोसा। कंचन और नरोत्तम का विवाह हो जाने से मिसेज अगरवाला भी उससे मुँह फुलाये थी। तारा इस वातावरण में घुटी जा रही थी। एक दिन डाक्टर नाथ उससे मिलने आए। उन्होंने वताया कि कर्मचारी यूनियन के दबाव के कारण भूपसिंह अनिच्छापूर्वक उनके घर से चला गया है। घर में सफाई न होने से वह बहुत परेशान हैं। उन्होंने यह भी बताया कि एक समिति की बैठक में भाग लेने के लिए पुरी सूद जी के साथ दिल्ली आया था। सूद भी अजीब तानाशाही ढंग का आदमी है। वह राष्ट्रीय उत्पादन नियंत्रण सम्बन्धी योजना का विरोध कर रहा था। कहता था कि यह तो सीधी-सादी कम्युनिज्म की धमकी है। यह योजना कांग्रेस के लिए आत्म-हत्या बन जायेगी। पुरी ने उसकी हाँ-में-हाँ मिलाते हुए पूँजी के सिमट जाने और पश्चिमी राष्ट्रों की सहायता से वंचित हो जाने की बात कही। सूद जी ने कहा कि चुनाव में करोड़ों रुपये खर्च होंगे, वह धन हमीं लोगों को इकट्ठा करना होगा, न कि प्रधान-मंत्री को। प्रधान-मंत्री तो हवा में उड़ते रहते हैं। व्यवस्था हम को करनी पड़ती है। इसके उपरान्त सूद जी ने डाक्टर के सामने प्रस्ताव रखा कि वह सरकार से त्याग पत्र दे 'राष्ट्रीय खोज संस्था' में आ जाये। वेतन भी वहाँ से अच्छा मिलेगा और साल दो साल में वह किसी भी युनिवर्सिटी में वायस-चांसलर बन जायेंगे। सूद जी इसका आश्वासन देने को तैयार थे।

तारा ने डाक्टर को खाना खिलाया और फिर अपने नौकर परसू को उनके साथ उनके घर सफाई वगैरह करने के लिए भेज दिया। परन्तु इतने से ही सन्तुष्ट न होकर वह दफ्तर से तीन बजे स्वयं डाक्टर के यहाँ पहुँच गई। परसू वहाँ सो रहा था। तारा स्वयं सफाई करने में जुट गई। पाँच बजे वह कपड़े धोने में जुट गई। इसी समय डाक्टर दफ्तर से आ गए। तारा हड़बड़ा कर शरमा गई। उसने डाक्टर से मान किया। डाक्टर ने बहुत संकोच के साथ उसके सामने विवाह का प्रस्ताव रखा। प्रस्ताव सुन कर तारा की गर्दन झुक गई। उसके हृदय में रुलाई उमड़ रही थी। वह उठ कर चली गई और जब कुछ देर बाद संयत होकर बाहर आई तो डाक्टर जा चुके थे। तारा अपनी अभद्रता के कारण ग्लानि से धरती में गढ़ गयी। रात को दस बजे उसने बड़ा

साहस कर डाक्टर को फोन किया और बताया कि वह विवाह के योग्य नहीं है । पूछने पर वह कारण नहीं बता पाई । रोने लगी । रविवार को डाक्टर के फोन कर मिलने की उत्सुकता प्रकट करने पर तारा ने कहा कि वह नौ-साढ़े नौ बजे तक उनके घर ही आ जायेगी ।

तारा की पीली-सफेद, मोम सी, स्वप्न में चलती सी मूर्ति को देख डाक्टर को बड़ा विस्मय हुआ । उनके बहुत पूछने पर अन्त में तारा ने बताया कि उसे उस गुंडे से एक भयंकर रोग लग गया था । समझ न होने से वह समय पर अपना इलाज भी नहीं करवा पाई थी । सुन कर डाक्टर ने कहा कि अब वह अपनी पत्नी का इलाज करवायेगा । इलाज देश में या देश से बाहर कहीं भी सुविधानुसार हो सकता है । शीघ्र ही विवाह की रस्म पूरी हो जानी चाहिए । तारा डाक्टर के पैरों पर गिर फफक कर रो पड़ी ।

१८

कनक की समस्या को सुलझाने के लिए पंडित जी ने मार्च, सन् ५६ में नैयर को पत्र लिखा कि अब कनक का पुरी के पास लौटना असम्भव है, इसलिए वह दोनों के तलाक की व्यवस्था कर दे । नैयर ने पुरी से बातें की । पुरी ने अपनी सफाई देते हुए कहा कि वह चाहता है कि कनक उसके पास लौट आए । वह उसकी हर बात मानने को तैयार है । वह चाहता है कि कनक दफ्तर आदि न जाकर घर पर ही रहे । उसे बेटी जया की भी चिन्ता है । नैयर ने सारी बातें पंडित जी को लिख दीं परन्तु कनक ने जालन्धर जाने से इन्कार कर दिया । पंडित जी भी उससे सहमत थे । उन्होंने यही बात नैयर को लिख दी । कान्ता ने कनक को अपने पास जालन्धर बुलाया । कनक को जाना पड़ा । रास्ते में उसे पुरी का नौकर चेला मिल गया । उसने पुरी को सूचना दे दी । कान्ता और नैयर ने कनक को बहुत समझाया परन्तु कनक नहीं मानी । पुरी मिलने आया तो उसने कनक से घर चलने का आग्रह किया परन्तु कनक ने इन्कार कर दिया । उसने स्पष्ट कह दिया कि वह तलाक चाहती है क्योंकि वह उस जैसे छली आदमी के साथ नहीं रह सकती । उसने तारा, उर्मिला, माता-पिता सबके साथ छल किया है । पुरी ने तलाक देने से इन्कार कर दिया । नैयर ने कनक को तलाक सम्बन्धी कानूनी उलझनों

के सम्बन्ध में समझाया, परन्तु कनक फिर भी नहीं मानी। वह बहुत परेशान और चिन्तित दिल्ली लौट आई। सोच रही थी-गिल को क्या बतायेगी ?

१६

मंत्री बन जाने के बाद सूद जी सरकारी बँगले में चले गए। उन्हें सरकारी झंडा लगी मोटर, संतरी, अंग-रक्षक, फर्नीचर आदि सब कुछ मिल गया। अब उनका रहन-सहन का ढंग बदल गया था। उन्हें अधिकतर पंजाब की नयी राजधानी चंडीगढ़ में ही रहना पड़ता था। सूद जी के पास अपनी जमीन-जायदाद, बैंक-बैलेन्स आदि कुछ भी नहीं था, परन्तु उनके समर्थक निहाल हो गए थे। देश भर के बड़े-बड़े व्यवसायी और उद्योगपति उनके मित्र बन गए थे। उनके मित्रों और समर्थकों को कानून और सरकारी अनुशासन का कोई भय नहीं रहा था। सूद जी कितनी ही संस्थाओं के सूत्रधार थे और उन संस्थाओं को सूद जी की कृपा से धन की कोई कमी नहीं रहती थी। उनके अनेक आदमी बड़े-बड़े उद्योगपतियों के यहाँ ऊँची-ऊँची नौकरियाँ पा गए थे। वे सब सूद जी के अनुगत थे, न कि अपने मालिकों के।

सूद जी स्वभाव से स्पष्टवादी, दृढ़ और विचारों की एकाग्रता वाले व्यक्ति थे। स्थिति के दूसरे पक्ष की वह कभी कल्पना तक नहीं कर पाते थे। उनका रूखापन और हाकिमाना व्यवहार विरोधी पक्ष को समाप्त कर देने को उत्सुक और प्रयत्नशील रहता था। वह मुख्यमंत्री न होते हुए भी जब चाहे तब मुख्य मंत्री बन सकते थे। उन्हें 'मुख्यमंत्री-निर्माता (किंग मेकर)' माना जाता था। उनके कृपापात्रों की संख्या बहुत बढ़ गयी थी, परन्तु जो उनकी कृपा नहीं प्राप्त कर पाते थे, वे उनके कट्टर विरोधी बन जाते थे। परन्तु सदैव समर्थकों से घिरे रहने के कारण सूद जी इस प्रतिक्रिया से अपरिचित ही थे। सूद जी अपने से मतभेद को अपनी सत्ता के प्रति शंका और विरोध समझते थे। वे अपने विरोधी को निर्मूल कर देने या उसे धूल चटा देना आवश्यक समझते थे।

डाक्टर प्राणनाथ ने प्रधान-मंत्री के समर्थन के भरोसे सूद जी के सुझावों की अवज्ञा की थी। नई पंचवर्षीय योजना सन् १९५६ के प्रारम्भ में लागू भी हो गई थी। इसमें औद्योगिक विकास का प्रधान अंश राष्ट्रीय नियंत्रण में रखा गया था। यह स्थिति देख बड़े-बड़े उद्योगपति सूद जी की कृपा के और अधिक

आकांक्षी वन गए थे। सूद जी ने इसके लिए डाक्टर सालिस और डाक्टर प्राणनाथ को क्षमा नहीं किया था। सूद जी का प्रभाव बढ़ते देख उनके अनेक विरोधी भी उनके पक्ष में आ गए थे। डाक्टर प्रभूदयाल भी उनके कृपापात्र वन इंगलैंड हो आये थे और अव मैडीकल कालेज में 'प्रोफेसर आफ मैडीसन' के पद के आकांक्षी थे। वह एक वार सूद जी को देखने चन्डीगढ़ आए और उन्होंने अकस्मात् एक पत्रिका में डाक्टर प्राणनाथ और तारा के विवाह की सूचना पढ़, सूद जी को वता दी। उन्होंने तारा का पुराना इतिहास भी वता दिया कि उसकी शादी सोमराज के साथ २९ जुलाई, सन् १९४७ में ही हो गई थी। हिन्दू-मैरिज हुई थी। पति के जीवित रहते दूसरी शादी कैसे हो गई। सूद जी को डाक्टर प्राणनाथ को नीचा दिखाने और परेशान करने का कारण मिल गया। उन्होंने फोन पर पुरी को इस विवाह की सूचना दे दी। सुनकर पुरी क्रोध से उबल उठा। उसने सोचा कि तारा और कनक मिल कर उसे नीचा दिखाना चाहती हैं। सूद जी ने पुरी और सोमराज को आश्वासन दिया कि सारी कार्रवाही सरकारी रहस्य के ढंग से बिलकुल गुप्त, केवल विभाग द्वारा ही की जायेगी। डाक्टर को होश आ जायेगा।

तारा और डाक्टर का विवाह पंडित जी के घर पर हिन्दू-रीति से हुआ था। विवाह के बाद दोनों तीन महीने की छुट्टी लेकर स्विट्जरलैण्ड चले गए थे। तारा के छुट्टी से लौटने के एक सप्ताह वाद उसे 'गृह विभाग' के सेक्रेटरी के चपरासी ने एक पत्र लाकर दिया, जिस पर 'अत्यन्त गुप्त' लिखा था। तारा पत्र पढ़ कर स्तब्ध रह गयी। उसका सिर चकरा गया। उसी समय डाक्टर ने फोन पर उससे पूछा कि क्या तुम्हें कोई पत्र मिला है? डाक्टर को भी ऐसा ही एक पत्र मिला था। तारा ने सोचा कि वह अपने साथ डाक्टर को भी ले डूबी। मिलने पर दोनों ने पत्र देखे। पुरी, सोमराज, डाक्टर प्रभूदयाल ने उनके विरुद्ध बयान दिये थे। डाक्टर ने कहा कि यह सारी बदमाशी सूद की है। वह उससे बदला लेना चाहता है। अब यह प्रश्न नौकरी का न रह कर सम्मान का बन गया है। हम पर कानूनी आधार पर आरोप लगाया गया है, इसलिए इसका सामना कानूनी आधार पर ही करना होगा। गिल के आ जाने पर उसे भी सारी बातें बता दी गयीं। गिल ने सुझाव दिया कि नैयर से कानूनी सलाह ली जाय।

पंडित जी ने नैयर को लिखा था कि वह पुरी को किसी तरह समझा कर तलाक दे देने के लिए राजी कर ले। नैयर के समझाने पर पुरी ने स्पष्ट इन्कार कर दिया। नैयर इसी सिलसिले में दिल्ली आया हुआ था। नैयर ने सारे कागजात देख कर कहा कि कानूनी दृष्टि से तो यह विवाह अवैधानिक है। परन्तु रक्षा के लिए कानुन की ही शरण लेनी पड़ेगी। कानून की चोट से कानून की ढाल ही बचा सकती है। परन्तु यह कार्रवाई अदालती न होकर विभागीय है। डाक्टर ने बताया कि सूद जी मुझसे नाराज हैं, इसलिए रास्ते से हटाना चाहते हैं। नैयर ने कहा कि अभी तारा को सोमराज की ओर से अदालत का यह नोटिस नहीं मिला है कि यह विवाह अवैध है, इसलिए अदालत इस आरोप को स्वीकार नहीं करेगी। इस षड्यंत्र में सोमराज को हथियार बनाया गया है। डाक्टर ने बताया कि यह पूरा मामला राजनीतिक है। विभाग के अनेक बड़े अफसर उनकी योजना के विरोधी हैं। इसलिए यह मामला उठाया गया है।

काफी विचार विमर्श के बाद नैयर ने कहा कि हमें यह सिद्ध करना होगा कि पुरी सन् ४९ से ही तारा के सम्बन्ध में जानता था कि वह दिल्ली में है। उसने इस सम्बन्ध में सोमराज को अवश्य बताया होगा। पुरी ने तारा को जालन्धर इसलिए नहीं बुलाया क्योंकि वह जानता था कि सोमराज तारा को छोड़ चुका है। कनक ने कहा कि वह इस बात की गवाही दे देगी। नैयर ने तारा से कहा कि उसे इसी गवाही के आधार पर उत्तर देना चाहिए। साथ ही विभाग को यह चेतावनी भी दे दे कि विभागीय कार्रवाई की जाने पर वह अदालत की शरण लेगी। इधर कनक पुरी की पत्नी के रूप में इस अन्याय और जालसाजी के सम्बन्ध में प्रधान मंत्री को पत्र द्वारा सूचना दे देगी। वह लिखेगी कि सोमराज और पुरी सूद जी के कृपापात्र होने के कारण इस अन्याय और अत्याचार में सूद जी के सहायक बन गए हैं। कनक के इस पत्र की एक नकल पुरी के पास भी भेज दी जायेगी। नैयर ने यही सारी बातें पंडित गिरधारी लाल को भी समझा कर शान्त कर दिया। नैयर इस योजना द्वारा तारा और कनक दोनों को संकटों से मुक्ति दिला देना चाहता था।

डाक्टर और तारा ने अक्टूबर के अन्त में नोटिसों के उत्तर दे दिये थे। डाक्टर ने सारी बातें डाक्टर सालिस को बता दी थीं। वह प्रधानमंत्री से

बात करना चाहते थे। अवसर मिलने पर उन्होंने सारी बातें प्रधानमंत्री को बता दीं। प्रधानमंत्री इन तिकड़मों और सूद को खूब समझते थे। उन्होंने मामला अपने गौर के लिए स्थगित करवा दिया। प्रधानमंत्री चुनाव में व्यस्त थे। चारों ओर चुनावों की ही चर्चा होती रहती थी। तारा को नौकरी की चिन्ता न होकर कलंक लग जाने की चिन्ता थी कि उसके कारण डाक्टर को नौकरी से हाथ धोना पड़ा। जनवरी की कड़कड़ाती सर्दी में एक दिन गिल और कनक ने तारा को आकर बताया कि पुरी ने कनक को तलाक का नोटिस दे दिया है। तारा ने उसे बधाई दी। डाक्टर ने भी कनक को बधाई दी। डाक्टर तारा को चिन्ता से घुलते देख बहुत परेशान थे। तारा को बुखार रहने लगा था।

चुनाव समाप्त हो गए थे। जालन्धर में सूद जी के वोट गिने जा रहे थे। सब उत्सुकता से परिणाम की प्रतीक्षा कर रहे थे। परस्पर विरोधी अनुमान लगाए जा रहे थे, शर्तें लग रही थीं। गिल समाचार एजेन्सी के दफ्तर में मौजूद था। टेलीप्रिन्टर पर चुनाव का परिणाम आ गया। लोग सुनकर उछल पड़े। 'इन्कलाब जिन्दाबाद', 'तानाशाही मुर्दाबाद' के नारे लगने लगे। सूद जी चुनाव हार गए थे। गिल फौरन पाँच रुपए की मिठाई खरीद, टैक्सी ले सीधा डाक्टर नाथ के यहाँ जा पहुँचा। नाथ ने उसे खिला देख पूछ लिया—'तुम्हें खबर मिल गई' ? तारा भी आ गई। दोनों बड़े प्रसन्न थे। गिल को आश्चर्य हुआ कि इन्हें खबर पहले ही कैसे मिल गई। तारा ने पूछा— क्या खबर ?' गिल ने कहा—'पहले आप बताइए।' नाथ ने बताया कि उन दोनों को दोष मुक्त कर दिया गया है। गिल उछल पड़ा। उसने दोनों को बधाई दी। उसने कहा कि मुँह मीठा करायें तो वह भी एक खबर लाया है। और खबर यह है कि सूद जी सत्रह हजार वोटों से हार गये हैं। तारा ने विस्मय प्रकट किया। डाक्टर प्राण नाथ सहसा गम्भीर हो गए और गिल से बोले—"गिल, अब तो विश्वास करोगे, जनता निर्जीव नहीं है। जनता सदा मूक भी नहीं रहती। 'देश का भविष्य' नेताओं और मंत्रियों की मुट्ठी में नहीं है, देश की जनता के ही हाथ में है।"

यशपाल के 'झूठा सच' का यही संक्षिप्त कथानक है।

आलोचना भाग

प्रश्न १—कथा-संगठन की दृष्टि से 'झूठा सच' उपन्यास की विवेचना कीजिए।

प्रश्न २—" 'झूठा सच' की कथा पूर्ण संगठित और व्यवस्थित है। उपन्यास का वृहत्काय कलेवर तथा विषय की व्यापकता को देखकर कथानक के बिखराव की सम्भावना हो सकती थी, पर यशपाल की कुशल लेखनी कथानक की चुस्ती में किसी प्रकार की कमी नहीं आने देती।"--विवेचन कीजिए।

प्रश्न ३—" 'झूठा सच' की कथावस्तु एक सत्य और जीती जागती एतिहासिक घटना है।" —इस उपन्यास की कथावस्तु का विवेचन करते हुए बताइये कि इसमें वर्णित कथा काल्पनिक होते हुए भी वर्णित युग का सच्चा एतिहासिक चित्र प्रस्तुत कर देने में पूर्ण समर्थ है।

प्रश्न ४—"कथा संगठन की दृष्टि से 'झूठा सच' का प्रथम भाग, उसके दूसरे भाग की अपेक्षा अधिक सुगठित है।"—दोनों भागों की कथावस्तु का तुलनात्मक अध्ययन करते हुए उपर्युक्त कथन के सम्बन्ध में अपने विचार प्रकट कीजिए।

प्रश्न ५—" 'झूठा सच' हिन्दी का एकमात्र ऐसा उपन्यास है जिसकी कथा-सीमा में स्वतंत्रता के बाद के भारतीय जीवन के विविध पक्षों और उसमें होने वाली संक्रान्तियों से संग्रथित भारतीय जीवन का समग्र चित्र अपनी सम्पूर्णता से साथ मूर्तिमान हो उठता है।"— विवेचन कीजिए।

उत्तर--

मूल वृहत्काय रूप

हमारा विवेच्य यशपाल का 'झूठा सच' उपन्यास उनके लगभग चौदह-पन्द्रह सौ पृष्ठों के वृहत्काय उपन्यास 'झूठा सच' का संक्षिप्त छात्रोपयोगी संस्करण हैं। यह स्वाभाविक था कि इतने बड़े विशाल उपन्यास को संक्षिप्त करने में उसकी कथा-वस्तु पूर्ण संगठित बना दी जाती। सम्भवतः यह संक्षिप्त छात्रोपयोगी संस्करण भी स्वयं यशपाल द्वारा ही प्रस्तुत किया गया है। मूल रूप में

तथा अपने इस संक्षिप्त रूप में—दोनों ही में यह उपन्यास दो भागों में विभाजित है। पहला भाग है—'वतन और देश', तथा दूसरा भाग है—'देश का भविष्य'। प्रस्तुत संस्करण में पहले भाग में २१७ और दूसरे भाग में १९१ पृष्ठ हैं। इस प्रकार दोनों ही भागों में लगभग आधी-आधी कथा कही गई है। अपने मूल में भी कथा के पृष्ठों का लगभग यही अनुपात रहा है।

कथा के दो भाग

जैसा कि हम पीछे कह आए हैं कि इस उपन्यास की कथा दो भागों में विभाजित कर लिखी गई है। पहले भाग 'वतन और देश' में कथा सन् १९४७ के जाड़ों से आरम्भ होती है। जाड़ों मे कथा के प्रधान पात्र जयदेव पुरी और तारा की दादी की मृत्यु लाहौर की 'भोला पांडे की गली' में स्थित जयदेव के पिता मास्टर रामलुभाया के घर हो जाती है। मास्टर जी के बड़े भाई बाबू रामज्वाया भी सपरिवार माँ के अन्तिम क्रिया-कर्म में भाग लेते हैं। इस प्रकार कथा के प्रधान पात्रों के परिवार के सारे सदस्यों का हमें आरम्भ में ही परिचय मिल जाता है। यहीं तारा के भावी पति सोमराज, शीलो, रतन आदि का भी प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष परिचय मिल जाता है। ये पात्र इस उपन्यास में आरम्भ से अन्त तक उपस्थित रहते हैं। कथा यद्यपि सन् १९४७ के आरम्भ में प्रारम्भ होती है परन्तु आगे चलकर उपन्यासकार जयदेव पुरी के सन्दर्भ में सन् १९४५ की भी कुछ घटनाओं का उल्लेख करता है, जब पुरी जेल से छूटकर आता है। परन्तु दरअसल कथा का आरम्भ सन् १९४७ के आरम्भ से ही मानना चाहिए। १५ अगस्त, सन् १९४७ में देश का विभाजन भारत और पाकिस्तान—दो देशों के रूप में हो जाता है।

प्रथम भाग

प्रथम भाग में कथा सन् १९४७ के आरम्भ के दिनों से प्रारम्भ होकर सन् १९४७ के अन्त तक समाप्त हो जाती है। देश का विभाजन हो जाता है। लाहौर पाकिस्तान में चला जाता है। लाहौर तथा पश्चिमी पंजाब के हिन्दू और सिख अपना वतन छोड़, सब कुछ गँवा भारत में आए पूर्वी पंजाब के जालन्धर, अमृतसर तथा दिल्ली, नैनीताल, लखनऊ आदि नगरों में आ जाते हैं। इस भाग में विभाजन से पूर्व की सामाजिक और राजनीतिक स्थितियों के सन्दर्भ में विभिन्न प्रधान-अप्रधान पात्र विभिन्न रूपों में आकर कथा को आगे बढ़ाते हैं। यह प्रथम भाग की कथा का पूर्वार्द्ध है। इसमें

जयदेव-उर्मिला, जयदेव-कनक, तारा-असद, शीलो-रतन आदि के प्रेम-सम्बन्ध बनते-टूटते हैं। डाक्टर प्राणनाथ, पंडित गिरधारीलाल, नैयर, कान्ता आदि कथा के प्रधान पात्र इसी भाग में सामने आ जाते हैं। यह वह समय है जब पंजाब में राजनीतिक और साम्प्रदायिक तनाव का वातावरण छाया हुआ है। सारे पात्र उसी वातावरण में अपनी विभिन्न प्रतिक्रियायें व्यक्त करते, जीवन-यापन के साधन जुटाते और संघर्ष करते आगे बढ़ते रहते हैं। इसी समय में विभिन्न प्रेम-सम्बन्धों की स्थापना होती है, राजनीतिक बहसें होती हैं।

इसके उपरान्त पहले भाग की कथा का उत्तरार्द्ध आरम्भ होता । देश के विभाजन की घोषणा होते ही लाहौर में भयंकर राजनीतिक और साम्प्रदायिक तनाव की स्थिति छा जाती है। मुस्लिम लीग, कांग्रेस, कम्युनिस्ट, अकाली सब सक्रिय हो उठते हैं। छोटे-मोटे साम्प्रदायिक उपद्रव भी होने लगते हैं। कथा लाहौर में ही घूमती रहती है। गर्मियों में कथा नायर-परिवार के साथ कुछ समय के लिए नैनीताल और फिर कनक और जयदेव के साथ लखनऊ पहुँच जाती है। उधर पंजाब के दोनों भागों में भयंकर मार-काट, लूट और आगजनी होने लगती है। सारे बसे हुए परिवार और लोग अपने-अपने वतन से, शहर से, गाँव से, उखड़ कर दूसरे स्थानों पर शरण पाने के लिए मजबूर कर दिए जाते हैं। हिन्दू लाहौर से भागने लगते हैं। इसी भगदड़ में हमारे उपन्यास के पात्र भी बिखर जाते हैं। तारा के साथ कथा अपहृत हिन्दू नारियों की करुण-गाथा के रूप में उन्हें भारत में नए सीमान्त—वागा के पार भारत में पहुँचा कर थोड़ी देर के लिए विराम ले लेती है। प्रथम भाग के उत्तरार्द्ध की कथा यहीं आकर समाप्त हो जाती है।

इस भाग का नाम 'वतन और देश' रखा गया है। यह शीर्षक साभिप्राय और अर्थ-व्यंजक है। इसमें पंजाब के दोनों भागों के हिन्दू और मुसलमान अपने-अपने वतन को छोड़ने के लिए मजबूर हो जाते हैं। यहाँ 'वतन' से अभिप्राय जन्मस्थान और प्रधान-कार्यक्षेत्र से है। लाहौर के हिन्दू अपने वतन लाहौर से उखड़कर अपने नए देश भारत में शरण लेते हैं। यहाँ उनका अपना कोई वतन नहीं रह जाता। सारा भारत उनका वतन और देश बन जाता है। पंजाबी हिन्दू इस नए देश भारत के विभिन्न नगरों में शरण पा जाते हैं।

दूसरा भाग

कथा का दूसरा भाग 'देश का भविष्य' है। इस भाग की कथा

जयदेव पुरी के नैनीताल से लाहौर जाते हुए जालन्धर में अटक जाने से आरम्भ होती है। असंख्य हिन्दू शरणार्थी पाकिस्तान से भगाए जाकर पंजाब के नगरों में एकत्र हो रहे हैं। शरणार्थी-कैम्प खुल गए हैं और गरीब और अमीर—सभी परिवारों के लोग चारों ओर आश्रय और भोजन पाने के लिए भटकते फिर रहे हैं। यहीं कथा के रंगमंच पर सूद जी का प्रवेश होता है और उनके साथ ही कथा राजनीति की ओर मुड़ने लगती है। धीरे-धीरे तारा, जयदेव, पंडित गिरधारीलाल, नैयर, उनके परिवार, डाक्टर प्राणनाथ आदि प्रमुख पात्र नए स्थानों में जम जाते हैं। इस भाग की कथा पहले जालन्धर में और फिर प्रधान रूप से दिल्ली में चक्कर काटती रहती है। कुछ बिछुड़े हुए लोग पुनः मिल जाते हैं और कथा अनेक नाटकीय मोड़ लेती हुई धीरे-धीरे आगे बढ़ती रहती है। लखनऊ में गिल और कनक का, जालन्धर में जयदेव और उर्मिला तथा कनक का, दिल्ली में तारा और डाक्टर प्राणनाथ का, शीलो और रतन का मिलन होता है। कुछ परिवार टूटते हैं, कुछ पुनः मिल जाते हैं। यहीं कथा-मंच पर अनेक नए पात्रों का प्रवेश होता है। रावत, डे आदि उच्च सरकारी पदाधिकारी, मिस्टर और मिसेज अगरवाला जैसे पूँजीपति कांग्रेसी, नरोत्तम जैसे विद्रोही, मिस मर्सी, चड्ढा, माथुर आदि विभिन्न राजनीतिक विचारों वाले लोग सामने आते हैं। अनेक छोटी-बड़ी सामाजिक और राजनीतिक घटनाएँ घटती हैं। गांधीजी का आमरण अनशन, उनकी प्रार्थना सभा में पहले बम फेंका जाना और फिर उनकी हत्या हो जाना आदि घटनाएँ सारे देश को हिला देती हैं। उच्च वर्ग के जीवन के अनेक चित्र उदय होते हैं। यहाँ तक, उखड़ कर जमे हुए पात्र धीरे-धीरे अपनी नई स्थिति को मजबूत बनाते रहते हैं। वातावरण राजनीति-प्रधान सा रहता है।

तीन महत्त्पूर्ण घटनाएँ

इस कथा के अन्तिम भाग में तीन महत्त्वपूर्ण घटनाएँ घटती हैं। पंजाब में अपनी राजनीतिक स्थिति मजबूत बना लेने के उपरान्त सूद जी बहुत प्रभावशाली राजनीतिक व्यक्ति बन जाते हैं। पुरी उनका आश्रय और संरक्षण पा महत्त्व प्राप्त करने लगता है। कनक और जयदेव का विवाह हो जाता है, और दोनों आनन्द के साथ रहने लगते हैं। उधर तारा अच्छी सरकारी नौकरी पाकर जम जाती है परन्तु उसके घर और ससुराल वालों को यही विश्वास है कि वह मर गई है। इसके उपरान्त वे

तीन महत्त्वपूर्ण घटनाएँ घटती हैं। आर्थिक नीति को लेकर डाक्टर प्राणनाथ और सूदजी में खटक जाती है। जयदेव और कनक में मनमुटाव हो जाता है और कनक अपने पिता के पास दिल्ली में नौकरी करने लगती है। कनक द्वारा आग्रह करने पर भी जयदेव उसे तलाक नहीं देता। इधर गिल और कनक में पारस्परिक अनुराग पनपने लगता है। एक बार संयोगवश सोमराज और तारा का सामना हो जाता है। वह तारा को पहचान लेता है परन्तु चुपचाप चला जाता है।

इसके उपरान्त ही वह तीसरी महत्त्वपूर्ण घटना घटती है जो कथा के प्रमुख पात्रों की व्यक्तिगत उलझनों को और अधिक उलझाती हुई बड़े नाटकीय रूप में सारी उलझनों को सुलझाती हुई समाप्त हो जाती है। और इसके साथ ही उपन्यास की कथा भी पूर्ण विराम ले लेती है। वह घटना इस प्रकार घटती है—तारा और डाक्टर प्राणनाथ का विवाह हो जाता है। इस विवाह का सचित्र समाचार अखबारों में छपता है। डाक्टर प्रभुदयाल इस समाचार को सूद जी को सुनाते हुए यह भी बता देता है कि तारा का विवाह सोमराज साहनी के साथ हो चुका था। सूद जी कहते हैं कि पति के जीवित रहते, बिना तलाक लिए, हिन्दू स्त्री का पुनर्विवाह अवैध है। यह डाक्टर से बदला लेने का अच्छा मौका है। वह अपने राजनीतिक प्रभाव का प्रयोग कर डाक्टर और तारा—दोनों को उनके विभागों की तरफ से नोटिस दिलवा देते हैं। जयदेव और सोमराज उनके गवाह बन जाते हैं। डाक्टर और तारा घबरा जाते हैं। परन्तु वकील नैयर उनकी सहायता करता है। वह कनक को इन दोनों की तरफ से गवाह बनाता है। कनक जयदेव के विरुद्ध गवाही देती है। नैयर यह सिद्ध कर देता है कि इन दोनों को राजनीतिक दुश्मनी का शिकार बनाया जा रहा है। इससे भयभीत हो जयदेव कनक को तलाक देने को सहमत हो जाता है और सूद जी सन् १९५७ के आम चुनाव में सत्रह हजार वोटों से हार जाते हैं। डाक्टर और तारा दोषमुक्त हो जाते हैं तथा कनक और गिल के दाम्पत्य-सूत्र में बँधने का रास्ता साफ हो जाता है। और इसी के साथ उपन्यास की कथा भी समाप्त हो जाती है।

राजनीति-प्रधान

कथा का दूसरा भाग एक प्रकार से राजनीति-प्रधान रहा है। देश आजाद हो जाता है। कांग्रेस और उसके उच्च नेता देश के नए शासक बन

जाते हैं । इसलिए कांग्रेसियों में अधिकार और पद पाने की स्पर्द्धा आरम्भ हो जाती है । सूद जी कांग्रेस के इसी वर्ग के प्रतिनिधि हैं । नया शासन पूँजीपतियों का सहयोग लेता है । बदले में पूँजीपति व्यापारिक स्वतंत्रता और स्वच्छंदता चाहते हैं । इसी कारण सूद जी डाक्टर मालिस और डाक्टर प्राणनाथ की सरकारी उत्पादन को प्रमुखता देने वाली आर्थिक योजना का विरोध करते हैं । दिल्ली में कांग्रेसी नेताओं और सरकारी उच्चाधिकारियों का पूँजीपतियों के यहाँ जमघट रहता है । कांग्रेसी प्रधान-मंत्री उपदेश देते हैं, ऊँची-ऊँची बातें करते हैं । गांधीजी न्याय का मार्ग अपना राजनीतिक अनशन करते हैं । जनता का अधिकांश वर्ग, विशेष रूप से शरणार्थी गांधीजी और कांग्रेसी नेताओं का विरोध करते हैं । कम्युनिस्ट हिन्दू-मुस्लिम एकता का समर्थन करते हुए कांग्रेसी नीतियों का विरोध और आलोचना करते हैं । तारा और डाक्टर का मामला राजनीतिक भ्रष्टाचार का रूप प्रस्तुत करता है । जनता पहले से अधिक जागरूक बन चुकी है । परिणाम सूद जी की हार के रूप में सामने आता है । इस दूसरे भाग में विस्थापित स्थापित होने का प्रयत्न करते हैं । देश का भविष्य कांग्रेस की नीतियों और जनता की शक्ति पर निर्भर करता है । कांग्रेस और जनता में टक्कर होती है जिसमें सूद जी की हार के रूप में कांग्रेस पराजित हो जाती है । अतः यह प्रश्न उठ खड़ा होता है कि देश का भविष्य कांग्रेस के हाथ में है या पूँजीपतियों के पिट्ठू कांग्रेसी नेताओं के हाथ में ?

इस प्रश्न का निर्धारण करने के लिए ही इस भाग का शीर्षक—'देश का भविष्य' रखा गया है । और उपन्यासकार के अनुसार इस प्रश्न का उत्तर यह है कि देश का भविष्य जनता के हाथ में है, न कि पूँजीपतियों के सूद जी जैसे काँग्रेसी पिट्ठूओं के हाथ में ।

कथा-संगठन का कौशल

इस उपन्यास में असंख्य गौण और महत्वपूर्ण घटनाएँ और पात्र हैं । परिस्थितियों के परिवर्तन के साथ पात्रों के जीवन में उतार-चढ़ाव के परिवर्तन होते रहते हैं । इसी कारण सुधी आलोचकों ने इसे पात्र-प्रधान उपन्यास न मानकर परिस्थिति-प्रधान माना है । परिस्थितियाँ समाज के सम्पूर्ण रूप को, उसकी समस्याओं को अपने साथ समेट कर चलती हैं । उपन्यासकार ने अपनी

कल्पना द्वारा एक कथा गढ़, उसे इन परिस्थितियों के भीतर घुमाया और आगे बढ़ाया है। इस उपन्यास की रचना में यशपाल का प्रमुख उद्देश्य यह दिखाना रहा है कि देश के एक भाग की जनता को किन परिस्थितियों से बाध्य हो अपने वतन से उखड़, बसने के लिए एक नए देश में जाना पड़ता है और फिर वहाँ किन परिस्थितियों में उसे जमने और आगे बढ़ने का अथक् प्रयत्न करना पड़ता है। इसी कारण यशपाल रुक-रुक कर उन परिस्थितियों का सम्यक् विवरण देते चलते हैं। फिर उनके पात्र उन परिस्थितियों से प्रभावित हो अपनी प्रतिक्रियाएँ व्यक्त करते आगे बढ़ते रहते हैं। इन पात्र, घटनाओं और परिस्थितियों में परस्पर प्रगाढ़ सम्बन्ध रहता है। पात्र या घटनाएँ परिस्थितियों से कहीं भी असम्पृक्त या अछूते नहीं रहते। इनकी परस्पर अटूट कड़ी को जोड़ने में ही यशपाल के कथा-संगठन का अद्भुत कौशल दिखाई पड़ता है। प्रस्तुत संक्षिप्त छात्रोपयोगी संस्करण में तो कथा-संगठन अद्भुत सफल रहा ही है, इसके वृहद् संस्करण में भी हमें उसमें कहीं भी शिथिलता नहीं दिखाई पड़ती।

इन दोनों संस्करणों में अन्तर केवल इतना ही रहा है कि वृहद् संस्करण में परिस्थितियों, पंजाब और दिल्ली आदि में घटी घटनाओं आदि का अधिक विस्तृत वर्णन किया गया है। इसी कारण उसमें कहीं-कहीं शिथिलता सी भले ही दिखाई देती हो, किन्तु उसमें जीवन को जिस व्यापक परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत किया गया है, उसे देखते हुए ऐसा होना स्वाभाविक ही है। इस सम्बन्ध में हमारी धारणा एक और है। राजनीति में अरुचि और केवल कथा में ही रुचि रखने वाले पाठकों को, और विशेष रूप से उन पाठकों को जो कम्युनिस्ट और कम्युनिज्म के नाम या उल्लेख मात्र से बिदक उठते हैं, लम्बे-लम्बे राजनीतिक विवरण उबा देने वाले सिद्ध हो सकते हैं। परन्तु इस सम्बन्ध में हमें यह ध्यान रखना चाहिए कि यह उपन्यास मात्र एक रोचक कथा कहने वाला न होकर, वर्णित युग का एक इतिहास भी बन गया है। कुछ आलोचकों का कहना है कि यदि सन् १९२० से लेकर १९६० तक के भारतीय इतिहास का, इतिहास के सच्चे अर्थों में अध्ययन करना हो, जन-जीवन को देखना और समझना हो तो प्रेमचन्द के 'गोदान' और यशपाल के 'झूठा सच' उपन्यासों को क्रमानुसार पढ़ना चाहिए। 'झूठा सच' में सामाजिक और राजनीतिक चित्रण की प्रधानता रही है। एक समाज एक स्थान से उखड़ कर दूसरे स्थान पर जमने का प्रयत्न

करता है । इस उखड़न में उसकी पुरानी मान्यताएँ, जीवन मूल्य बदलते हैं और नया रूप धारण कर उभरते हैं । देश की आजादी के बाद राजनीति का भी रूप बदलने लगता है । विभिन्न राजनीतिक विचारधाराओं में टकराव और संघर्ष होना आरम्भ हो जाता है । जिस उपन्यास में जीवन को इतने विशाल और व्यापक परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत किया गया हो, वह यदि साधारण स्तर के पाठक को अधिक रुचिकर न प्रतीत हो, तो इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है । सामाजिक और राजनीतिक दृष्टि से जागरूक पाठकों में यह उपन्यास पर्याप्त लोकप्रिय है ।

दोनों भागों की कथा

कुछ आलोचकों का यह कहना है कि इस उपन्यास के प्रथम भाग की कथा दूसरे भाग की कथा की अपेक्षा अधिक सन्तुलित और संगठित है । इस सम्बन्ध में चन्द्रगुप्त विद्यालंकार का मत द्रष्टव्य है । वह कहते हैं कि—"....'झूठा सच' का पहला भाग पढ़ कर इस उपन्यास के सम्बन्ध में मैंने जितनी ऊँची धारणाएँ बनाई थीं, वह दूसरे भाग में पूर्ण तो नहीं हो पाईं, यद्यपि फिर भी निराशा नहीं हुई । यदि इस भाग का भी कम-से-कम वही स्तर होता, जो प्रथम भाग का था, तो मैं इसे निस्सन्देह हिन्दी का अब तक का सर्वश्रेष्ठ उपन्यास मानता । पर वैसा नहीं हो पाया ।"

हम पीछे कह आए हैं कि इस उपन्यास के पहले भाग में जीवन संघर्ष में जुटा हुआ एक समाज अपने वतन से उखाड़ दिया जाता है । इस उखड़ने में भयानक घटनाएँ घटती हैं । संघर्ष होते हैं, भगदड़ मचती है । इसलिए इसमें सामाजिक और साम्प्रदायिक हलचलों को अधिक स्थान मिला है । यद्यपि राजनीति भी पर्याप्त रूप से सक्रिय रही है, क्योंकि देश का विभाजन साम्प्रदायिक राजनीति के आधार पर होता है । इसलिए इस भाग में पर्याप्त रोमांचक घटनाएँ घटती हैं, जिनके कारण पाठकों को यह भाग अधिक रोचक लगता है । इसके विपरीत दूसरे भाग में वह उखड़ा हुआ समाज नए स्थानों और नए वातावरण में जमने का प्रयत्न करता है । और राजनीति के कर्णधारों से इस जमने में सहायता पाने की अपेक्षा करता आगे बढ़ता है । इसी कारण दूसरे भाग में रोमांच का अपेक्षाकृत अभाव दिखाई पड़ता है । दूसरे भाग की कथा के प्रधान क्षेत्र जालन्धर और दिल्ली रहते हैं । और दोनों

ही स्थानों पर राजनीतिज्ञ प्रबल हैं। इसलिए यह भाग राजनीति-प्रधान हो उठता है। और राजनीति तथा राजनीतिक दाँव-पेचों में सामान्य पाठक अधिक रुचि नहीं लेता। इसी कारण कुछ आलोचकों तथा पाठकों को दूसरा भाग अधिक पसन्द नहीं आया है।

अन्य आक्षेप

इन दोनों भागों के कथा-संगठन को लेकर कुछ लोगों ने यह आक्षेप भी लगाया है कि इन दोनों भागों में वर्णित कथा परस्पर प्रगाढ़ रूप से सम्बद्ध नहीं है। दूसरे भाग की कथा को एक स्वतन्त्र उपन्यास माना जा सकता है। परन्तु ध्यान से देखने पर दोनों भागों की कथाएँ परस्पर प्रगाढ़ रूप से सम्बद्ध दिखाई पड़ती हैं। दोनों भागों में उपन्यास के प्रधान पात्र ही कार्यरत रहते हैं। जयदेव पुरी, कनक, तारा, नैयर, डाक्टर प्राणनाथ, पंडित गिरधारीलाल, रतन, शीलो सोमराज आदि उपन्यास के आरम्भ से लेकर अन्त तक मौजूद और सक्रिय रहते हैं। दूसरे भाग की उनकी कथा पहले भाग की कथा से गहरे रूप से प्रभावित रहती है। पहले भाग को पढ़े विना दूसरे भाग की कथा को समझ लेना दुष्कर है। अतः यह कहना अनगल है कि दोनों भागों की कथाएं दो स्वतंत्र उपन्यासों सी प्रतीत होती है।

एक सज्जन ने एक दूसरा आक्षेप लगाया है। उन्होंने लिखा है कि—"प्रथम भाग के अधिकांश पात्र (तारा, जयदेवपुरी, कनक, महेन्द्र नैयर, उर्मिला, डा० प्राणनाथ आदि), जो आरम्भ में किसी न किसी वर्ग का प्रतिनिधित्व करते थे, द्वितीय भाग में प्रतिनिधित्व का परिधान त्याग, अपनी व्यक्तिगत महत्त्वाकांक्षाओं, कुंठाओं और स्वार्थों की तुष्टि में संलग्न हो जाते हैं।" ऐसे आलोचक यदि ध्यान से इन पात्रों के चरित्र का अध्ययन करते तो उन्हें इन पात्रों में आगे चलकर होने वाले परिवर्तन के बीज प्रारम्भ में ही दिखाई पड़ जाते। विषम परिस्थितियाँ मनुष्य को नया मार्ग अपनाने के लिए बाध्य कर देती हैं। वही इस उपन्यास के द्वितीय भाग में होता है। परन्तु फ्रायडीय मनोविज्ञान के प्रेमियों की दृष्टि वहाँ तक नहीं पहुँच पाती। अस्तु,

समष्टि रूप से इस उपन्यास की कथावस्तु पूर्णतः संगठित और संतुलित है। उपन्यासकार ने जगह-जगह विभिन्न प्रकार की परिस्थितियों के विस्तृत विवरण दिए हैं और फिर उन परिस्थितियों में पात्रों को सक्रिय होता हुआ

दिखाया है। इसलिए परिस्थितियाँ, पात्र और घटनाएँ परस्पर प्रगाढ़ रूप से सम्बद्ध रहते हुए आगे बढ़ते रहते हैं। कथानक में रोचकता उत्पन्न करने के लिए अनेक नाटकीय परिस्थितियों की योजना की गई है, जो कथा में एक अप्रत्याशित सा मोड़ उत्पन्न कर दती हैं और भावी घटनाओं की भूमिका बांध उन्हें प्रभावित करती रहती हैं। जैसे, जयदेव और उर्मिला के सोते समय कनक का वहाँ अकस्मात् जा पहुँचना, सूद जी की अप्रत्याशित हार आदि। कथा में पात्रों के माध्यम से सामाजिक रूढ़ियों, मान्यताओं का एक वर्ग द्वारा पालन और दूसरे वर्ग द्वारा विरोध पुरानी नई पीढ़ियों के पारस्परिक संघर्ष के सुन्दर रूप प्रस्तुत करते हैं। प्रेम-प्रसंगों द्वारा रोचकता आ गई है। ये प्रेम-प्रसंग भी नितान्त भावुकता पर आधारित न रह कर भौतिक और यथार्थ अधिक रहते हैं। सारे उपन्यास में प्रारम्भ से अन्त तक एक संघर्ष भरा तनाव से ओतप्रोत वातावरण छाया रहता है। इसी तनाव भरे वातावरण में पात्र आते और घटनाएँ घटती रहती हैं। पात्रों और घटनाओं का आरम्भ से अन्त तक परस्पर घनिष्ठ सम्बन्ध रहता है। प्रथम भाग के आरम्भ में आई 'भोला पांधे की गली' की पूरणदेई और उसकी लड़की सीता दूसरे भाग में पुनः तारा से जा मिलती है। शीलो और रतन के साथ भी यही होता है। यह कुछ उदाहरण इस बात के प्रमाण हैं कि उपन्यासकार उपन्यास के साधारण-से-साधारण पात्र के प्रति कितना चौकस और चौकन्ना रहा है। पहले भाग के लगभग सभी जीवित बचे पात्र हमें दूसरे भाग में बदली हुई परिस्थितियों में मिल जाते हैं। उनके चरित्रों में भी हमें कोई विशेष परिवर्तन नहीं दिखाई पड़ता। यह सब कुछ यशपाल के अद्भुत कुशल कथा-संगठन द्वारा ही सम्भव हुआ है। अतः कथा-सगठन की दृष्टि से इस उपन्यास को पूर्ण सफल, संगठित और सन्तुलित माना जा सकता है। यशपाल की कुशल लेखनी कथानक की चुस्ती और संगठन में किसी भी प्रकार की शिथिलता नहीं आने देती।

एक सत्य और जीती-जागती ऐतिहासिक घटना

इस उपन्यास के प्रमुख पात्र और उनसे सम्बन्धित घटनाएँ नितान्त काल्पनिक हैं। इस सम्बन्ध में स्वयं यशपाल का वक्तव्य द्रष्टव्य है—

" 'झूठा सच' के दोनों भागों—'वतन और देश' और 'देश का भविष्य' में देश के सामयिक और राजनैतिक वातावरण को यथासम्भव ऐतिहासिक

यथार्थ के रूप में चित्रित करने का प्रयत्न किया गया है। उपन्यास के वातावरण को ऐतिहासिक यथार्थ का रूप देने और विश्वसनीय बना सकने के लिए कुछ ऐतिहासिक व्यक्तियों के नाम भी आ गए हैं, परन्तु उपन्यास में वे ऐतिहासिक व्यक्ति नहीं, उपन्यास के पात्र हैं। कथानक में कुछ ऐतिहासिक घटनाएँ अथवा प्रसंग अवश्य हैं, परन्तु सम्पूर्ण कथानक कल्पना के आधार पर उपन्यास है, इतिहास नहीं है। उपन्यास के सभी पात्र—तारा, जयदेव, कनक, गिल, डाक्टर नाथ, नैयर, सूद जी, सोमराज, रावत, ईसाक, असद और प्रधानमन्त्री भी काल्पनिक पात्र हैं।"

यशपाल के उपर्युक्त वक्तव्य से यह स्पष्ट हो जाता है कि इस उपन्यास के सभी प्रमुख और गौण पात्र नितान्त काल्पनिक हैं। उनकी कथा भी उपन्यासकार की कल्पना की उपज है। परन्तु उसने यह कथा एक ऐसी वास्तविक घटना के आधार पर गढ़ी है जो वास्तविक है, ऐतिहासिक है। वह घटना है भारत की आजादी के साथ ही उसका दो खण्डों, दो देशों—भारत और पाकिस्तान में विभाजित हो जाना। उपन्यासकार ने आरम्भ में इस विभाजन की सामाजिक और राजनीतिक पृष्ठभूमि का ऐतिहासिक तथ्यों के आधार पर निर्माण किया है। विभाजन से पूर्व पंजाब में युनियनिस्ट पार्टी के खिजर हयात खाँ का मन्त्रिमण्डल होना, फिर उसका त्याग पत्र देना और सूबे में गवर्नर का शासन होना, विभाजन से पूर्व और बाद वहाँ भयकर साम्प्रदायिक दगों का होना आदि सारी बातें और घटनाएँ ऐतिहासिक हैं। काँग्रेसी डाक्टर गोपीचन्द भार्गव और अकाली मास्टर तारासिह, जिन्होंने इस अवसर पर प्रमुख भूमिकाएँ निभाई हैं, ऐतिहासिक व्यक्ति हैं। विभाजन के समय हिन्दुओं का पाकिस्तान से भारत को और मुसलमानों का भारत से पाकिस्तान को अपना सब कुछ खोकर पलायन करना, स्त्रियों को भगाया और बेचा जाना आदि सारी घटनाएँ सच्ची और ऐतिहासिक हैं।

विभाजन के उपरान्त शरणार्थियों का लाखों की संख्या में भारत के नगरों में आना, सरकार और जनता द्वारा उनके लिए शरणार्थी कैम्पों की स्थापना करना, धीरे-धीरे शरणार्थियों का नए स्थानों पर जमते जाना, फिर सरकार द्वारा शरणार्थी कैम्पों को समाप्त कर 'देने की घोषणा करना, शरणार्थियों में असन्तोष और विद्रोह का फूटना, गांधीजी द्वारा पाकिस्तान को

पचपन करोड़ रुपए देने के लिए सरकार को बाध्य करने के लिए तथा दिल्ली और भारत में जनता और सरकार द्वारा मुसलमानों की सुरक्षा का आश्वासन प्राप्त करने के लिए आमरण अनशन करना, सरकार और जनता का उनके सामने झुकना, उनकी सभा में बम का फेंका जाना और कुछ दिनों बाद एक हिन्दू द्वारा उनकी हत्या कर दिया जाना, देश का शोक में डूब जाना और फिर बड़े समारोह और शान-शौकत के साथ उनकी शव-यात्रा निकाला जाना आदि सारी घटनाएँ सच्ची और ऐतिहासिक हैं। इसके उपरान्त पहली और दूसरी पंचवर्षीय योजना की रूपरेखा बनाना, दूसरी पंचवर्षीय योजना में सरकार द्वारा राष्ट्रीय उत्पादन को सरकारी नियन्त्रण में स्थापित करना तथा देश के पूँजीवादी वर्ग और उसके समर्थक कांग्रेसी नेताओं द्वारा उस योजना का अप्रत्यक्ष-प्रत्यक्ष विरोध किया जाना भी ऐतिहासिक ही है।

इस प्रकार इस उपन्यास की कथा का मूल ढाँचा ऐतिहासिक व्यक्तियों और ऐतिहासिक घटनाओं पर आधारित रहा है। उपन्यासकार का मूल उद्देश्य इन्हीं का अंकन करना रहा है। परन्तु यदि उपन्यासकार एक इतिहासकार के समान इन ऐतिहासिक और यथार्थ परिस्थितियों, घटनाओं, व्यक्तियों आदि का वर्णन कर देता तो यह ग्रन्थ एक उपन्यास न रह कर इतिहास का ग्रन्थ बन जाता। उपन्यासकार और इतिहासकार बात लगभग एक ही कहते हैं, परन्तु उनके कहने के ढंग में मौलिक अन्तर रहता है। जिस बात को इतिहासकार, सीधी, स्पष्ट शैली में, बिना किसी लाग-लपेट या कल्पना के तथ्य रूप में प्रस्तुत कर देता है, उपन्यासकार उसी बात को अपनी उर्वर कल्पना द्वारा अत्यन्त मनोरंजक, आकर्षक, सुन्दर और रोचक रूप में प्रस्तुत करने का प्रयत्न करता है। वह इतिहासकार द्वारा वर्णित तथ्यों को एक कल्पित कथा का सुन्दर आवरण पहना कर प्रस्तुत करता है। इसीलिए उपन्यास के माध्यम से कही गई इतिहास की बातें अधिक प्रभावित करती हैं।

हमने पीछे इस उपन्यास में पाई जाने वाली जिन घटनाओं का उल्लेख किया है, वे उस काल से सम्बन्धित किसी भी इतिहास-ग्रंथ में मिल जायेंगी। परन्तु वे पढ़ने में न तो उतनी रोचक लगेंगी और न उतना प्रभावित ही कर पायेंगी, जितना कि इस उपन्यास में पढ़ कर रोचक लगती और प्रभावित करती

हैं। उन्हें रोचक और प्रभावशाली बनाने के लिए यशपाल ने उन्हें एक रोचक, सुगठित कथा-सूत्र में पिरो कर प्रस्तुत किया है। जयदेव पुरी, कनक, तारा, नैयर, डाक्टर प्राणनाथ, शीलो, रतन, सूद जी, पंडित गिरधारी लाल, उर्मिला, नरोत्तम, मिस्टर और मिसेज अगरवाला, रावत, गिल, असद, चड्ढा, माथुर, आदि की कथाएँ उपर्युक्त ऐतिहासिक परिस्थितियों के मध्य जन्म लेती, विकसित होती और चरम सीमा पर पहुँच कर समाप्त तो जाती हैं। हम पीछे कह आए हैं कि यह उपन्यास परिस्थिति-प्रधान है। इसमें भारतीय इतिहास के सन् १९४७ से लेकर १९५७ तक के इतिहास की विभिन्न परिवर्तित होती हुई परिस्थितियों का यथार्थ अंकन किया गया है। इस उपन्यास के विभिन्न पात्र उन्हीं परिस्थितियों से प्रभावित हो उनके प्रति अपनी अनुकूल-प्रतिकूल प्रतिक्रियायें प्रकट करते आगे बढ़ते रहते हैं। इसलिए इस उपन्यास की कथा का मूलाधर एक सत्य और जीती-जागती ऐतिहासिक घटना रही है। इसमें वर्णित युग का ऐतिहासिक यथार्थ अपने सम्पूर्ण परिवेश के साथ उजागर हो उठा है।

कल्पित कथा का एक विशिष्ट महत्व

इस उपन्यास में कल्पित कथा का अपना एक विशिष्ट महत्त्व रहा है। इतिहास में इस उपन्यास में वर्णित परिस्थितियों का स्थूल वर्णन तो मिल जाता है, परन्तु यह नहीं मिलता कि उन विषम परिस्थितियों में जनता की क्या दशा रही थी और जनता ने उनके प्रति अपनी कैसी प्रतिक्रियायें प्रकट की थीं। एक विशाल जन-समूह का लाखों की तादाद में एक स्थान से उखड़ना और अपना सब कुछ खोकर एक नए स्थान में, नई परिस्थितियों में पहुँच अपने अस्तित्व और भविष्य की सुरक्षा के लिये संघर्ष करना—यह सब कुछ इतिहास में नहीं मिलता, यद्यपि यह ऐतिहासिक यथार्थ रहा है। नई परिस्थितियों में उस जन-समूह की पुरानी संस्कृति, रूढ़ियाँ और मान्यताएँ अपना पुराना रूप खो धीरे-धीरे नई परिस्थितियों के अनुरूप नया रूप धारण करती जाती हैं। इस सारे परिवर्तन में जनता निहित स्वार्थों के विरुद्ध जिस प्रकार एकजुट होकर संघर्ष करती हुई अपने को स्थापित करती है, यही सब कुछ दिखाना इस उपन्यास का एक प्रधान उद्देश्य रहा है। यशपाल ने अपने इस उपन्यास में कल्पित कथा और उसके कल्पित पात्रों के माध्यम से जन-समाज की इसी संघर्ष भरी कहानी को कहा है, जो ऐतिहासिक यथार्थ का जीता-जागता रूप है। अतः इस बात

को निस्संकोच भाव से कहा जा सकता है कि इस उपन्यास में एक सत्य और जीती-जागती ऐतिहासिक घटना का ऐतिहासिक यथार्थ के सम्पूर्ण परिवेश का साथ अंकन किया गया है ।

संक्रान्तियों से संग्रथित भारतीय जीवन का समग्र चित्र

डाक्टर रामविलास शर्मा के अनुसार—"यह उपन्यास हमारे सामाजिक जीवन का एक विशद चित्र उपस्थित करता है ।" इस उपन्यास की कथा का क्षेत्र वर्णित लोगों के सारे जीवन को अपने भीतर समेट लेता है। विभाजन से पूर्व और उसके उपरान्त पंजाब में जैसी परिस्थतियाँ थी, वह लगभग सम्पूर्ण उत्तर भारत में एक सी थीं। इस विभाजन से सारा उत्तर भारत भयानक रूप से प्रभावित हो उठा था। पंजाव से लेकर बंगाल तक—सारा उत्तर भारत बुरी तरह से आन्दोलित हो उठा था। पश्चिमी पंजाब और पूर्वी बंगाल, सिन्ध, पेशावर आदि से लाखों शरणार्थी भाग कर या भगाए जाकर उत्तर भारत के नगरों और देहातों में फैल गए थे। इस भयानक परिवर्तन के उस युग में और उस युग से पूर्व पंजाव के जन-जीवन की जैसी दशा थी, इस उपन्यास में उसी का विस्तृत और यथार्थ चित्रण हुआ है। इसीलिए इस उपन्यास में तत्कालीन जन-जीवन के सभी रूप––सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक—अपनी सम्पूर्ण सचाई के साथ उभर आए हैं।

परिवर्तन और क्रान्तियाँ, जो जीवन को गहरे और स्थायी रूप से प्रभावित करती हैं, एकाएक नहीं हो जाती। उनकी अपनी एक निश्चित पृष्ठभूमि होती है। भारत की स्वतंत्रता और उसके साथ ही उसके विभाजन की माँग, आजादी से बहुत वर्ष पहले से उठती चली आ रही थी। इसने देश में एक राजनीतिक और साम्प्रदायिक तनाव का वातावरण उत्पन्न कर रखा था। इस उपन्यास की कहानी उसी तनाव भरे वातावरण में प्रारम्भ होती है। यह एक ऐतिहासिक तथ्य है कि विशाल परिवर्तनों और क्रांतियों में सारी जनता खुलकर भाग नहीं लेती, यद्यपि उससे प्रभावित समाज का प्रत्येक वर्ग और व्यक्ति होता है। पंजाव की उस तनाव भरी स्थिति से नवयुवक विद्यार्थियों का एक वर्ग प्रभावित था। कुछ नवयुवक साम्यवादी विचारधारा से, कुछ हिन्दूवादी और मुस्लिम-विरोधी विचारधारा से तथा कुछ ढिलमिल कांग्रेसी विचारधारा से प्रभावित थे। असद, खन्ना, जयदेव, रतन आदि इन्हीं विभिन्न

विचारधाराओं का प्रतिनिधित्व करते हैं। लड़कियाँ भी इनके साथ सहयोग करती हैं। उधर सभी राजनीतिक दलों के नेताओं में उच्च स्तर पर परस्पर टकराव हो रहा था। हिन्दू और मुसलमानों के उच्च मध्यम वर्ग के नैयर और मिर्जा जैसे व्यक्ति इस राजनीतिक तनाव भरे वातावरण में उपेक्षा और तटस्थता का सा भाव रखते हुए भी अपनी जाति और सम्प्रदायगत भावनाओं से मुक्त नहीं थे।

इसके विपरीत सामान्य जनता की पुरानी पीढ़ी अपनी पुरानी मान्यताओं से चिपकी हुई थी। माता-पिता अपनी सन्तानों का विवाह तय करते थे। वे लोग अपने लड़की-लड़कों की तत्सम्बन्धी इच्छा या राय को कोई महत्त्व नहीं देते थे। अपनी बड़ी लड़की कान्ता का अंतरजातीय विवाह करने वाले पंडित गिरधारीलाल और उनके दामाद नैयर कनक और जयदेव के विवाह के इसलिए विरुद्ध थे कि जयदेव की सामाजिक और आर्थिक स्थिति उनसे भिन्न और निम्न स्तर की थी। उधर तारा के ताऊ और पिता एक सम्पन्न पिता के लफंगे पुत्र सोमराज के साथ तारा का विवाह करने के लिए उतावले हो रहे थे। सन् १९४७ की उन भयानक विषम परिस्थितियों में भी इन लोगों के कोई भी सामाजिक कार्य नहीं रुकते थे। जब लाहौर में भयानक साम्प्रदायिक दंगे और लूटमार हो रही थी, उसी समय तारा का विवाह कर दिया गया था। परन्तु एक बात अवश्य थी। उस स्थिति से समाज का निम्न मध्य वर्ग पीड़ित और असन्तुष्ट था मगर उसके विरुद्ध मुँह नहीं खोलता था। पुरानी पीढ़ी सब कुछ सहते हुए भी विद्रोह की बात नहीं करती थी परन्तु नवयुवा पीढ़ी में असंतोष और विद्रोह की भावना सुलग रही थी।

विभाजन के उपरांत पश्चिमी पंजाब और लाहौर के हिंदू और सिख अपना सब कुछ खोकर दिल्ली, पूर्वी पंजाब और उत्तर प्रदेश के विभिन्न नगरों में शरण पा गए थे। नई जगहों पर पहुँचकर भी उन लोगों की सामाजिक मान्यताओं में कोई विशेष अंतर नहीं आ पाया था। बंती को उसके ससुराल वाले इसलिए स्वीकार नहीं करते कि वह मुसलमानों की कैद में रह चुकी थी। परंतु समाज की नई पीढ़ी नए स्थानों में, नई परिस्थितियों में पहुँच कर भी हताश नहीं होती। वह निरन्तर संघर्ष करती हुई स्वयं को पुनः स्थापित करने और आगे बढ़ने में लगी रहती है। जयदेव, कनक, गिल, नैयर, तारा

आदि इसके उदाहरण हैं। सरकार, कांग्रेस और महात्मा गांधी की पाकिस्तान समर्थक नीति के कारण शरणार्थियों में असंतोष था। देश की नई आजादी के बाद काँग्रेसी नेताओं में सत्ता और पद का मोह बढ़ गया था। कम्युनिस्ट इस आजादी को आजादी नहीं मानते थे क्योंकि सामान्य जनता दुखी और शोषित थी। शासन पर पूँजीपतियों का प्रभाव था। सूद जी जैसे काँग्रेसी नेता उनके स्वार्थों का प्रतिनिधित्व करते थे। इससे सामान्य जनता में ऐसे लोगों के प्रति असन्तोष और विद्रोह की भावना पनप रही थी। और इसका एक शुभ परिणाम चुनाव में सूद जी की करारी हार के रूप में प्रकट हुआ था।

यशपाल ने अपने इस उपन्यास में उन दस वर्षों की इन्हीं परिस्थितियों और जनता के असन्तोष का चित्रण किया है। इसमें उन्होंने समाज के लगभग हर वर्ग की सामाजिक और राजनीतिक मान्यताओं, जीवन-मूल्यों, आस्था-आकांक्षाओं और संघर्षों का बड़ा यथार्थ और हृदयग्राही चित्रण किया है। इस चित्रण की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसमें उन्होंने आजादी से पहले और आजादी के बाद जन-सामान्य के जीवन में व्याप्त अनवरत सघर्ष, असन्तोष, और विद्रोह की भावना को बड़े कलात्मक और प्रभावशाली ढंग से उभारा और चित्रित किया है। आजादी से सामान्य जनता को बरबादी, शोषण और अन्याय के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं मिला था। इस उपन्यास के कथानक द्वारा यशपाल यही प्रदर्शित करना चाहते थे और वही उन्होंने किया भी है। इसलिए यह कहने में रंचमात्र भी अतिशयोक्ति नहीं है कि यशपाल ने अपने इस उपन्यास द्वारा जनता के उसी असन्तोष और विद्रोह को अभिव्यक्ति प्रदान की है। सामाजिक जीवन में व्याप्त यह असन्तोष और विद्रोह की भावना ही कालान्तर में अधिक बढ़ जाने पर जन-क्रान्ति के रूप में फूट पड़ती है। अतः यह निस्संकोच कहा जा सकता है कि इस उपन्यास की कथा सीमा में स्वतंत्रता के कुछ समय पूर्व और बाद के भारतीय जन-जीवन के विविध पक्षों और उसमें होने वाली संक्रान्तियों से संग्रथित भारतीय जीवन का समग्र चित्र अपनी सम्पूर्णता के साथ मूर्तिमान हो उठा है।

कथा-विकास की विभिन्न स्थितियाँ

ाकव्य-शास्त्र के आचार्यों ने उपन्यास की कथा-वस्तु के विकास की विभिन्न

स्थितियाँ मानी हैं, जिनमें से गुजरती हुई कथा अन्त में पूर्णता को प्राप्त होती है। ये स्थितियाँ हैं—आरम्भ, विकास, चरम स्थिति, उतार, और अन्त या उपसंहार। आरम्भ में उपन्यास इन्हीं को दृष्टि में रखकर लिखे जाते थे, परन्तु अब इनके निर्वाह के प्रति कोई विशेष ध्यान नहीं दिया जाता। फिर भी किसी भी कथा की तीन स्थितियाँ तो नितान्त स्वाभाविक होती ही हैं—आरम्भ, विकास, और अन्त। यशपाल के इस उपन्यास की सम्पूर्ण कथा दो भागों में विभाजित है। दोनों भागों में मूल कथा भिन्न-भिन्न रूपों और स्थितियों में विकास पाती और समाप्त होती है। कुछ लोगों ने इन दोनों भागों की कथाओं को स्वतत्र कथाएं माना है, परन्तु ऐसी बात है नहीं। पूरी कथा दो स्थितियों में विभाजित सी अवश्य है, परन्तु उसके मूल सूत्र अन्त तक परस्पर प्रगाढ़ रूप से आवद्ध रहे हैं। दोनों के प्रधान पात्र एक ही रहे हैं। और उनके जीवन-विकास में उनके भूत और वर्तमान का बड़ा गहरा सम्बन्ध रहा है। फिर भी हम दोनों भागों की कथा के चढ़ाव-उतार की स्थितियों को अलग-अलग देखने का प्रयत्न करेंगे।

प्रथम भाग की कथा

इस भाग की कथा लाहौर के सामान्य जन-जीवन के वर्णन के साथ आरम्भ होती है। भोला पांधे की गली के निवासी एक वृद्धा के स्यापे में व्यस्त हैं। उसी दौरान शादी-विवाह की बातें होती हैं। कथा के प्रमुख पात्र जयदेव और तारा से हमारा यहीं परिचय हो जाता है। इसके बाद कथा कुछ समय तक सामान्य जीवन के संघर्षों का चित्रण करती आगे बढ़ती है। धीरे-धीरे उसमें कथा के कुछ अन्य प्रमुख पात्रों—उर्मिला, कनक, नैयर, असद, डाक्टर प्राणनाथ सामने आते रहते हैं। काफी दूर तक कथा आर्थिक संघर्षों और प्रेम-प्रसंगों के क्षेत्र में घूमती रहती है। इसे विकास की स्थिति माना जा सकता है। इसी स्थिति में राजनीतिक और साम्प्रदायिक तनाव का उदय होता है। आर्थिक संघर्ष जयदेव के रूप में निरन्तर गतिशील रहता है। इस विकास की स्थिति के उपरान्त देश-विभाजन के साथ कथा की चरम-सीमा का पहला चरण आता है। इस चरम सीमा की स्थिति में आर्थिक संघर्ष, प्रेम-प्रसंग आदि सब कुछ छिन्न-भिन्न हो जाते हैं। और कनक और जयदेव के नैनीताल तथा लखनऊ चले जाने के साथ कथा कुछ समय तक लाहौर से हट जाती

है और तनाव की स्थिति में कुछ कमी आ जाती है। परन्तु तारा और सोमराज के कटु प्रसंग के साथ कथा पुनः एक नया तनाव भरा मोड़ लेती है और तारा और बन्ती के उद्धार के साथ पाकिस्तान छोड़ भारत में आकर समाप्त-सी हो जाती है। यह चरम-सीमा की तनावभरी स्थिति के उतार और शमन की स्थिति है। एक समाज उखड़ जाता है।

दूसरे भाग की कथा

दूसरे भाग की कथा जयदेव के नैनीताल से लौटने और जालन्धर में सूद जी के यहाँ आश्रय पाने के साथ पुनः आरम्भ होती है। लाहौर से उखड़े हुए सारे लोग जालन्धर, दिल्ली, लखनऊ आदि नगरों में अपने पैर जमाने और जीवित रहने के कठोर संघर्ष में जुट जाते हैं। इस संघर्ष के साथ ही पुराने और नए प्रेम-प्रसंग भी पुनः जीवित हो उठते हैं। उर्मिला-जयदेव, कनक-जयदेव, कनक-गिल, तारा-डाक्टर प्राणनाथ, रतन-शीलो आदि के नए-पुराने प्रेम-प्रसंगों के उतार-चढ़ाव में वल खाती हुई कथा राजनीतिक वातावरण के तनाव में से गुजरती हुई आगे बढ़ती रहती है। और इसकी चरम-सीमा तारा और डाक्टर के पारस्परिक विवाह के साथ उदय होती है। उसी के साथ कनक और जयदेव के मनमुटाव और अलगाव की कथा भी चलती रहती है। और इन दोनों ही कथाओं को तनावभरी पेचीदा स्थितियों से गुजारते हुए यशपाल चरम सीमा पर पहुँच कर सूद जी की हार के साथ सुखान्त उपसंहार में समाप्त कर देते हैं।

निष्कर्ष

'झूठा सच' की कथा का उपर्युक्त विश्लेषण यह सिद्ध कर देता है कि इस उपन्यास का कथानक पूर्णतः सुगठित और सन्तुलित है। कथा के सूत्र कहीं भी टूटने या शिथिल नहीं होने पाते। दोनों भागों की कथा में कथा-विकास की विभिन्न स्थितियाँ आती हैं और धीरे-धीरे अगली स्थिति का रूप धारण कर आगे बढ़ जाती हैं। हम पीछे कह आये हैं कि इस उपन्यास में कथा प्रधान न होकर परिस्थितियाँ प्रधान हैं। कथा और उसके पात्र उन परिस्थितियों और उनके प्रभाव को अधिक मुखर, व्यापक और सशक्त बनाने के माध्यम मात्र हैं। फिर भी यशपाल का कथा-संगठन के प्रति पूरा-पूरा ध्यान रहा है। उन्होंने कथा की कहीं भी उपेक्षा नहीं की है। कथा धारा-प्रवाह रूप में चलती है।

लाहौर, जालन्धर और दिल्ली की प्रमुख रूप से तथा नैनीताल और लखनऊ में घटित होने वाली विभिन्न घटनाओं को आरम्भ से अन्त तक एक सूत्र में पिरोए रखा गया है। इस उपन्यास के सर्वप्रधान पात्र तीन हैं—जयदेव, कनक और तारा। सारी प्रमुख घटनाएँ प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूप से इन्हीं तीनों से सम्बन्धित रहती हैं। अन्य पात्र भी इन्हीं से सम्बन्धित होकर कथा में स्थान पाते हैं। इस उपन्यास में यशपाल के राजनीतिक विचार स्थान-स्थान पर मुखरित होते रहे हैं, परन्तु वे कहीं भी कथा के प्रवाह पर हावी हो उसकी गति रुद्ध या विकृत नहीं कर पाए हैं।

अपने मूल रूप में 'झूठा सच' एक विशालकाय उपन्यास है। सम्भवतः पिछले अनेक वर्षों में हिन्दी में इतना विशालकाय अन्य कोई उपन्यास नहीं लिखा गया। कलेवर तथा विषय की व्यापकता को देखते हुए कथानक के बिखराव की अधिक सम्भावना थी परन्तु यशपाल की कुशल लेखनी, अद्भुत स्मृति और कथा-संयोजन के कौशल ने उसे कहीं भी शिथिल या विश्रृंखल नहीं होने दिया है। अतः कथा-संयोजन की दृष्टि से इस उपन्यास को हिन्दी का एक पूर्ण सफल उपन्यास माना जा सकता है।

प्रश्न ६—" 'झूठा सच' के अधिकांश पात्र अपने-अपने वर्गों का प्रतिनिधित्व करते हुए अधिक दिखाई पड़ते हैं।"—इस उपन्यास की पात्र-योजना का विवेचन करते हुए उपर्युक्त मन्तव्य के सम्बन्ध में अपने विचार प्रकट कीजिए।

प्रश्न ७—" 'झूठा सच' के पात्र विभिन्न वर्गों के प्रतीक होते हुए भी जीवन्त मालूम होते हैं।"—विवेचन कीजिए।

प्रश्न ८—" 'झूठा सच' के पात्र प्रगतिशील हैं। उपन्यासकार ने प्रकारान्तर से यह व्यक्त किया है कि देश का भविष्य और आशा ऐसे ही व्यक्तियों पर निर्भर है।"—इस सम्बन्ध में अपने विचार प्रकट कीजिए।

प्रश्न ९—" 'झूठा सच' के प्रथम भाग में पात्रों का चारित्रिक विकास जितने कलात्मक ढंग से हुआ है, उतना द्वितीय भाग में नहीं हो सका है।"—विवेचन कीजिए।

उत्तर

सोद्देश्य पात्र-योजना

'झूठा सच' उपन्यास में भारतीय इतिहास के सन् १९४७ से लेकर सन्

१९५७ के आरम्भ तक के काल की सम्पूर्ण राजनीतिक और सामाजिक गतिविधियों, उथल-पुथल, ध्वंस-निर्माण आदि का विस्तृत वर्णन किया गया है। इस काल में जो भी घटनाएँ घटी हैं उन्होंने उत्तर भारत के समूचे मानव समुदाय को गहरे रूप से प्रभावित किया था। इसलिए यशपाल ने अपने इस उपन्यास में समाज के सभी वर्गों से पात्र लेकर, उनके माध्यम से उस इतिहास को अंकित किया है। पात्र नितान्त कल्पित हैं, परन्तु उनके जीवन को प्रभावित करने वाली सभी प्रमुख घटनाएँ ऐतिहासिक हैं। पात्रों में समाज के निम्न, निम्न मध्य, मध्य और उच्च—सभी वर्गों के पात्र हैं। विभिन्न घटनाएँ, जो व्यापक रूप में घटित होती हैं, सभी पात्रों को प्रभावित करती हैं। समाज का कोई भी ऐसा प्रमुख अंग छूटने नहीं पाया है, जिसका प्रतिनिधित्व कोई-न कोई पात्र न करता हो। इस उपन्यास में समाज और राजनीति—दो प्रधात वर्ण्य-विषय रहे हैं। इसलिए इसमें समाज के विभिन्न वर्गों और विभिन्न राजनीतिक विचारधाराओं का प्रतिनिधित्व करने वाले पात्र मिल जाते हैं। राजनीति से सम्बन्धित पात्रों में अनेक प्रसिद्ध ऐतिहासिक पात्र रहे हैं और शेष कल्पित होते हुए भी किसी-न-किसी ऐतिहासिक मृत या जीवित पात्र के ही प्रतिनिधि प्रतीत होते हैं। इन सबके सहयोग से यशपाल ने वर्णित युग का एक जीवन्त चित्र प्रस्तुत किया है।

समाज के विभिन्न वर्गों के पात्र

इस उपन्यास की कथा का आरम्भ लाहौर की एक अप्रसिद्ध साधारण-सी गली—भोला पाँधे की गली से होता है। इस गली में अधिकांश निम्न मध्य वर्ग के परिवार रहते हैं। ऐसे परिवार अपनी पुरानी सामाजिक मान्यताओं से चिपके हुए आर्थिक अभाव से ग्रस्त जीवन संघर्ष में लगे रहते हैं। मास्टर रामलुभाया आर्यसमाजी विचारों के ऐसे अध्यापक हैं जो भयंकर आर्थिक संकट झेलते हुए उसे दूर करने के लिए ट्यूशनें करते हैं तथा स्वयं आर्यसमाजी विचारों और नियमों का पालन करते हैं और अपनी सन्तानों से भी करवाने का प्रयत्न करते हैं। संक्षेप में वह एक सीधे-सादे आर्यसमाजी मास्टर हैं। उनके बच्चे जयदेव, तारा आदि भी उश्रृंखल नहीं हैं। इसके विपरीत मास्टर जी के बड़े भाई बाबूराम ज्वाया हैं। उनके पास वेईमानी और रिश्वत खोरी से कुछ पैसा और जायदाद इकट्ठी हो गई

है, इसलिए घर में उन्हीं की चलती है। वही सोमराज के साथ तारा का विवाह-सम्बन्ध निश्चित करते हैं; जयदेव पर भी जोर डालते हैं और उसके न मानने पर उसके घर की दयनीय आर्थिक दशा पर व्यंग्य कसते हैं। जयदेव की माँ भागवन्ती भी अपनी जिठानी की खुशामद में लगी रहती है। गली में इसी प्रकार के अन्य सामान्य स्थिति के लोग हैं। पूरनदेई और उसकी लड़की सीता निम्न आर्थिक स्थिति की हैं। पूरनदेई को केवल बीस रुपए वेतन मिलता है। बढ़ती हुई मँहगाई से सारी गली के लोग परेशान हैं।

गली में विभिन्न विचारधाराओं के लड़के और लड़कियाँ हैं। जयदेव पुरी कांग्रेस का समर्थन और हिन्दू-मुस्लिम एकता का मानने वाला है। इसके विपरीत रतन आदि हिन्दूवादी विचारधारा के और मुसलमानों के विरोधी हैं। साम्प्रदायिक दगों के समय ये लोग गली की रक्षा करने की योजना बनाते हैं और अवसर मिलने पर मुसलमानों पर आक्रमण भी कर देते हैं। गली के सभी रहने वाले सामान्य स्थिति के और अपनी पुरानी रूढ़ियों से चिपके रहने वाले हैं। जयदेव, तारा आदि नई पीढ़ी के लड़के-लड़कियाँ नए विचारों वाले हैं। वे कालेज में पढ़ते हैं और बाहरी दुनियाँ और विचारों से प्रभावित हैं। जयदेव अनुवाद, ट्यूशन, पत्रकारिता आदि द्वारा अपनी आर्थिक विपन्नता को दूर करने मे जुटा रहता है।

उच्च मध्य वर्ग के पात्र

इस गली से बाहर की दुनियाँ के अनेक ऐसे लोग इस उपन्यास के पात्र बने हैं जो आर्थिक अतः सामाजिक दृष्टि से अधिक सम्पन्न हैं। उर्मिला के पिता बाधवामल नारंग, कनक के पिता पडित गिरधारी-लाल, उनका दामाद महेन्द्र नैयर, उसका पड़ोसी एडवोकेट मिर्जा आदि ऐसे पात्र हैं जिन्हें उच्च मध्यवर्ग का माना जा सकता है। समाज में इनकी प्रतिष्ठा है। इनका अपना कारोबार है, शान के साथ रहने के लिए पर्याप्त धन है। इनमें व्यापारी, प्रकाशक, वकील आदि विभिन्न पेशों के लोग हैं। गरीबों के प्रति इनका दृष्टिकोण और व्यवहार उपेक्षाभरा और सहानु-भूतिपरक दोनों ही प्रकार का है। जयदेव इन्हीं लोगों से सहायता और उपेक्षा—दोनों ही प्राप्त करता है। सोमराज को भी इसी वर्ग का व्यक्ति माना जा सकता है, परन्तु वह लफंगा है, जैसे कि धनवान लोगों के कुछ लड़के होते

हैं। सोमराज के पिता तस्करी का व्यापार करते हैं। 'पैरोकार' के सम्पादक कशिश जी को भी लगभग इसी वर्ग का व्यक्ति माना जा सकता है। ये सब लोग लगभग एक ही सामाजिक वर्ग के, परन्तु पेशों से भिन्न होते हुए भी, अपनी-अपनी वैयक्तिक चारित्रिक विशेषताएं रखते हैं।

उच्च वर्ग के पात्र

उच्च सामाजिक वर्ग के पात्रों में भी विभिन्न श्रेणियों के पात्र हैं। डाक्टर प्राणनाथ एक अत्यन्त सम्पन्न परिवार का उच्च शिक्षा प्राप्त बुद्धिजीवी है। उसके पिता शाह गोपालदास पुश्तैनी रईस और मिल-मालिक हैं। दिल्ली के मिस्टर और मिसेज अगरवाला धनी और उच्च राजनीतिक वर्ग के लोगों में लोकप्रिय व्यवसायी हैं। मिसेज अगरवाला यह चाहती हैं कि उनके बच्चे फर्राटे के साथ अंग्रेजी बोलना सीख जांये। उच्च वर्ग का एक दूसरा तबका उच्च सरकारी पदाधिकारियों का है। रावत, डे, चारी आदि इसी वर्ग के हजारों रुपए माहवार वेतन पाने वाले लोग हैं। सरकारी नीतियों के सम्बन्ध में इनके विचार परस्पर विरोधी हैं। ये लोग शक्तिशाली हैं। किसी को भी नौकरी देकर उसका जीवन बना सकते हैं। ऊपर से राजनीतिक दबाव पड़ने पर कायदे के खिलाफ काम करने और अपने मातहतों से करवाने में भी संकोच नहीं करते। डिप्टी सेक्रेटरी चारी ऐसे ही अधिकारियों में से हैं।

राजनीतिक क्षेत्र के लोग

इस उपन्यास की मूल ध्वनि राजनीति-प्रधान रही है, इसलिए इसमें राजनीतिक क्षेत्र के अनेक ऐतिहासिक और कल्पित, प्रमुख और सामान्य पात्र आ गए हैं। महात्मा गांधी, जवाहरलाल नेहरू, सरदार पटेल आदि का केवल उल्लेख होता है। नेहरू दो-एक बार सामने भी आते हैं। पंजाब के डाक्टर गोपीचन्द भार्गव, मास्टर तारासिंह, खिजर हयात खाँ आदि विभिन्न राजनीतिक दलों के नेता थे। ये लोग भी कुछ क्षणों के लिए मंच पर आते हैं और चले जाते हैं। परन्तु यशपाल ने कुछ ऐसे कल्पित राजनीतिक पात्र भी इस उपन्यास में रखे हैं जो कांग्रेस के असली रूप को खोलकर रख देते हैं। जालन्धर के सूदजो, दिल्ली के प्रसाद, लखनऊ के अवस्थी ऐसे ही लोग हैं। ये लोग प्रभावशाली राजनीतिज्ञ हैं। सूदजी उन

कांग्रेसियों के प्रतीक हैं जो अपने व्यक्तिगत स्वार्थ के प्रति पूर्ण उदासीन रहते हुए भी अपना प्रभाव बढ़ाने के लिए अपने समर्थकों को उचित-अनुचित सहायता और लाभ उपलब्ध कराने में रंचमात्र भी संकोच नहीं करते। वह जयदेव को आश्रय दे, उसे आगे बढ़ाते हैं और फिर उसके साप्ताहिक पत्र द्वारा अपने पक्ष में प्रचार करवाते हैं। वह पूँजीपतियों और उनके स्वार्थों के कट्टर हिमायती और संरक्षक हैं। वह अपनी बात न मानने के कारण अपने प्रभाव का प्रयोग कर डाक्टर प्राणनाथ से बदला लेने का प्रयत्न करते हैं। सूद जी का चरित्र उत्तर भारत के एक प्रमुख राज्य के एक अत्यन्त प्रभावशाली कांग्रेसी नेता और मुख्यमंत्री के चरित्र की एक झलक देता है। प्रसाद और अवस्थी ऐसे कांग्रेसी नेता हैं जो असहाय युवतियों की सहायता कर उन्हें भ्रष्ट करने का प्रयत्न करते रहते हैं। जयदेव छुटभैये कांग्रेसियों का प्रतीक है जो अपनी महत्त्वाकांक्षा और उन्नति के लिए सूदजी जैसे नेताओं की सेवा और खुशामद में लगा रहता है।

राजनीतिज्ञों का एक दूसरा वर्ग कम्युनिस्ट कार्यकर्ताओं का है। लाहौर में कालेज के अनेक लड़के-लड़कियाँ कम्युनिस्ट दल की कार्यवाहियों और विचार-गोष्ठियों में भाग लेते हैं। ये लोग देश-विभाजन के विरोधी और हिन्दू-मुस्लिम एकता के समर्थक हैं। लाहौर में हिन्दू-मुस्लिम सौमनस्य स्थापित करने के लिए प्रचार करते हैं, जुलूस निकालते हैं। असद, इन्द्रकुमार, खन्ना, दर्शन आदि इस दल के उत्साही और सक्रिय सदस्य हैं। जयदेव, तारा, कनक आदि भी इनकी विचार-गोष्ठियों में शामिल होते रहते हैं। दिल्ली में चड्ढा इनका नेता है। वह अक्सर फरार रहता है। मैसी के यहाँ कम्युनिस्टों की गोष्ठियाँ जमती हैं और राजनीति पर बहसें होती हैं। उन गोष्ठियों में माथुर जैसे विचारशील लोग भी भाग लेते हैं जो विचारों से कम्युनिस्ट नहीं हैं। इन कम्युनिस्टों में अपने सिद्धान्तों और विचारों के प्रति दृढ़ आस्था है। कम्युनिस्टों में हिन्दू-मुसलमान-सिख सभी धर्मों और वर्गों के नवयुवक हैं। गिल भी कम्युनिस्ट है। ये सभी लोग कांग्रेस की नीतियों के तथा पूँजीपतियों के कट्टर विरोधी हैं।

इस उपन्यास में कट्टर हिन्दूवादी पात्र भी हैं, जैसे रतन और मास्टर तारासिंह। ये लोग मुसलमानों के विरोधी और शक्तिशाली की हिंसा में आस्था रखते हैं।

तटस्थ पात्र

इस उपन्यास में अनेक ऐसे पात्र हैं जिनकी कोई निश्चित राजनीतिक विचारधारा नहीं हैं। तारा, कनक, उर्मिला, सीता, नैयर, कान्ता, कंचन, पंडित गिरधारीलाल, नरोत्तम, शीलो, डाक्टर प्राणनाथ आदि ऐसे ही लाग हैं। ये सच्चे अर्थों में मानव हैं। राजनीतिक, साम्प्रदायिक आदि रूढ़ विचारधाराओं से मुक्त से रहते हुए जीवन-संघर्ष में जुटे रहते हैं। ये प्रेम भी करते हैं और उसे निभाने का प्रयत्न भी। इनमें से कुछ निरीह हैं, जैसे उर्मिला, शीलो, सीता आदि। विषम परिस्थितियाँ इन्हें संकटों मे डाल देती हैं और ये उन्हें चुपचाप स्वीकार कर लेती है, उनसे मुक्ति पाने के लिए विद्रोह नहीं करती। इसके विपरीत कनक, तारा, आदि ऐसे नारी पात्र हैं जो अपने प्राप्य को न पाकर विद्रोही और कर्मशील हो उठते हैं; परिस्थितियों के विरुद्ध सघर्ष करते हैं। कनक का चरित्र इनमें सर्वाधिक सशक्त है। वह अपने परिवार का उग्र विरोध कर जयदेव का वरण करती है और फिर उसकी नीचताओं और स्वार्थ-लिप्सा को देख उसे त्याग देने में भी रचमात्र संकोच नहीं करती। इसके विपरीत तारा है। वह आरम्भ में सोमराज के साथ होने वाले अपने विवाह का सशक्त विरोध न कर चुपचाप आत्म-समर्पण कर देती है और फिर संकटों में से गुजरती हुई भारत में आ एक नया जीवन आरम्भ करती है। वह अपने पुराने जीवन को पूरी तरह से भुलाकर नए सम्वन्ध स्थापित करती है और आगे वढ़ती है। जीवन के शुभ मूल्यों के प्रति उसके हृदय में सम्मान की भावना है। वह शीलो की करुण-कथा सुन उसे रतन के साथ रहने की सलाह देती है और सहायता भी करती है। वह तारा और उसकी माँ पूरणदेई की भी सहायता करती है। तारा एक प्रकार से सुन्दर, शुभ गुणों वाली एक भारतीय महिला है। वह जाति, वर्ग आदि में कोई भेद नहीं करती। वह असद से प्रेम करती है और उसके साथ विवाह करने को तैयार हो जाती है। डाक्टर प्राणनाथ के प्रति उसकी श्रद्धा आगे चलकर प्रेम का सा रूप धारण कर लेती है।

उर्मिला उन कमजोर लड़कियों की प्रतीक है जो यौन-भावना से उत्तेजित हो पुरुष के सम्मुख आत्म-समर्पण करने को व्याकुल हो उठती हैं और जब पुरुष उनके साथ विश्वासघात करते हैं तो मर्माहत हो चुपचाप उनके जीवन से

हट जाती हैं, अपने अधिकार का दावा नहीं करती। कान्ता, कंचन आदि ऐसी लड़कियों की प्रतीक हैं जो सामान्य सा प्रेम होने पर अपने विवाहित जीवन में सन्तुष्ट बनी रहती हैं। नरोत्तम, अपनी सौतेली माँ के व्यवहार से खिन्न हो घर से विरक्त सा हो जाता है और कंचन से विवाह कर अपने जीवन में रम जाता है। वह स्वभाव से भला और उदार है। डाक्टर प्राणनाथ उस बुद्धिजीवी वर्ग के गम्भीर स्वभाव के व्यक्ति हैं जो विचारों से प्रगतिशील होते हुए भी राजनीति के जंजाल में फँसना पसन्द नहीं करते। स्वभाव से उदार और भले हैं। परन्तु किसी के प्रति अपनी भावनाओं को सहज ही व्यक्त नहीं होने देते। इसमें माथुर जैसे पात्र भी हैं जो राजनीतिक दृष्टि से जागरूक और परोपकारी हैं। गिल जैसे कम्युनिस्ट भी हैं जो कनक के प्रति अनुराग रखते हुए भी कनक और जयदेव के बीच मतभेद को शान्त करना चाहता है।

इस प्रकार इस उपन्यास में समाज के लगभग सभी वर्गों, श्रेणियों, व्यवसायों और विचारधाराओं का प्रतिनिधित्व करने वाले पात्र आ गए हैं। ये सब मिलकर उस भारतीय समाज का एक जीवन्त रूप प्रस्तुत कर देते हैं जो देश की आजादी के समय से एक दशक (दस वर्ष) तक निरन्तर संघर्ष करता रहा था। उस समाज का वास्तविक चित्र प्रस्तुत करने के लिए ही इसमें अगणित प्रमुख और गौण पात्रों का समावेश किया गया है।

वर्ग-प्रतिनिधि परन्तु जीवन्त पात्र

साधारणतः पात्रों की दो कोटियाँ मानी जाती हैं। पहली, किसी-न-किसी वर्ग का प्रतिनिधित्व करने वाले पात्र। दूसरी, चारित्रिक विशेषताओं के कारण असामान्य से प्रतीत होने वाले पात्र। 'झूठा सच' के पात्रों के सम्बन्ध में कुछ आलोचकों का यह कहना है कि इसके पात्र विभिन्न वर्गों के प्रतिनिधि बनकर हमारे सामने आते हैं, इसलिए उनके चरित्रों में स्वाभाविकता न होकर एक यांत्रिक नीरसता सी आ गई है। इन लोगों का यह कहने का साहस तो नहीं हुआ है कि यह उपन्यास एक साम्यवादी लेखक की रचना है इसलिए इसमें बने-बनाए सिद्धान्तों के आधार पर ऐसे पात्रों का निर्माण किया गया है जो स्वाभाविक न रहकर उपन्यासकार के हाथ की कठपुतली से बन गए हैं। परन्तु ऐसा कहना अपने एकांगी और

पूर्वाग्रहों से मुक्त दृष्टिकोण और मनःस्थिति का ही परिचय देना है। ऐसे आलोचकों को 'शेखर : एक जीवनी' जैसे उपन्यासों के शेखर आदि पात्र अधिक पसन्द आते हैं जिनके रूप में उनकी अपनी कुंठाएँ अभिव्यक्ति पाती हैं। उन्हें जो पात्र किसी भी वर्ग का प्रतिनिधित्व सा करता दिखाई पड़ता है, अस्वाभाविक और कठपुतली सा प्रतीत होने लगता है।

क्या 'गोदान' के होरी को वर्ग-प्रतिनिधि कठपुतली सा पात्र मोना जा सकता है ? होरी अपने किसान-वर्ग का प्रतिनिधित्त्व करते हुए भी हिन्दी उपन्यास-जगत का एक अमर पात्र बन गया है। उपन्यासकार की पात्र-योजना की सबसे बड़ी विशेषता और सफलता यही मानी जाती है कि उसके द्वारा रचित पात्र अपने वर्ग का प्रतिनिधित्त्व करते हुए भी अपना स्वतंत्र वैयक्तिक जीवन्त रूप रखें। ऐसे ही पात्र पाठकों को प्रभावित करते हैं और उनकी स्मृति में सदैव अपना स्थान बनाए रखते हैं। 'झूठा सच' के अधिकांश पात्र भी इसी कोटि के हैं। जयदेव, कनक, तारा, डाक्टर प्राणनाथ, पंडित गिरधारीलाल, सूद जी, नैयर आदि इस उपन्यास के ऐसे जीवन्त पात्र हैं जिन्हें उपन्यास पढ़ने के उपरान्त सहज ही नहीं भुलाया जा सकता। इनमें विषम परिस्थितियों के विरुद्ध संघर्ष करने की अक्षय शक्ति है। इनके संघर्ष करने का ढंग भी भिन्न और मौलिक है। इनमें अपनी-अपनी चारित्रिक विशेषताएँ और दृढ़ता है। इसीलिए ये उपन्यासकार के हाथ की कठपुतली न बनकर अपना स्वतंत्र अस्तित्त्व रखते हैं।

कठपुतली जैसे पात्र भी हैं

परन्तु इस उपन्यास में हमें कुछ निर्जीव, व्यक्तित्वहीन, कठपुतली जैसे पात्र भी मिल जाते हैं। गिल को ऐसा ही पात्र माना जा सकता है। वह दूसरे भाग में उपन्यास में आता है और जालन्धर आने तक उसका कोई महत्त्व स्पष्ट नहीं हो पाता। वह कम्युनिस्ट है और लखनऊ में कनक के संसर्ग में उसके प्रति अनुरक्त हो उठता है। इसके बाद 'नाजिर' में सहायक-सम्पादक बन जालन्धर आ जाता है और कनक के दिल्ली चले जाने पर स्वयं भी दिल्ली चला जाता है। अन्त में कनक और इसका विवाह हो जाता है। हमें गिल के चरित्र में वह जीवन्त शक्ति नहीं मिलती जो व्यक्ति को एक विशिष्टता प्रदान कर देती है।

समष्टि रूप से इस उपन्यास के अनेक प्रमुख और गौण पात्र अपने-अपने वर्ग का प्रतिनिधित्व करते हुए भी अपनी चारित्रिक विशिष्टताओं के कारण यथार्थ, सशक्त और जीवन्त बन गए हैं। ये सभी पात्र अनवरत जीवन-संघर्ष में जुटे रहते हैं। सभी में अपने उखड़े हुए पैरों को पुनः जमाने की अदम्य लालसा और उस लालसा को पूरा करने की शक्ति है। इनमें से कुछ पात्र महत्त्वाकांक्षी हैं, अपनी व्यक्तिगत उन्नति के महत्त्वाकांक्षी। कुछ पात्र प्रगतिशील हैं और सूद जी जैसे जन-विरोधी और पूँजीपतियों के समर्थक नेताओं की हार का प्रयत्न करते और उनकी हार पर मिठाई बाँटते हैं। वस्तुतः ऐसे ही पात्र जनता के सच्चे प्रतिनिधि बनकर हमारे सामने आते हैं। कनक, तारा आदि ऐसे ही जीवन्त नारी-पात्र हैं। इनका चरित्र भारत के नए उगते हुए नारीत्व का प्रतिनिधित्व करता है। ऐसे ही पात्रों को लक्ष्य कर डाक्टर प्राणनाथ, उपन्यास के अन्त में, सूद जी की हार के सन्दर्भ में गिल से कहते हैं—"गिल, अब तो विश्वास करोगे, जनता निर्जीव नहीं है। जनता सदा मूक भी नहीं रहती। 'देश का भविष्य' नेताओं और मंत्रियों की मुट्ठी में नहीं है, देश की जनता के ही हाथ में है।"

दोनों भागों के पात्रों की तुलना

पूरे उपन्यास में जयदेव, कनक, तारा, पंडित गिरधारीलाल, मास्टर रामलुभाया, उर्मिला, डाक्टर प्राणनाथ, नैयर आदि सभी प्रारम्भ से लगभग अंत तक उपस्थित रहते हैं। दोनों भागों में इनकी स्थितियाँ भिन्न रहती हैं। पहले भाग में इन पात्रों में से कुछ सम्पन्न और जमे हुए हैं; कुछ जमने का प्रयत्न कर रहे हैं। दूसरे भाग में ये सभी पात्र अपने स्थानों से उखड़ कर दूसरे स्थानों पर जमने का प्रयत्न करते हैं। इस नए भयानक जीवन-संघर्ष में उनके रूप हल्के से बदल जाते हैं परन्तु उनके व्यक्तित्व की मूल रूपरेखा रंचमात्र भी नहीं बदलती। जयदेव लाहौर में भी अपने को जमाने का प्रयत्न कर रहा था। जालंधर पहुँच कर भी उसे यही प्रयत्न करना पड़ता है। तारा और कनक नई जीवन-परिस्थितियों के कारण अपने पैरों पर खड़े होने का प्रयत्न करती हैं। नैयर, डाक्टर प्राणनाथ पहले के ही समान शीघ्र ही स्वयं को जमा लेते हैं। दूसरे भाग में जयदेव, कनक और तारा के नए रूप उभरते

हैं। उनका जीवन संघर्ष अधिक व्यापक, जटिल और तीव्र हो उठता है। इसमें उनके चरित्र के अनेक नए गुण-अवगुण उभरते हैं।

परन्तु इस दूसरे भाग में राजनीति, जनान्दोलन, कूटनीति, सरकारी वातावरण का अनुपात बढ़ जाता है। कथा राजनीति में लिप्त हो जाती है। इसलिए राजनीति की भीड़भाड़ में पाठक का ध्यान घटनाओं पर ही केन्द्रित होकर रह जाता है, इन घटनाओं के मध्य पात्रों के उभरते हुए नए रूपों की ओर नहीं जा पाता। इसलिए पाठक को चरित्र कुछ धूमिल और उपेक्षित से प्रतीत होने लगते हैं। जबकि वस्तुस्थिति यह है कि उपन्यासकार पात्रों के चरित्रांकन पर पूरा ध्यान देते हुए उन्हें आगे बढ़ाता रहता है। मनोवैज्ञानिक चित्रण के शौकीनों और आग्रहियों को उसने अवश्य निराश किया है, इसमें सन्देह नहीं। अत: यह कहना असंगत है कि इस उपन्यास के दूसरे भाग में चरित्रों का विकास नहीं हो पाया हैं। प्रधान और गौण–दोनों प्रकार के पात्र आरम्भ से अत तक सजीव और जीवन्त रहते हैं। इस प्रकार पात्र-योजना और चरित्रांकन की दृष्टि से 'झूठा सच' को एक पूर्ण सफल उपन्यास माना जा सकता है।

प्रश्न १०—'वातावरण या परिस्थिति-निर्माण की दृष्टि से 'झूठा सच' एक पूर्ण सफल और यथार्थवादी उपन्यास है।"—इस उपन्यास में अंकित वातावरण का उपर्युक्त उक्ति के सन्दर्भ में विश्लेषण और विवेचन कीजिए।

प्रश्न ११—"इस उपन्यास का 'झूठा सच' नाम इसमें हुए वातावरण-चित्रण द्वारा पूर्ण सार्थक सिद्ध होता है।"—विवेचन कीजिए।

प्रश्न १२—"यह उपन्यास झूठ है, पर ऐसा झूठ जिसके सत्य होने में किसी प्रकार का सन्देह नहीं किया जा सकता।"—इस उक्ति के सम्बन्ध में अपने विचार प्रकट कीजिए।

उत्तर

उपन्यास में वातावरण का महत्व

'झूठा सच' उपन्यास को उस अर्थ में तो ऐतिहासिक उपन्यास नहीं माना जा सकता, जिस अर्थ में सामान्यत: 'ऐतिहासिक उपन्यास' शब्द का प्रयोग किया जाता है; क्योंकि इसमें आज से लगभग दस वर्ष पहले तक की लगभग

एक दशक की घटनाओं का चित्रण किया गया है, जबकि ऐतिहासिक उपन्यासों में समकालीन घटनाओं का वर्णन न होकर काफी पुराने, कम-से-कम सौ या पचास वर्ष पूर्व की घटनाओं का ही वर्णन उचित माना जाता रहा है। परन्तु हम इस उपन्यास को इस कारण ऐतिहासिक उपन्यास मान लेने का आग्रह करते हैं, क्योंकि इसमें एक दशक के जिस वातावरण और प्रमुख घटनाओं का वर्णन किया गया है, वह पूर्णत: सत्य और इतिहास-सम्मत है। आम तौर से 'झूठा सच' को सामाजिक उपन्यास माना गया है और सामाजिक उपन्यास के पात्र और घटनाएँ सभी कुछ कल्पित होते हैं। इस उपन्यास के अधिकांश प्रमुख पात्र और उनके वैयक्तिक जीवन में घटित होने वाली घटनाएँ कल्पित हैं। परन्तु जो वातावरण और घटनाएँ इन पात्रों और उनसे सम्बन्धित घटनाओं को प्रभावित करती हैं, वे सब सत्य और ऐतिहासिक हैं। हम पहले कह आए हैं कि यह उपन्यास पात्र-प्रधान न होकर परिस्थिति-प्रधान है। और जो उपन्यास परिस्थिति या वातावरण-प्रधान होते हैं, उन्हें 'ऐतिहासिक उपन्यास' कहा जाता है।

ऐतिहासिक उपन्यास में परिस्थिति या वातावरण का सबसे अधिक महत्त्व होता है। उपन्यासकार वर्णित युग के यथार्थ और इतिहास-सम्मत वातावरण का निर्माण कर पाठकों में यह विश्वास उत्पन्न कर देता है कि वह जो कुछ कह रहा है, वह पूर्ण सत्य है। 'झूठा सच' उपन्यास में भी यशपाल ने उपन्यास-लेखन की इसी पद्धति को अपनाया है। वह इस उपन्यास द्वारा यह दिखाना और बताना चाहते हैं कि किन परिस्थितियों में देश का भारत और पाकिस्तान-दो देशों के रूप में विभाजन हुआ था, उस विभाजन के क्या कारण थे, सामान्य जनता का उसके प्रति क्या और कैसा दृष्टिकोण था, उसका कैसा प्रभाव पड़ा था, आदि। ये सारी बातें सत्य थीं, इतिहास की थीं। उपन्यासकार ने इन्हीं सब को एक कल्पित कथा और कल्पित पात्रों का ताना-बुना बुन कर प्रभावशाली यथार्थ रूप में प्रस्तुत किया है। इसी कारण हम इस उपन्यास को परिस्थिति या वातावरण-प्रधान मानते हैं। इस उपन्यास में अंकित परिस्थिति या वातावरण का विवेचन करने से पूर्व हम यह आवश्यक समझते है कि इसके शीर्षक 'झूठा सच' के अर्थ को स्पष्ट कर लिया जाय।

'झूठा सच' शीर्षक का वास्तविक अर्थ

यशपाल ने 'झूठा सच' के सम्बन्ध में स्पष्ट लिखा है कि इसका—"..... सम्पूर्ण कथानक कल्पना के आधार पर उपन्यास है, इतिहास नहीं है। उपन्यास के सभी पात्र—तारा, जयदेव, कनक, गिल, डाक्टर नाथ, नैयर, सूद जी, सोमराज, रावत, ईसाक, प्रसाद और प्रधान मन्त्री भी काल्पनिक पात्र हैं।" परन्तु इस कल्पित कथानक और कल्पित पात्रों द्वारा यशपाल ने जो कुछ प्रस्तुत किया है, कहा है, वह सब कुछ सत्य है। इसी तथ्य को यशपाल ने उपन्यास के 'समर्पण' में स्पष्ट करते हुए लिखा है कि—"सच को कल्पना से रंग कर उसी जन-समुदाय को सौंप रहा हूँ, जो सदा झूठ से ठगा जाकर भी सच के लिए अपनी निष्ठा और उसकी ओर बढ़ने का साहस नहीं छोड़ता।" अर्थात यशपाल ने सच को कल्पना से रंजित बनाकर प्रस्तुत किया है। वस्तुत यह उपन्यास देश विभाजन और उसके परिणाम की काफी ईमानदारी से लिखी गई कहानी है। इस उपन्यास के शीर्षक से यह ध्वनि निकलती है कि इसमें कल्पित कथा और पात्रों के झूठे नामों के माध्यम से देश-विभाजन और उसके परिणामों की सच्ची कहानी कही गई है। इस बात को डा० त्रिभुवन सिंह के इस विश्लेषण द्वारा और भी अधिक अच्छी तरह से समझा जा सकता है—

"कल्पित पात्रों और उनके सम्बन्ध में कल्पित घटनाओं को लेकर लिखा गया यह उपन्यास झूठ है, पर ऐसा झूठ जिसके सत्य होने में किसी प्रकार का सन्देह नहीं किया जा सकता। ये पात्र कल्पित हैं, पर ऐसे पात्र यहाँ रहे हैं और ऐसी घटनाएँ यहाँ घटी हैं।....'झूठा सच' विभाजन के बाद भारतीय जन-जीवन की दर्दभरी जटिल परिस्थिति का ऐसा सच्चा चित्र पाठकों के सामने रखता है जैसा इतिहास लाख प्रयत्न करने पर भी सामने नहीं रख पायेगा।"

इस प्रकार यशपाल ने अपने इस उपन्यास में एक झूठी, कल्पित कथा के माध्यम से भारतीय इतिहास के स्वतन्त्रता के बाद के एक दशक का सच्चा इतिहास और मानव की जिजीविषा (जीने की इच्छा) का जीवन्त चित्र अंकित किया है। इसी कारण इस उपन्यास का शीर्षक 'झूठा सच' रखा गया है।

विभिन्न परिस्थितियों का चित्रण

इस उपन्यास में प्रधान रूप से राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक और साम्प्रदायिक परिस्थितियों का चित्रण किया गया है। इन्हीं के माध्यम से वर्णित युग साकार हो उठा है। इन विभिन्न प्रकार की परिस्थितियों में परस्पर पूर्ण समन्वय रहा है। वह युग भारतीय इतिहास का सर्वाधिक महत्वपूर्ण युग था। उस युग में देश को शताब्दियों की पराधीनता से मुक्ति मिली थी। परन्तु उस मुक्ति के साथ ही सारे देश के हिन्दू और मुसलमानों को जिस भयानक संकट, अत्याचार और बर्बादी का सामना करना पड़ा था, वह भारतीय इतिहास की एक अभूतपूव घटना थी। समाज का एक वर्ग, जिसे अपने स्थान से उखड़ना नहीं पड़ा था, आजादी की खुशियाँ मना रहा था, जबकि दूसरा वर्ग अपने स्थान से उखाड़ा जाकर, अपना सब कुछ खोकर, शरणार्थी के रूप में, अपने जन्मस्थान से दूर, अपरिचित से स्थानों पर शरण लेने के लिए विवश कर दिया गया था। यह सब कुछ देश के, अखंड भारत के राजनीतिक विभाजन के कारण ही हुआ था, इसलिए इस उपन्यास में राजनीतिक परिस्थितियों के चित्रण को प्रमुखता मिली है। इसके साथ ही इसमें एक स्थान से उखड़े हुए समाज की अपनी पुरानी सामाजिक मान्यताओं, रीति-रिवाजों, जीवन-मूल्यों के चित्रण के साथ ही, उसके उखड़ कर एक नए देश और परिवेश में जमने का प्रयत्न करना और नई मान्यताओं और जीवन मूल्यों का भी अत्यन्त प्रभावशाली अंकन हुआ है। नए स्थान और नए परिवेश में पुरानी मान्यताएँ और जीवन-मूल्य टूटते जाते हैं और समाज स्वयं को नए परिवेश के अनुकूल ढालता जाता है। और इस सबके मूल में अनवरत जीवन-संघर्ष का स्वर प्रमुख रहता है।

सामाजिक परिस्थिति—इस उपन्यास में देश-विभाजन से कुछ समय पूर्व से कथा का आरम्भ होता है। उपन्यासकार ने लाहौर की निम्न मध्य वर्ग के परिवारों वाली एक गली—भोला पांधे की गली के निवासियों के वर्णन के साथ उपन्यास का आरम्भ किया है। आरम्भ में ही किसी बड़े-बूढ़े के मरने पर, पंजाबी खत्रियों में प्रचलित स्यापे की प्रथा का बड़ा रोचक वर्णन हुआ है। किस प्रकार गली परिवार की औरतें, एक स्यापा विशेषज्ञ नाऊन के

नेतृत्त्व में लय-स्वर के साथ स्यापा करती हैं, स्यापे के उपरान्त किन औरतों और लड़कियों को नेग दिए जाते हैं, इस सब का विस्तृत और मनोरंजक वर्णन किया गया है। इसी अवसर पर औरतों में कुँवारी लड़कियों के भावी रिश्तों के सम्बन्ध में बातें होती हैं। कुँवारे लड़के-लड़कियों के पारिस्परिक मिलन और बोलचाल पर विशेष कड़े बन्धन नहीं हैं। रतन अपनी पड़ोसिन तारा और शीलो से निस्संकोच बातें करता है और कभी-कभी छेड़ भी देता है। मौहल्ले के सभी लोगों में पारस्परिक सौहार्द और सहयोग की भावना है। दंगों के समय यदि गली का कोई भी व्यक्ति गिरफ्तार, घायल या लापता हो जाता है तो सारा मौहल्ला उसके लिए परेशान हो उठता है और उसकी सहायता करने का प्रयत्न करता है।

संकट के समय भी शादी-विवाह नहीं रुकते। लाहौर में भयंकर साम्प्रदायिक दंगे हो रहे हैं, परन्तु उस अशान्त वातावरण में भी तारा और सोमराज़ का विवाह हो जाता है। अन्तर केवल इतना पड़ता है कि यह विवाह बिना धूमधाम के सादगी के साथ होता है, जिसका दोनों पक्षों को मलाल रहता है। निम्न मध्य वर्ग के लड़के-लड़कियों के विवाह उनके बड़े-बूढ़े निश्चित करते हैं। परन्तु पढ़े-लिखे लड़के-लड़कियाँ अपनी मन पसन्द का विवाह करने के इच्छुक रहते हैं। तारा सोमराज से विवाह नहीं करना चाहती क्योंकि वह असद से प्रेम करती है। जयदेव अपने बुजुर्गों की इच्छा को ठुकराकर अपनी आर्थिक स्थिति ठीक हो जाने पर अपने अनुकूल लड़की से विवाह करना चाहता है। तारा का विवाह उसकी इच्छा के विरुद्ध कर दिया जाता है। इस वर्ग में अन्तरजातीय विवाहों को स्वीकार या पसन्द नहीं किया जाता। दूसरे धर्म वालों से विवाह करने की बात तो असम्भव-सी ही है। जयदेव स्वयं खत्री होते हुए एक ब्राह्मण लड़की कनक के साथ शादी करने का इच्छुक है परन्तु असद के साथ अपनी बहन तारा के प्रेम सम्बन्ध की बात जान बौखला उठता है।

उच्च मध्य वर्ग में स्थिति इसके विपरीत है। पंडित गिरधारी लाल अन्तरजातीय विवाह को बुरा नहीं समझते। उनकी बड़ी लड़की कान्ता का विवाह एक दूसरी जाति के सम्पन्न व्यक्ति एडवोकेट महेन्द्र नैयर के साथ हुआ था। यह वर्ग जाति की अपेक्षा सामाजिक स्थिति और आर्थिक सम्पन्नता

को अधिक महत्व देता है। पण्डित जी और नैयर—दोनों ही कनक और जयदेव के सम्बन्ध को इसलिए अनुचित समझते हैं कि जयदेव गरीब है और उसकी कोई महत्वपूर्ण सामाजिक स्थिति भी नहीं है। आगे चलकर पण्डित जी एक वैश्यपुत्र नरोत्तम से अपनी तीसरी लड़की कंचन की शादी इसलिए कर देते हैं कि नरोत्तम एक उच्च, सम्पन्न और धनवान घराने का लड़का है। परिस्थितियों की विषमता को देख वह कनक के तलाक और पुनर्विवाह के लिए भी उत्सुक और सहमत हो जाते है। दूसरी तरफ उच्च वर्ग में भी जाति का कोई बन्धन नहीं है। होम सेक्रेटरी रावत अपनी लड़की की शादी नरोत्तम से करना चाहते हैं।

समाज में अवैध सम्बन्ध भी चलते हैं। शीलो और रतन का तथा जयदेव और उर्मिला का ऐसा ही सम्बन्ध रहता है। आगे चल कर शीलो अपने पति के व्यवहार से तंग आकर उसे छोड़ रतन के साथ उसकी पत्नी बन कर रहने लगती है। डाक्टर श्यामा और मिस्टर डे का अवैध सम्बन्ध समाज की चर्चा का विषय बन जाता है। पूरणदेई की लड़की तारा विवाह से पूर्व अन्य लोगों के सम्पर्क में आकर गर्भवती बन जाती है और चुपचाप गर्भपात कराती है। चड्ढा और मर्सी विवाह से पूर्व भी साथ-साथ रहते हैं। समाज ऐसे सम्बन्धों के विषय में जानते हुए भी उनकी ओर अधिक ध्यान नहीं देता। उनकी थोड़ीसी चर्चा मात्र होकर रह जाती है। स्थापित पत्रकार, सम्पादक और नेता लड़कियों को फँसाने की कोशिश करते रहते हैं। समाज में चुपचाप कुछ भी होता रहे कोई उसका प्रकट और उग्र विरोध नहीं करता। परन्तु समाज प्रकट रूप में किसी भी नारी को इस बात के लिए क्षमा नहीं करता कि उसका किसी पुरुष से सम्बन्ध रहा हो। बन्ती जब पाकिस्तान से आकर अपने परिवार को ढूँढ़ती हुई घर पहुँच जाती है तो उसकी सास, पति आदि उसे इसलिए घर में नहीं घुसने देते कि वह मुसलमानों द्वारा भ्रष्ट की जा चुकी होगी। परन्तु डाक्टर प्राणनाथ तारा के मुँह से एक गुंडे द्वारा उसके साथ बलात्कार किए जाने और बीमारी लग जाने की बात सुनकर भी उसे पत्नी रूप में स्वीकार कर लते हैं और उसका इलाज करवाते हैं। मगर डाक्टर जैसे लोग अपवाद हैं। साधारणतः समाज ऐसे सम्बन्धों के प्रकट हो जाने पर क्षमा नहीं करता।

इस उपन्यास में पर्व-उत्सवों, तीज-त्यौहारों, सांस्कृतिक कार्यक्रमों आदि

का कोई विशिष्ट वर्णन नहीं हुआ है। इसका कारण यह है कि यह उपन्यास आरम्भ से ही ऐसे तनाव भरे वातावरण में आगे बढ़ता है कि वहाँ समाज को ऐसे कामों के अवसर ही नहीं मिल पाते।

आर्थिक परिस्थिति—आर्थिक परिस्थिति बिल्कुल वही है जो आजकल भी है। मँहगाई और शोषण से समाज का निम्न और मध्यवर्ग बुरी तरह से परेशान है। निम्न और निम्न मध्य वर्ग के ईमानदार और परिश्रमी लोग सदैव आर्थिक अभावों से ग्रस्त रहते हैं। मास्टर राम लुभाया मास्टरी करते हैं, ट्यूशनें करते हैं, फिर भी घर में हमेशा पैसों का रोना पड़ा रहता है। जेल से लौटकर जयदेव भी ट्यूशन, अनुवाद आदि करने को बाध्य होता है, मगर फिर भी पूरा नहीं पड़ता। इसके विपरीत स्थिति उन लोगों की है जो बेईमान, रिश्वतखोर आदि हैं। जयदेव के ताऊ बाबू राम ज्वाया रेलवे में पार्सल क्लर्क हैं। खूब ऊपरी आमदनी करते हैं। दो मकान बनवा लिए हैं और ठाठ से रहते हैं तथा जयदेव आदि की गरीबी को नफरत और उपेक्षा की दृष्टि से देखते हैं। सोमराज के पिता तस्कर व्यापार कर समृद्ध बन गए हैं। समाज में गरीबों की कोई सुनवाई नहीं करता। पूरणदेई तीस वर्ष स्कूल में नौकरी करने पर भी केवल बीस रुपया मासिक पाती है।

उच्च मध्यवर्ग और उच्च वर्ग पर मँहगाई का कोई प्रभाव नहीं दिखाई पड़ता। डाक्टर प्राणनाथ, पंडित गिरधारी लाल, एडवोकेट महेन्द्र नैयर आदि सब ठाठ से रहते हैं। कोई व्यापारी है, कोई वकील और कोई सम्पन्न घराने का बुद्धिजीवी। बड़े-बड़े बँगलों और हवेलियों में रहते हैं, कारों पर चलते हैं। उन्हें आर्थिक अभाव रंचमात्र भी नहीं सताता। इस वर्ग के लोग सामान्यत: निर्धन वर्ग के लोगों को उपेक्षा की दृष्टि से देखते और उन्हें अपने बीच घुलने-मिलने देने से कतराते रहते हैं। नैयर, पंडित जी जयदेव को इसी कारण कनक के उपयुक्त पात्र नहीं समझते क्योंकि वह निर्धन है। व्यक्ति की सामाजिक स्थिति उसकी आर्थिक स्थिति से ही आँकी जाती है। निर्धन वर्ग के आगे पढ़ने के इच्छुक लड़के-लड़कियों को धनाभाव के कारण आगे बढ़ने में दिक्कत होती है। जयदेव को तारा को कालेज में दाखिल करवाने के लिए डाक्टर प्राणनाथ से सौ रुपए उधार लेने पड़ते हैं। कुछ धनी लोग, जो

भले स्वभाव के होते हैं, अपने सम्पर्क में आने वाले निर्धनों के प्रति कृपा भाव दिखाते हुए उनकी सहायता करने का प्रयत्न भी करते हैं। परन्तु जयदेव जैसे स्वाभिमानी निर्धनों को उनका यह कृपाभाव अपना अपमान प्रतीत होता है।

देश-विभाजन के उपरान्त पंजाव का यह समाज उजड़ और उखड़ कर नए स्थानों पर जा वसने को बाध्य होता है। सम्पन्न निर्धन बन जाते हैं और निर्धन तो निर्धन बने ही रहते हैं। परन्तु अव आर्थिक और उसके साथ ही सामाजिक स्थितियों में भी अन्तर आ जाता है। नैयर को जालन्धर में अपनी प्रेक्टिस जमानी पड़ती है। पंडित गिरधारी लाल दिल्ली में एक छोटा सा प्रेस और प्रकाशन खोलने को बाध्य होते हैं। बाधवामल नारंग शरण पाने के लिए जयदेव के पास जाते हैं। कनक को लखनऊ में नौकरी करनी पड़ती है। परन्तु उच्च वर्ग के धनी और प्रभावशाली लोग दूसरे स्थानों पर भी तुरन्त अपनी स्थिति बना लेते हैं। डाक्टर प्राणनाथ केन्द्रीय सरकार की नौकरी में चले जाते हैं। उनके पिता गोपालशाह सीतापुर में अपनी शुगर-मिल में पहुँच जाते हैं। जयदेव, रतन आदि जालन्धर और दिल्ली में अपने पैर जमा लेते हैं। जालन्धर में जयदेव और नैयर की सामाजिक स्थिति में कोई अन्तर नहीं रह जाता, इसलिए दोनों परस्पर मिलने और व्यवहार करने लगते हैं।

देश का जो वर्ग विभाजन से प्रभावित नहीं होता और सम्पन्न और धनी है, वह आजादी के बाद और भी अधिक सम्पन्न और प्रभावशाली हो जाता है। नैनीताल के क्लव में ऐसे लोगों का आजादी का उत्सव मनाने के लिए जमघट होता है। अव एक नई स्थिति उदय होती है। यह धनी वर्ग सरकारी अफसरों, मंत्रियों और नेताओं के घनिष्ठ सम्पर्क में आ जाता है और सरकार की अर्थ-नीति पर अपना गहरा प्रभाव डालना आरम्भ कर देता है। पुराने बेईमान लोग नेताओं के प्रभाव का स्तैमाल कर सरकार से सहायता ऐंठने का प्रयत्न करते हैं। सोमराज राजनीतिक-पीड़ित के रूप में, सूद जी की सिफारिश लेकर ऐसा ही प्रयत्न करता है। धनी वर्ग के गुर्गे और कट्टर समर्थक सूद जी जैसे प्रभावशाली नेता सरकार की समाजवादी आर्थिक योजनाओं का विरोध करते हैं। संक्षेप में देश की अर्थ-नीति पूँजीवादी रहती

है, जिसमें अमीर ज्यादा अमीर और गरीब ज्यादा गरीब बनते चले जाते हैं। यह अर्थ-नीति भ्रष्टाचार, रिश्वतखोरी, भाई-भतीजावाद, अन्याय और शोषण को बढ़ावा देती है। इस उपन्यास में समाज की जिस आर्थिक स्थिति का चित्रण किया गया है, वही आज भी उसी रूप में मौजूद है।

साम्प्रदायिक स्थिति—इस उपन्यास में जिस समय का वर्णन किया गया है वह साम्प्रदायिक तनाव का युग था। मुस्लिम लीग ने पाकिस्तान की माँग प्रस्तुत कर मुसलमानों में धार्मिक उन्माद का जहर भर दिया था। हिन्दू पाकिस्तान की माँग का विरोध कर रहे थे। इसलिए दोनों सम्प्रदायों में कटुता उत्पन्न हो गई थी। यह उपन्यास इसी वातावरण में आरम्भ होता है। लाहौर में पाकिस्तान समर्थक मुसलमान आन्दोलन करते हैं, जुलूस निकालते हैं। परन्तु प्रगतिशील विचारों के मुसलमान, जो या तो कांग्रेसी हैं, या कम्युनिस्ट, पाकिस्तान की माँग का विरोध करते हुए हिन्दू-मुसलमानों में पारस्परिक सौमनस्य और सद्भाव कायम रखने का प्रयत्न करते हैं। असद एक ऐसा ही मुसलमान है जो कम्युनिस्ट है। उधर अकाली नेता मास्टर तारासिंह तलवार चमकाते हुए पाकिस्तान की स्थापना का विरोध करते हैं। अनेक हिन्दू नवयुवक भी हिन्दूवादी होने के कारण मुसलमानों का सशस्त्र विरोध करने का प्रयत्न करते हैं। रतन आदि ऐसे ही हिन्दू नवयुवक हैं।

परन्तु विभाजन से पूर्व पढ़े-लिखे हिन्दू-मुसलमान आपस में खूब मिलते-जुलते और काम-काज करते हैं। जयदेव एक मुसलमान प्रकाशक का अनुवाद का काम करता है। असद, तारा, जयदेव, दर्शन, खन्ना, इन्दरदेव आदि हिन्दू मुस्लिम लड़के-लड़कियाँ परस्पर मिलते, गोष्ठियाँ और प्रेम भी करते हैं। एडवोकेट मिर्जा और नैयर पड़ोसी हैं। उनमें हिन्दू-मुस्लिम राजनीति को लेकर वाद-विवाद भी होते हैं परन्तु दोनों साथ-साथ कचहरी भी जाते हैं। इनमें हल्की सी छिपी हुई साम्प्रदायिक भावना के दर्शन होते हैं। और इस भावना का कारण है—अपने-अपने अस्तित्व की रक्षा की चिन्ता। उस युग में पंजाब और लाहौर में निम्न वर्ग के मुसलमानों में हिन्दुओ के प्रति विरोध और द्वेष होने का एक प्रमुख कारण आर्थिक भी था। लाहौर की पचहत्तर-अस्सी फीसदी जायदाद के मालिक हिन्दू थे। पंजाब के देहात में बड़े-बड़े

हिन्दू जमींदार और साहूकार थे जो सामान्य मुस्लिम जनता का शोषण करते थे और उनके साथ सामाजिक भेदभाव बरतते थे। इसी कारण विभाजन के समय पंजाब के सामान्य मुसलमान हिन्दुओं के प्रति अत्यन्त क्रूर और भयानक हो उठे थे। अँग्रेज सरकार, उसकी पुलिस और फौज भी उनकी सहायता और समर्थन कर रही थी। और इस साम्प्रदायिक मदान्धता का सबसे बड़ा शिकार हिन्दू स्त्रियों को होना पड़ा था।

मुसलमानों में भी असद और हाजी जी जैसे भले लोग थे। असद ने तारा सहित अनेक हिन्दू औरतों को मुसलमान गुण्डों के पंजे से छुड़ाया था। हाजी जी ने तारा को अपने यहाँ शरण दी थी और उसे समझा-बुझा कर मुसलमान बना लेने का प्रयत्न करते रहे थे। उन्हीं के लड़के ने उसे एक मुसलमान गुण्डे को सौंप दिया था। ऐसे मुसलमान गुन्डे हिन्दू औरतों को बेचने का धन्धा करने लगे थ। पंजाब के गाँवों और शहरों में से हिन्दू और सिखों को या तो मार डाला गया था या उनका सब कुछ छीन कर उन्हें भाग जाने के लिए मजबूर कर दिया गया था।

जो स्थिति पाकिस्तान में थी वैसी ही भारत में भी थी। यहां भी मुसलमानों के साथ वैसा ही क्रूर व्यवहार और उनका कत्लेआम कर उन्हें पाकिस्तान भाग जाने के लिए मजबूर किया जा रहा था। उनके काफिलों और रेलों पर हमले हो रहे थे। दिल्ली की भयानक स्थिति को देख, उसे रोकने के लिए महात्मा गांधी को आमरण अनशन करना पड़ा था। जो हिन्दू या मुसलमान अपने स्थानों को छोड़कर जाना नहीं चाहते थे, उन्हें भी भाग जाने के लिए मजबूर किया जा रहा था। इस प्रकार उस युग में सारा देश भयानक साम्प्रदायिक विद्वेष की ज्वाला में जल रहा था।

राजनीतिक स्थिति—हम पहले कह आए हैं कि यह उपन्यास एक प्रकार से राजनीति-प्रधान रहा है। सामान्य जनता साधारणतः राजनीति में रुचि नहीं लेती परन्तु समाज का पढ़ा-लिखा मध्य और उच्च वर्ग राजनीतिक दृष्टि से अधिक जागरूक और सक्रिय रहता है। हमें यही स्थिति इस उपन्यास में मिलती है। इसमें राजनीतिक वातावरण की प्रधानता रहने का एक प्रमुख कारण यह रहा है कि यह उपन्यास देश-विभाजन के परिणाम-स्वरूप उत्पन्न हुई नई

विषम परिस्थितियों की कथा कहता है, इसलिए इसमें राजनीति का स्वर सर्वप्रधान रहना स्वाभाविक ही था। इसकी कथा अपने प्रधान पात्र जयदेव, कनक, तारा आदि द्वारा राजनीतिक क्षेत्र में प्रवेश करती है। जयदेव युद्ध-विरोधी आन्दोलन में भाग लेने के कारण सन् १९४२ के आन्दोलन के सिलसिले में जेल भेज दिया जाता है और सन् १९४५ में अन्य राजनीतिक बन्दियों के साथ जेल से रिहा होता है। यशपाल यहीं से राजनीति के प्रति संकेत करने लगते हैं। उनके अनुसार—"जेल से उसकी रिहाई तो अगस्त १९४२ की क्रान्ति की विजय और भारत में अँग्रेज सरकार की पराजय के कारण नहीं हुई थी बल्कि दूसरे महायुद्ध में मित्रराष्ट्रों की विजय के साथ, अंग्रेजों की विजय के उपलक्ष में हुई थी। पुरी को देश की स्वतन्त्रता का लक्ष्य प्राप्त किए बिना भी जेल से मुक्ति पाकर सन्तोष और उत्साह ही अनुभव हुआ था।" एक प्रकार से यही इस उपन्यास की राजनीतिक पृष्ठभूमि है।

कनक ने भी सन् १९४२ की राजनीति में भाग लिया था। उसके पिता पंडित गिरधारी लाल स्वयं पुराने देशभक्त और उदार विचारों के थे। कनक खद्दर पहनती थी और राजनीतिक सभाओं और जुलूसों में भाग लेती थी। तारा भी आगे चल कर अपने भाई जयदेव के साथ राजनीतिक विचार गोष्ठियों में सम्मिलित होने लगी थी। कांग्रेस के नेता डाक्टर राधे बिहारी एक प्रकार से 'पैरोकार' अखबार के संरक्षक थे। 'पैरोकार' की नीति कांग्रेस समर्थक थी। जयदेव को पहले उसी में नौकरी मिली थी। डाक्टर प्राणनाथ पंजाब सरकार के आर्थिक परामर्शदाता और समाजवादी विचारों के समर्थक थे। असद, नरेन्द्र, सुरेन्द्र, कृष्णा, जुबेदा, गुर्द्र आदि हिन्दू-मुस्लिम लड़के-लड़कियाँ साम्यवादी विचारधारा और हिन्दू-मुस्लिम-एकता के समर्थक थे। इस प्रकार इस उपन्यास के अधिकांश प्रमुख पात्र प्रारम्भ से ही विभिन्न राजनीतिक विचारधाराओं के दिखाई पड़ते हैं।

लाहौर में प्रति सन्ध्या मुस्लिम-लीग के समर्थन में नारे लगाते हुए जुलूस निकलते हैं जिनमें लीग के स्वयंसेवक, कुछ मुस्लिम विद्यार्थी और मध्यम श्रेणी के युवक ही भाग लेते है। यह देखकर हिन्दू सहम जाते हैं। उन्हें भय होता है कि लीग का यह आन्दोलन आगे चल कर न जाने क्या रंग लाए।

लाहौर के हिन्दू और कांग्रेसी समाचार-पत्र सरकार को इस परिस्थिति से सावधान हो जाने की चेतावनी देते हैं। जयदेव 'पैरोकार' में टिप्पणी लिखता है—" साम्प्रदायिक उत्तेजना से भरी राजनीति और साम्प्रदायिक घृणा और द्वेष का तूफान क्षितिज पर उठ रहा है। यह तूफान सार्वजनिक नागरिक जीवन का अन्त कर देगा। उस समय हिन्दू-मुस्लिम इत्तहाद के नारे याद न रहेंगे....।" यह साम्प्रदायिक भावना और विचारों से उद्वेलित राजनीति का रूप है।

परन्तु इस राजनीति का एक आशावादी रूप भी उभरता है। मजदूर वर्ग में साम्यवादियों का प्रभाव है। मजदूरों के जुलूसों में हिन्दू-मुस्लिम-एकता, हिन्दुस्तान-पाकिस्तान, जिन्ना-महात्मा गाँधी—सभी के जिन्दाबाद के नारे लगने लगते हैं। मजदूर आत्म-निर्णय के अधिकार की माँग उठाते हैं। इससे कुछ आशा सी बँधती है। कम्युनिस्ट मुस्लिम-लीग की साम्प्रदायिक घृणा वाली नीति का विरोध करते हैं और जनता की मिनिस्ट्री बनाने की माँग उठाते हैं। परन्तु अंग्रेज सरकार के गुण्डे इन जुलूसों में शामिल होकर एकाएक हिन्दू-मुसलमानों में दंगे करवा देते हैं। कांग्रेसी पाकिस्तान की मांग का विरोध करते हैं और कम्युनिस्ट उस माँग को उचित समझते हैं। असद इसी बात पर बल देता हुआ जयदेव से कहता है—"हम मुल्क के बँटवारे का विरोध करते हैं। पाकिस्तान का मतलब क्या है, हिन्दुस्तान के एक सूबे में कांग्रेस की मिनिस्ट्री हो सकती है तो दूसरे में लीग की मिनिस्ट्री हो सकती है। यही हके-खुद-मुख्तियारी है। अब कांग्रेस बँटवारा स्वीकार कर रही है, पर हम बँटवारे के खिलाफ हैं।....हम तो लीग, कांग्रेस और सर्वसाधारण को समझाना चाहते हैं कि लीग-कांग्रेस की एकता हो।" कम्युनिस्टों का राजनीतिक स्थिति के प्रति यही दृष्टिकोण है। यह स्वस्थ दृष्टिकोण है। परन्तु कम्युनिस्ट लीग के असली उद्देश्य को भाँपने में असमर्थ रहते हैं, इसी कारण उनका यह जन-तांत्रिक प्रयास सफल नहीं हो पाता।

लाहौर में लीग का आन्दोलन धीरे-धीरे बढ़ता और उग्र होता चला जाता है। पंजाब की खिजिर-मिनिस्ट्री दफा १४४ लागू कर सभाओं और जुलूसों पर रोक लगा देती है। लीग के नेता इसके विरोध में अहिंसक सत्याग्रह करते हुए चले जाते हैं। लीग के जुलूसों में 'हिन्दू-मुस्लिम एक हों'

के नारे लगने लगते हैं । अन्त में लीग का दवाव अधिक वढ़ जाने पर खिजिर-मिनिस्ट्री इस्तीफा दे देती है और पंजाब में अंग्रेज गवर्नर का शासन हो जाता है । हिन्दू जानते हैं कि अंग्रेज लीग का समर्थक है, इसलिए उनमें आतंक छा जाता है । उधर लीग वाले पंजाब में लीग की मिनिस्ट्री कायम करने के लिए आन्दोलन छेड़ देते हैं । परन्तु गवर्नर इस मांग को स्वीकार नहीं करता । विरोधी दल भी जिसमें कांग्रेस, अकाली आदि शामिल हैं, लीग की मिनिस्ट्री का विरोध करते हैं । अकाली नेता मास्टर तारासिंह तलवार निकाल कर मुस्लिम लीग की ललकार का जवाव देते हैं । एक जलसे में अनेक हिन्दू वक्ता मुस्लिम-लीग के विरोध में उत्तेजक भाषण देते हैं । काँग्रेस के नेता डाक्टर गोपीचन्द भार्गव जनता को आश्वासन देते हैं कि पंजाब में मुस्लिम-लीग की मिनिस्ट्री नहीं वनने देंगे । एक लीगी अब्दुल का कहना था कि जिन्ना कहता है कि कांग्रेस मुसलमानों की नुमायन्दगी नहीं कर सकती, वह हिन्दुओं की जमायत है ।

उस समय स्थिति यह वन जाती है कि काँग्रेस और लीग का राजनीतिक झगड़ा हिन्दू और मुसलमानों का साम्प्रदायिक झगड़ा बन जाता है । राजनीति साम्प्रदायिक रूप धारण कर लेती है । लोगों की राय यह बन रही थी कि पंजाब में या तो हिन्दू और सिख रहेंगे या अकेले मुसलमान रहेंगे । अंग्रेज गवर्नर बिना हिन्दू और सिखों को शामिल किए लीग को मिनिस्ट्री बनाने की आज्ञा नहीं देता । इससे तनाव और बढ़ जाता है । छोटे-मोटे दंगे शुरू हो जाते हैं । पुलिस हिन्दुओं पर गोली चलाने लगती है । सारा पंजाब दंगों की आग से सुलग उठता है । पंजाब के पूर्वी और पश्चिमी भागों से भयभीत हिन्दू और मुसलमान अपने-अपने घर छोड़-छोड़ कर भागने लगते हैं । कम्युनिस्टों और शान्ति-कमेटियों की कोशिशों के बावजूद भी लाहौर में दंगे भड़क उठते हैं, कम्युनिस्ट उसके विरोध में एक विशाल जुलूस निकालते हैं और मजदूरों के सहयोग से क्षणिक शान्ति स्थापित हो जाती है ।

इसी अशान्त वातावरण में समाचार मिलता है कि कांग्रेस ने देश का विभाजन स्वीकार कर लिया है, परन्तु वह पूरा पंजाव और बंगाल पाकिस्तान को नहीं देना चाहती । लीग इन दोनों सूबों के साथ ही पश्चिमी पाकिस्तान और पूर्वी पाकिस्तान को मिलाने के लिए उत्तर-प्रदेश और बिहार में होकर गुजरते एक

गालियारे की माँग करती है। विभाजन को स्वीकार कर लेने से हिन्दू नेहरू-पटेल को गालियाँ देने लगते हैं। उनका कहना था कि कांग्रेस अवसरवादी है। नेहरू जेलों में रहते समय सन् ४२ के आन्दोलन को कांग्रेस की नीति के विरुद्ध बता रहे थे और सन् ४६ में जेल से निकलने पर अंग्रेजी सरकार को दबता हुआ देख सन् ४२ की क्रान्ति का सारा श्रेय कांग्रेस को सौंपने लगे थे। जून सन् ४७ के प्रथम सप्ताह में यह निर्णय हो जाता है कि पंजाब को बाँट कर आधा पश्चिमी पंजाब पाकिस्तान को दे दिया जायेगा। लाहौर किधर रहेगा, इस सम्बन्ध में कुछ भी नहीं कहा जाता। यह घोषणा होते ही लाहौर में दंगे फूट पड़ते हैं। अंग्रेज बड़ी गहरी कूटनीति से काम लेता है। डाक्टर प्राणनाथ इस कूटनीति का विश्लेषण इस प्रकार करते हैं—

"ब्रिटिश ब्यूरोक्रेट, एटली और माउन्टबेटन की स्कीम से खुश नहीं हैं। वे दिखा रहे हैं कि हिन्दुस्तान को सेल्फ गवर्नमेन्ट देना मूर्खता है। अंग्रेज खूब जानते हैं कि पार्टीशन से दोनों भाग लँगड़े हो जायेंगे। अब तक देश का बिकास इकाई के तौर पर हुआ है। अब पाकिस्तान इन्डस्ट्रियल गुड्स (औद्योगिक सामान) के लिए तरसेगा, शेष भाग कच्चे माल के लिए! बड़ा क्लेवर मूव (गहरी चाल) है। पश्चिम पंजाब की रुई, दूसरी पैदावार और पूर्वी बंगाल का जूट कहाँ जायेंगे? ब्रिटेन में न? इससे उनके मरते उद्योग जरा जिन्दा हो सकेंगे।"

अंग्रेज अपने इसी व्यापारिक स्वार्थ के लिए हिन्दुस्तान के विभाजन की योजना बनाता है। यह उनकी गहरी राजनीतिक चाल है और हिन्दुस्तान के नेता उसकी इस चाल में फँस विभाजन को स्वीकार कर लेते हैं। अंग्रेज इस विभाजन द्वारा सारे देश को कमजोर बना देना चाहता है और उसकी शह पाकर सारे देश में भयंकर हिन्दू-मुस्लिम दगे भड़क उठते हैं। लाहौर को लीग और कांग्रेस—दोनों ही अपने-अपने अधिकार में रखना चाहती हैं, इसलिए दोनों सम्प्रदाय वहाँ खूँरेजी, लूटमार और आगजनी का भयानक खेल खेलने में जुट जाते हैं। पुलिस और फौज मुसलमानों का साथ देती है। हिन्दू और सिख लाहौर छोड़-छोड़ कर पूर्वी पंजाब की ओर भागने लगते हैं। उधर पूर्वी पंजाब से शरणार्थी मुसलमानों के काफिले आने लगते हैं। ३० जुलाई, १९४७ को अखबारों में समाचार छपता है कि हिन्दुस्तान की स्वतन्त्रता और

पाकिस्तान की स्थापना के लिए १५ अगस्त, १९४७ की तारीख निश्चित कर दी गई है। साथ ही कांग्रेस और मुस्लिम लीग की घोषणायें भी प्रकाशित होती हैं कि हिन्दुस्तान में अल्पसंख्यक मुसलमानों की और पाकिस्तान में अल्पसंख्यक हिन्दू-सिखों के जानमाल की पूरी रक्षा की जिम्मेदारी नई सरकारें लेंगी। परन्तु कुछ लोगों को इनके क्रियान्वित होने में सन्देह रहता है।

अन्त में विभाजन हो जाता है और उसका दुखद परिणाम दोनों सम्प्रदायों के लाखों लोगों को अपना सब कुछ खोकर अनजान स्थानों पर शरण लेने के रूप में भुगताना पड़ता है। देश के बड़े-बड़े नेता आजादी मिल जाने पर लम्बे-लम्बे भाषण देते हैं। परन्तु शासन सम्हालते ही कांग्रेस को शरणार्थियों की भयानक समस्या का सामना करना पड़ता है। इस राजनीतिक-विभाजन के परिणाम-स्वरूप लाखों लोग दर-दर की ठोकरें खाते फिरते हैं।

उपन्यास के प्रथम भाग में राजनीतिक स्थिति यहीं आकर समाप्त हो जाती है। दूसरे भाग में राजनीति का एक नया रूप आरम्भ होता है।

दूसरे भाग की राजनीति—इस भाग में राजनीति एक नया रूप धारण करती है। कांग्रेस नेताओं में सत्ता प्राप्त करने के लिए गुटबन्दी शुरू हो जाती है। नेतागण दूसरों को उखाडने और स्वयं को जमाने में जुट जाते हैं। नई राजनीति का स्वरूप जयदेव से कहे गए सूद जी के इन शब्दों में स्पष्ट हो जाता है—

"पंजाब में मिनिस्ट्री बनाने का अवसर आया है तो यह लोग फिर सब कुछ अपने गुट्ट के हाथ में समेट लेना चाहते हैं। हाई कमान्ड ने तो क्या नाम सब कुल दो आदमियों के हाथ में दे दिया है। यह लोग क्या नाम जिम्मेदारी तो हमारे पूर्वी जिलों से चुने गए मेम्बरों पर डाल देना चाहते हैं और पावर सब अपने हाथ में ले ली है। हम भी देख लेंगे, कैसे गवर्नमेन्ट चला लेते हैं।"

राज्यों में यही गुटबाजी अखाड़ा जमा लेती है। इसका परिणाम यह निकलता है कि नेताओं का सारा ध्यान और समय अपनी स्थिति को मजबूत करने में लगने लगता है। वे अपने-अपने लोगों को लाभ पहुँचाने में लगे रहते हैं। जनता उपेक्षित रह जाती है। शरणार्थी व्याकुल और परेशान हैं। राजनीतिक दृष्टि से स्वतन्त्र हो जाने पर भारत के स्थायी निवासी प्रसन्न हो उठते हैं, परन्तु अपना सब कुछ खोकर आने वाले शरणार्थी दुखी और परेशान हैं। ये नए लोग भारतीय राजनीति

और विशेष कर राजाधानी दिल्ली की राजनीति में तूफान सा खड़ा कर देते हैं। ये पाकिस्तान और मुसलमानों के कट्टर शत्रु बन गये हैं। इनके समर्थन में एक भी बात सुनना सहन नहीं कर पाते। दिल्ली में आकर ये वहाँ के मुसलमानों को मार-मार कर भगाना शुरू कर देते हैं और उनके घर-जायदाद पर कब्जा कर लेते हैं। जो ऐसा नहीं कर पाते वे शरणार्थी कैम्पों में दिन गुजारने लगते हैं। जब महात्मा गांधी पाकिस्तान को पचपन करोड़ रुपए देने और साम्प्रदायिक शान्ति के लिए आमरण अनशन करने की घोषणा करते हैं तो शरणार्थियों में भयंकर रोष और क्षोभ छा जाता है। वे विरोध में आन्दोलन करते हैं। गांधी जी की प्रार्थना-सभा में एक शरणार्थी बम फेंकता है और इसके कुछ दिन बाद ही उग्र हिन्दूवादी महात्मा जी की हत्या कर डालता है।

धीरे-धीरे शान्ति छाने लगती है। कुछ वर्ष बाद सरकर शरणार्थी कैम्पों को भंग कर देने की घोषणा कर देती है। इससे पुन: आन्दोलन उठ खड़ा होता है। परन्तु दबा दिया जाता है।।

अब भारतीय राजनीति में कई नए रंग उभरते हैं। नेहरू समाजवादी व्यवस्था के समर्थक हैं अत: दूसरी पंचवर्षीय योजना में सरकारी उद्योगों की स्थापना करने पर बल देते हैं। परन्तु कांग्रेस के सूद जी जैसे नेता इस योजना का उग्र विरोध करते हुए पूँजीपतियों को ही नए उद्योग बढ़ाने देने की बात पर जोर देते हैं। ऐसे लोगों के कारण शासन में भ्रष्टाचार, पक्षपात आदि बढ़ने लगता है। सोमराज सम्बन्धी मामला इसका प्रमाण है। सूद जी डाक्टर प्राणनाथ के इसलिए कट्टर शत्रु बन जाते हैं क्योंकि डाक्टर ने उनकी पूँजीपतियों का समर्थन करने वाली बात नहीं मानी थी। दूसरी तरफ उच्च सरकारी अफसर सरकार की नीतियों का व्यक्तिगत रूप से विरोध करते हैं। रावत आदि इसके प्रमाण हैं। सन् १९५१ में आपसी मतभेदों के कारण पंजाब की कांग्रेस-मिनिस्ट्री को त्याग पत्र दे देना पड़ता है और वहाँ गवर्नर का शासन स्थापित हो जाता है। उपन्यासकार के शब्दों में, उस समय — "पंजाब ही क्या, सभी राज्यों की जनता, नये शासन में निधड़क कुनबापरस्ती, नोंच-खसोट और धांधली से निराश और खिन्न हो रही थी। अंग्रेजी सरकार के पुराने राय बहादुर और खैरख्वाह अमन-सभाई और सरकारी अमलदारी

से लाभ उठाने वाले लोग, कांग्रेस के मेम्बर बन कर सफेद नोकीली टोपी पहनने लगे थे। अब काँग्रेस का चन्दा चार-चार आने और रुपए-रुपए की रसीदों से इकट्ठा नहीं किया जाता था। चुनाव-फंड में चन्दा मिलों और कम्पनियों से बीस-चालीस हजार और लाख-दो लाख रुपयेके चैकों से आता था। कांग्रेस से सम्बन्ध रखने वाले जो लोग चार साल पहले सौ-सवासौ की नौकरियों से निर्वाह कर रहे थे, अब अपने सम्बन्धी के मन्त्री बन जाने या किसी महत्त्वपूर्ण कमेटी के मेम्बर बन जाने पर जहाँ-तहाँ हजार-बारह सौ पाने लगे थे।"

इससे आगे—"मुनाफे को ही धर्म समझने वाले बड़े-बड़े पूँजीपति काँग्रेसी लोगों के प्रति श्रद्धा और उदारता, घाटा उठा कर नहीं दिखा रहे थे। लोग धारा सभा के सदस्यों को एम. एल. ए. न कह कर घृणा से 'मैले' लोग कहने लगे थे। काँग्रेस के मुकावले में कोई दूसरा सशक्त राजनीतिक संगठन नहीं था। नए उठते संगठनों में से राष्ट्रीय स्वयं सेवक-संघ और कम्युनिस्ट पार्टी ने विद्रोह करके काँग्रेस सरकार को उन्हें कुचल डालने का कानूनी अवसर दे दिया था।"

इसी प्रकार, इसी स्थिति में, जनता में कांग्रेस के प्रति पनपते असन्तोष के साथ पाँच वर्ष बीत जाते हैं और सन् १९५७ के आम-चुनाव आ जाते हैं। कांग्रेस के नेता जनता को प्रभावित करने के लिए सन् १९५६ मे ही दूसरी पचवर्षीय योजना लागू कर देना चाहते थे। उपन्यासकार उस स्थिति का विश्लेषण करता हुआ कहता है कि—"कांग्रेस के प्रधान और कांग्रेसी सरकार के प्रधान मंत्री और उनके समर्थक नेता राष्ट्रीय साधनों से, राष्ट्रीय नियंत्रण में देश का औद्योगिक विकास करने की नीति और योजना द्वारा जनता का विश्वास और समर्थन पाने को आशा में थे। अनेक प्रभावशाली कांग्रेसी नेता योजना के इसी रूप के कारण जनता के विमुख हो जाने की आशका में थे। कांग्रेस के प्रधानमंत्री, कांग्रेस के प्रकाशनों द्वारा जनता को सान्त्वना दे रहे थे कि कांग्रेस की सोशलिस्टिक पालिसी (समाजवादी ढंग की नीति) के प्रस्तावों का लक्ष्य पश्चिम का समाजवाद नहीं है। उसका प्रयोजन स्वतंत्र-निजी व्यवसाय की नीति को सोशलिस्ट टोटेलिटेरियनिज्म (समाजवादी समुच्चय) के भय से बचाना है। देश के प्रमुख समाचार-पत्र बड़े-बड़े व्यवसा-

यियों की सम्पत्ति थे। ऐसे अधिकांश पत्र, राष्ट्रीय साधनों द्वारा, राष्ट्रीय नियंत्रण में औद्योगिक विकास को राष्ट्र-हित के लिए घातक बता रहे थे।''

यहीं से कांग्रेस के उस आन्तरिक संघर्ष और संकट के बीज पनपने लगते हैं जो आज एक विशाल वट वृक्ष का रूप धारण कर कांग्रेस के अस्तित्व तक को खतरे में डाले हुए है। उपर्युक्त विश्लेषण से स्पष्ट हो जाता है कि कांग्रेस मिश्रित अर्थ-व्यवस्था का लक्ष्य लेकर आगे बढ़ी थी। शासन की यह स्थिति थी कि उसमें ऊपर से लेकर नीचे तक सभी लोग अनुचित लाभ उठा रहे थे। सुरक्षा के लिए सरकारी और गैर-सरकारी कर्मचारियों की यूनियनें बनने लगी थी। पूँजीपतियों के समर्थक यह कहने लगे थे कि नई योजना सीधी-सादी कम्युनिज्म की धमकी है।

कम्युनिस्ट शासन और शासन की नीतियों से असन्तुष्ट थे। वह जनता में, कमकर जनता में, क्रान्ति की भावना जगाने का प्रयत्न कर रहे थे। उनका कहना था कि—'बूर्जुआ डैमोक्रेटिक रेवोल्यूशन का हमारे देश में प्रश्न ही नहीं है। यहाँ पोलिटिकल पावर फ्यूडल या जमींदार क्लास के हाथ में नहीं है, कैपिटलिस्टों के हाथ में है। हमारा टास्क लैंडलैस पेजेन्टरी और वर्किंग क्लास (बेजमीन के किसानों व मजदूरों) को लेकर पोलिटिकल पावर पर कब्जा करना है।'' कम्युनिस्टों का कहना था कि अमेरिका-ब्रिटेन हमें अपना आश्रित बनाए रखने के लिए सहायता दे रहे हैं। कुछ कम्युनिस्ट कम्युनिस्टों के समाजवादी लक्ष्यों का समर्थन करते थे परन्तु विदेशों से, रूस और चीन से प्रेरणा और सहायता प्राप्त करने की पार्टी की नीति पर उन्हें भयंकर आपत्ति थी। वह भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी को स्वतंत्र राष्ट्रीय संगठन, अन्तरराष्ट्रीय कम्युनिस्ट संगठन का आनुषंगिक अंश ही मानते थे। उन्हें आपत्ति थी कि कम्युनिस्ट पार्टी की नीति अपनी राष्ट्रीय परिस्थितियों की चेतना से नहीं, अन्तरराष्ट्रीय कम्युनिस्ट आन्दोलन की स्ट्रेटेजी (दाँव पेच) के आधार पर बनती है। उपन्यास में माथुर और तिवारी इसी विचारधारा के कम्युनिस्ट हैं और चड्ढा आदि विदेशी प्रेरणा और सहायता लेने के समर्थक कम्युनिस्ट हैं।

इस सम्पूर्ण राजनीतिक परिस्थिति का परिणाम यह निकलता है कि जनता का असन्तोष और तकलीफें निरन्तर बढ़ती जाती हैं। जनता का

शोषित और उपेक्षित वर्ग, विशेष रूप से युवा-वर्ग कांग्रेस के सूद जी जैसे पूँजीपतियों के समर्थक नेताओं से खार खा जाता है और सूद जी सन् १९५७ के आमचुनाव में सत्रह हजार वोटों से हार जाते हैं। यह पूँजीवाद पर जनता की विजय का प्रतीक है। और उपन्यासकार अन्त में इस उपन्यास की सम्पूर्ण राजनीति का निचोड़ डाक्टर प्राणानाथ के मुँह से इन शब्दों में व्यक्त करवा देता है कि—"गिल, अब तो विश्वास करोगे, जनता निर्जीव नहीं है। जनता सदा मूक भी नहीं रहती। 'देश का भविष्य' नेताओं और मंत्रियों की मुट्ठी में नहीं है, देश की जनता के ही हाथ में है।"

निष्कर्ष

'झूठा सच' उपन्यास में वर्णित विभिन्न परिस्थितियों का उपर्युक्त विवरण और विश्लेषण एक ऐसे वातावरण की सृष्टि करता है जो पूर्णतः सत्य, यथार्थ और ऐतिहासिक था। हिन्दी के किसी भी अन्य उपन्यास में वर्णित युग की परिस्थितियों और उनके द्वारा निर्मित वातावरण का ऐसा यथार्थ और प्रभावशाली वर्णन नहीं मिलता। इस उपन्यास की श्रेष्ठतम उपलब्धि इसी वातावरण-निर्माण को माना जा सकता है। यह वातावरण ऐतिहासिक दृष्टि से पूर्णतः सत्य है। इस उपन्यास की कथा और उसके पात्र इस वातावरण को प्रस्तुत करने के निमित्त मात्र रहे हैं। इसी कारण हमने इसे परिस्थिति-प्रधान उपन्यास माना है। इसमें यशपाल की राजनीतिक दृष्टि और राजनीतिक स्थिति के सन्दर्भ में अन्य स्थितियों का घनिष्ठ तादात्म्य हिन्दी उपन्यास साहित्य की एक अभूतपूर्व उपलब्धि है।

प्रश्न १३—'झूठा सच' उपन्यास के लिखने में उपन्यासकार का क्या मूल उद्देश्य रहा है? यशपाल की विचारधारा के सन्दर्भ में इसका उत्तर दीजिए।

प्रश्न १४—" 'झूठा सच' उपन्यास नितान्त सोद्देश्य और एक निश्चित विचारधारा के अनुसार लिखा गया है।" क्या आप इस मत से सहमत हैं? विवेचन कीजिए।

उत्तर :

उपन्यास रचना और उद्देश्य

कथा-साहित्य का एक अंग होने के कारण उपन्यास एक मनोरंजन करने वाला साधन माना जाता है। परन्तु साहित्य का अंग होने के कारण उसके

द्वारा किया गया मनोरंजन सोद्देश्य, उदात्त, कलापूर्ण और मानव के हित के लिए ही होता है। यही श्रेष्ठ साहित्य का मूल उद्देश्य माना गया है। साहित्य, प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूप से 'सुझाव' देता है, जिसे कुछ लोग 'उपदेश' भी कहते हैं। साहित्य द्वारा दिया गया यह सुझाव प्रिया-पत्नी द्वारा दिए गए सुझाव के समान प्रच्छन्न, सम्वेदनशील, मनोरम और उदात्त होता है। उसमें अहंकार या श्रेष्ठता की कटुता और विरोध उत्पन्न कर देने वाली भावना नहीं होती। इसीलिए साहित्य के माध्यम से दिया गया सुझाव या उपदेश अधिक प्रभावशाली, सौम्य और रोचक होता है। प्रत्येक लेखक या कवि किसी न किसी उद्देश्य को सामने रख साहित्य-सृजन करता है। कुछ का उद्देश्य अपने पाठकों का मात्र मनोरंजन करना रहता है। और यह मनोरंजन भी मात्र हँसा देने या चमत्कृत कर देने तक ही सीमित रहता है। साहित्य की दृष्टि से ऐसी रचनाओं को श्रेष्ठ नहीं माना जाता। मनोरंजन के मूल में कोई अच्छा, सुन्दर, उदात्त विचार या सुझाव रहने पर ही उस रचना को श्रेष्ठ साहित्यिक कलाकृति माना जाता है। और यही विचार या सुझाव उस रचना का प्राण-तत्त्व होता है। इसलिए श्रेष्ठ साहित्यकार मानव के कल्याण और हित को अपनी दृष्टि में प्रधान स्थान दे अपने-अपने दृष्टि-कोण के अनुसार प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष सुझाव दिया करते हैं। उपन्यास कथा-साहित्य का एक सशक्त अग होने के कारण यही काम रोचक ढंग से करता है। उपन्यास चाहे आदर्शवादी हो या यथार्थवादी, उसमें कोई-न-कोई उद्देश्य अवश्य निहित रहता है। अन्तर केवल इतना होता है कि आदर्शवादी भूख से रोते किसी बालक को खिलौना देकर क्षण भर के लिए बहला कर चुप कर देता है जबकि यथार्थवादी उस भूखे बालक को अपनी भूख बुझाने के लिए प्रयत्नशील होने को प्रेरित करता है। अस्तु,

'झूठा सच' एक सोद्देश्य रचना

'झूठा सच' एक उपन्यास है। इसकी कथा और प्रमुख पात्र कल्पित हैं। इसमें यशपाल ने वास्तविक, यथार्थ परिस्थितियों के माध्यम से भारतीय-इतिहास के उस एक दशक की कथा कही है जो भारतीय-इतिहास का एक अत्यन्त महत्वपूर्ण दशक रहा है। इस दशक (दस वर्ष का समय) में शताब्दियों की गुलामी के उपरान्त देश को स्वतंत्रता मिली थी और साथ ही उसका

अंग-भंग भी कर दिया गया था, देश को भारत और पाकिस्तान के दो टुकड़ों में काट दिया गया था। हम इतिहास-ग्रन्थों में इस घटना का, इतिहासकारों के अपने-अपने दृष्टिकोण के अनुसार लिखा हुआ वर्णन पढ़ते हैं। यह इतिहास पाकिस्तान में भिन्न रूप में, भारत में कांग्रेस द्वारा उससे नितान्त भिन्न रूप में, हिन्दूवादियों द्वारा उससे भी अधिक भिन्न रूप में लिखा हुआ मिलता है। यह सारा लिखा हुआ इतिहास अनिरंजित है। इसे इसके यथार्थ रूप में लिखने के लिए एक निष्पक्ष और तटस्थ दृष्टिकोण की आवश्यकता महसूस की जा रही थी। और इस इतिहास को वही व्यक्ति उसके यथार्थ रूप में लिखने में समर्थ हो सकता था जिसके पास उस इतिहास की घटनाओं से प्रभावित सामान्य जनता के दुख-दर्दों, आशा-आकांक्षाओं और इतिहास को उसके सही रूप में समझने की दृष्टि और उसे चित्रित करने की शक्ति और सामर्थ्य हो। यह दृष्टि और शक्ति-सामर्थ्य 'झूठा सच' के रचयिता यशपाल में पर्याप्त अपेक्षित मात्रा में दिखाई पड़ी, उनका यह उपन्यास इसका प्रमाण है। जनता को वही कलाकार समझने में समर्थ होता है, जिसके पास यथार्थवादी दृष्टि होती है। और यशपाल हिन्दी के ऐसे ही कलाकार हैं।

'झूठा सच' की रचना में यशपाल का मूल उद्देश्य उन कारणों और परिस्थितियों का चित्रण और विवेचन करना रहा है, जो देश-विभाजन के लिए उत्तरदायी थीं। साथ ही उनका उद्देश्य, उस विभाजन द्वारा समाज के किस वर्ग को क्या मिला और क्या खोना पड़ा था, इसका सम्वेदनशील चित्रण करना भी रहा है। यह उपन्यास यह बताने में पूर्ण समर्थ रहा है कि राजनीति साम्प्रदायिकता को अपना हथियार बनाकर कैसे-कैसे गुल खिलाती है, समाज के स्वार्थी नेता किस प्रकार अपनी और अपने वर्ग की स्वार्थ-सिद्धि के लिए कैसे-कैसे हथकंडे अपनाते हैं। यथार्थ की कटुता के भुक्तभोगियों का यह कहना है कि सन् १९४७ में हिन्दुस्तान को आजादी अवश्य मिली थी, परन्तु वह समाज के एक विशिष्ट वर्ग और उसके समर्थकों को ही मिली थी; जनता पहले भी गुलाम, शोषित और पीड़ित थी, आजादी के बाद भी गुलाम, शोषित और पीड़ित ही बनी रही, बल्कि उसके दुख और चिन्ता पहले से अधिक बढ़ गए। यह उपन्यास प्रकारान्तर से इसी ऐतिहासिक सत्य का उद्घाटन करता है और ऐसा करना ही इसका उद्देश्य रहा है।

मूल प्रेरक उद्देश्य

उपर्युक्त उद्देश्य या उद्देश्यों के साथ यशपाल का एक उद्देश्य यह दिखाना रहा है कि देश का भविष्य जनता की प्रगतिशील शक्तियों में ही निहित है। देश का भविष्य केवल मंत्रियों और नेताओं के हाथ में नहीं रहता। जनता निर्जीव नहीं होती। देश के प्रगतिशील लोग स्वार्थी और भ्रष्ट नेताओं, अधिकारियों, पूँजीपतियों आदि के विरुद्ध संगठित मोर्चा बना अन्त में उन्हें अपदस्थ करने में समर्थ और सफल रहते हैं। जब जनता को अधिक दबाया और सताया जाता है तो वह सदैव मूक न बनी रह कर विद्रोह कर देती है। सूद जी जैसे भ्रष्ट नेताओं को जनता की संगठित शक्ति अन्ततः उखाड़ ही फेंकती है। यशपाल ने इस उपन्यास में यह दिखाया है कि प्रगतिशील विचारों वाले नवयुवक किस प्रकार जनता की असली समस्याओं और उसके दुख-दर्द तथा आशा-आकांक्षाओं को सही रूप में समझते हुए, संगठित हो समाज के स्वार्थी तत्त्वों और भ्रष्ट राजनीतिज्ञों के खिलाफ मोर्चा बना जनता को परस्पर संगठित बनाए रखने के लिए प्रयत्न करते हैं। इसके साथ ही उन्होंने यह भी दिखाया है कि स्वार्थी और अदूरदर्शी नेता तथा भ्रष्ट शासक अपनी मूर्खताओं और षडयंत्रों द्वारा किस प्रकार जनता को गुमराह कर उसके विनाश के बीज बो देते हैं। इस उपन्यास द्वारा यशपाल जनता को यह सन्देश दे रहे हैं कि उसे संगठित होकर ऐसे लोगों का विरोध और विनाश करना चाहिए, तभी देश का भविष्य उज्जवल और सुरक्षित रह सकेगा। प्रगतिशील जनता के सामूहिक प्रयत्नों के फलस्वरूप आम-चुनावों में सूद जी की करारी हार होना कोई कल्पित कथा नहीं है, यद्यपि सूद जी कल्पित पात्र अवश्य हैं। भारत के द्वितीय आम चुनावों में, जो सन् १९५७ में हुए थे, अनेक राज्यों के सूद जी जैसे पूँजीपतियों के समर्थक भ्रष्ट परन्तु अत्यन्त प्रभावशाली अनेक बड़े-बड़े नेता हार गए थे, यह ऐतिहासिक सत्य है।

यथार्थ का चित्रण और विशिष्ट उद्देश्य

उपन्यासकार सामाजिक यथार्थ का चित्रण अपने सामने किसी विशिष्ट उद्देश्य को रख कर ही करता है। वह इसके लिए व्यक्ति और समाज—दोनों की बाह्य और आन्तरिक (मानसिक) स्थितियों का चित्रण करता हुआ अपने पाठकों में उन स्थितियों के प्रति स्वानुभूति और सम्वेदना जाग्रत करने का

प्रयत्न करता है। यह कार्य वह यथार्थ चित्रण के माध्यम से करता है। क्योंकि बिना यथार्थ का चित्रण किए अपने पाठकों में स्वानुभूति और सह-अनुभूति जाग्रत करता असम्भव है। इस चित्रण को पढ़ कर पाठकों में अपनी और समाज की परिस्थितियों को समझने और उन्हें बदलने की इच्छा जाग्रत होती है। पाठकों में इस इच्छा को जाग्रत करना ही उपन्यासकार का मूल लक्ष्य और विशिष्ट उद्देश्य रहता है। यशपाल ने अपने उपन्यास 'झूठा सच' में परिस्थितियों का यथार्थ मार्मिक चित्रण कर अपने पाठकों में इसी इच्छा को जाग्रत करने का प्रयत्न किया हैं और इसी को उनका मूल उद्देश्य माना जा सकता है। इस सम्वन्ध में यह विशेष रूप से द्रष्टव्य है कि उपन्यास के अनेक युवा पात्र आरम्भ से अन्त तक साम्राज्यवाद, सम्प्रदायवाद, पूँजीवाद और दलगत स्वार्थ के विरुद्ध अथक संघर्ष करते रहे हैं। ये सभी पात्र प्रगतिशील विचारधारा के हैं। आरम्भ में वे आत्म-निर्णय के सिद्धान्त को स्वीकार करते हुए उग्र सम्प्रदायवाद का विरोध करते हुए हिन्दू-मुस्लिम एकता का प्रयत्न करते हैं। उपन्यास के दूसरे भाग में उनका सरकार की, कांग्रेस के पूँजीपतियों के समर्थक नेताओं की प्रतिक्रियावादी हरकतों से विरोध रहता है। और इस विरोध का परिणाम और विजय सूद जी की हार के रूप में सामने आते हैं।

जो युवक समाजवादी सिद्धान्तों में दृढ़ आस्था नहीं रखते, वे प्रगतिशील विचारधारा के होते हुए भी ढुल-मुल अस्पष्ट नीति और विचारों वाले रहते हैं। रतन आदि तो उग्र हिन्दूवादी हैं ही। उनके हिंसात्मक कार्यों का परिणाम उनकी गली वालों को मुसलमानों के आक्रमण के रूप में भुगतना पड़ता है। जयदेव पुरी प्रगतिशील विचारधारा का अवश्य है। कम्युनिस्टों की गोष्ठियों में भाग लेता है। परन्तु उसके विचारों में तारतम्य नहीं दिखाई पड़ता। उसमें तर्क और सिद्धान्त के प्रति आग्रह की अपेक्षा भावुकता का ही प्रभाव अधिक दिखाई पड़ता है। कभी वह कम्युनिस्टों की आलोचना करता है और कभी कांग्रेस की। वह हिन्दू-मुस्लिम एकता का समर्थक होते हुए भी अपनी बहन तारा का मुसलमान असद के प्रति आकर्षण को सहन नहीं कर पाता। अपना गुजारा करने के लिए ट्यूशन, अनुवाद, नौकरी आदि करने वाला जय-देव, इतने कष्ट और संघर्ष झेलने के बाद भी कांग्रेसी सूद जी के प्रभाव में

आकर पूँजीवाद का समर्थक बन जाता है, जनता के दुख-दर्द को भुला देता है। ढुलमुल यकीनी व्यक्ति को स्वार्थी बना देती है। इसके विपरीत समाजवादी विचारधारा में दृढ़ आस्था रखने वाले गिल, चड्ढा आदि जनता के अधिकारों के लिए निरन्तर संघर्ष करते रहते हैं। इनके विचारों और कार्यों में आरम्भ से अन्त तक दृढ़ता रहती है। जुबेदा और प्रद्युम्न लाहौर में कम्युनिस्ट दल के सदस्य थे। उनमें परस्पर आकर्षण था। देश का विभाजन हो जाने के बाद वे दोनों परस्पर विवाह कर लेते हैं। जबकि जयदेव उर्मिला और कनक दोनों के ही प्रति सच्चा नहीं रह पाता। चरित्र की यह दृढ़ता और अस्थिरता विचारों के कारण ही आती है।

प्रगतिशील विचारधारा : एक प्रश्न

एक आलोचक ने यह लिखा है कि यशपाल ने अपने इस उपन्यास द्वारा प्रगतिशील विचारधारा का अर्थात् साम्यवादी विचारधारा का प्रचार करने का प्रयत्न किया है। अर्थात् यशपाल का उद्देश्य कम्युनिज्म का प्रचार करना रहा है। ऐसे आलोचकों से हम यह पूछना चाहते हैं कि यदि यशपाल ने ऐसा किया है, तो इसमें बुराई कौन सी है। बुराई यह उन लोगों को लगती है जो साम्यवाद से डरते हैं, साम्यवाद के आने से जिनके स्वार्थ खतरे में पड़ जायेंगे। ऐसे ही लोगों ने गलत प्रचार कर-कर के साम्यवाद को एक हौआ-सा बना रखा है। अगर कोई लेखक जनता की शक्ति की, उसके संघष की, दुख-दर्द और प्रभाव की तथा तथाकथित बड़े लोगों, धनियों, शोषकों, भ्रष्ट और अत्याचारियों की बात करता है, तो ऐसे लोगों को ये बातें अच्छी नहीं लगती। उन्हें अपने लिए खतरा दिखाई देने लगता है, इसीलिए ऐसे भ्रष्ट और बेईमान लोग सत्यवादी विचारधारा की प्रगतिशील बातों को सहन नहीं कर पाते। यशपाल ने अपने इस उपन्यास में कांग्रेस की दोमुँही नीति, झुक कर समझौता करने की प्रवृत्ति, पद-लोलुपता, भ्रष्टाचार, बेईमानी, अनैतिकता, पूँजीवाद का समर्थन आदि को बड़े विस्तार के साथ अंकित किया है। आजादी के बाद देश का शासन कांग्रेस के ही हाथ में रहा है। यह उपन्यास अपने विवरण और विश्लेषण द्वारा यह ध्वनि दे रहा है कि भ्रष्ट, अवसरवादी और सत्ता लोलुप कांग्रेसियों के हाथ में देश का भविष्य सुरक्षित नहीं है। देश का भविष्य देश की साधारण

जनता के हाथ में सुरक्षित है। और देश के प्रगतिशील विचारों वाले युवक ही इस जनता के अभावों और दुख-दर्दों को समझते हैं तथा उसे संगठित कर अन्याय और अत्याचार के विरुद्ध एक मजबूत मोर्चा खड़ा कर सकते हैं। वस्तुतः यह प्रगतिशील और प्रतिक्रियावादी शक्तियों के संघर्ष का युग है। यह संघर्ष देश की आजादी से बहुत पहले से ही आरम्भ हो चुका था और आज भी चल रहा है। यदि यशपाल ने अपने इस उपन्यास में प्रगतिशील विचारधारा और शक्तियों का समर्थन किया है, उनका संगठित, श्रेष्ठ और दृढ़ रूप दिखाया है तथा प्रतिक्रियावादियों का, जो मूलतः भ्रष्टाचारी होते हैं, विरोध किया है, तो आखिर ऐसा कौन-सा गुनाह कर दिया है। जनता की भलाई की बात करना यदि गुनाह है, तो यशपाल को अवश्य अपराधी माना जा सकता है।

इस देश की वर्तमान राजनीति तो यह है कि जो व्यक्ति या व्यक्ति-समूह जनता की 'हाय रोटी' की समस्या को सुलझाने की बात करता है, उसे देश-द्रोही और विदेशी एजेन्ट घोषित कर दिया जाता है। इसके विपरीत शोषक प्रतिक्रियावादी व्यक्ति या व्यक्ति-समूह खद्दर पहन, महात्मा गांधी की दुहाई देता हुआ 'हाय रोटी' की समस्या को गौण और घृणित मान भारत, भारतीय संस्कृति और धर्म की दुहाई देता है उसे देशभक्त कहा जाने लगता है। यशपाल ने अपने इस उपन्यास में 'हाय रोटी' और 'हाय देश'—इन दोनों नारों के असली रूप को उघाड़ कर रख दिया है। और यही उनका उद्देश्य रहा है।

उद्देश्य का स्पष्ट रूप

इस उपन्यास के दूसरे भाग में यशपाल का वास्तविक उद्देश्य स्पष्ट हुआ है। पहला भाग उस उद्देश्य की पृष्ठभूमि है। पृष्ठभूमि में देश का विभाजन हो जाता है भारत का शासन कांग्रेस के हाथ में आ जाता है। इस नए शासन पर देश का भविष्य निर्भर करता है। कांग्रेस जिस ढंग से देश का शासन करती है, उसे देखते हुए यह प्रश्न उठ खड़ा होता है कि क्या देश का भविष्य इस शासन के हाथ में सुरक्षित है ? इसका उत्तर देने के लिए यशपाल ने दूसरे भाग में कांग्रेस और शासन के तत्कालीन रूप, दोनों में व्याप्त अन्तर्विरोधों और कांग्रेस की दलगत गुटबन्दी का सच्चा कच्चा चिट्ठा खोल कर सामने रख दिया है। इस दूसरे भाग को पढ़ कर ज्ञात होता है कि

कांग्रेस द्वारा शासन सम्हालते ही कट्टर अंग्रेज भक्त और अमन-सभाई लोग खद्दर पहन कांग्रेस में घुस आते हैं। इन लोगों में से अधिकांश पूँजीपति हैं। कांग्रेस के नेता और मंत्री इनके यहाँ ठहरते हैं। प्रसिद्ध पूँजीपति मिस्टर अगरवाला को दिल्ली में होने वाले कांग्रेस महासमिति के अधिवेशन का उप-स्वागताध्यक्ष बनाया जाता है। उनके यहाँ बड़े-बड़े कांग्रेसी नेताओं और सरकार के बड़े-बड़े अफसरों का जमघट लगा रहता है। और यह स्वाभाविक है कि अपने इस सम्पर्क द्वारा ऐसे पूँजीपति सरकार से अनुचित लाभ उठाने का प्रयत्न करते हैं।

देश की आजादी के साथ देश का शासन-सूत्र काँग्रेस के हाथ में आ जाता है, परन्तु उच्च सरकारी अफसर वही रहते हैं, जो अँग्रजी शासन में थे। ये लोग नई सरकार की नई जनवादी नीतियों के साथ मन से सहयोग नहीं देते। होम सेक्रेटरी मिस्टर रावत इसके प्रमाण हैं। वह अपने व्यक्तिगत मित्रों के साथ बैठकर सरकार की नीतियों की खुलकर आलोचना करते हैं। जब सरकारी नीतियों और कार्यक्रमों को पूरा करने का दायित्व निबाहने वाले उच्च अधिकारी ही उनके विरोधी हैं तो सरकार लोक-कल्याण के कार्य सफलता-पूर्वक कैसे कर सकती है? स्वयं कांग्रेस में सत्ता और पद का मोह बढ़ जाता है। उसके नेता अपना प्रभाव बढ़ाने और सत्ता पर अधिकार करने के लिए आपस में लड़ने लगते हैं। कांग्रेस में सूद जी जैसे भ्रष्ट नेताओं का प्रभाव बढ़ने लगता है। वस्तुतः यशपाल ने सूद जी को कांग्रेस के भ्रष्ट नेताओं के प्रतीक रूप में प्रस्तुत किया है। वह अपनी शक्ति बढ़ाने के लिए पूँजीपतियों से पैसा लेते हैं, इसलिए समाजवादी नीतियों और योजनाओं का खुलकर विरोध करते हैं। इनका प्रभाव केन्द्रीय सरकार के उच्चाधिकारियों पर छा जाता है। सूद जी जैसे लोग अपने समर्थकों की हर प्रकार से सहायता करते हैं। सोमराज जैसा लफंगा भी सूद जी से राजनीतिक-पीड़ित होने का झूठा प्रमाण-पत्र प्राप्त कर लेता है। सूद जी डाक्टर प्राणनाथ जैसे समाजवादी विचारों वाले सरकारी परामर्शदाताओं को लालच और धमकी देकर समाजवादी योजनाओं के विरुद्ध कार्य करने के लिए उकसाते हैं और असफल होने पर डाक्टर को बर्बाद कर देने का षड्यंत्र रचते हैं। भ्रष्ट सरकारी अधिकारी सूद जी जैसे भ्रष्ट नेताओं के इशारों पर कार्य करते हैं। दूसरी तरफ लखनऊ के अवस्थी जी उन काँग्रेसियों के प्रतीक हैं जो चरित्र-भ्रष्ट हैं।

कॉंग्रेस के प्रधान मंत्री समाजवादी विचारों के हैं। वह बड़ी ऊँची-ऊँची बातें करते हैं और जनता को उपदेश देते हैं। परन्तु उनके मंत्रिमंडल के साथी मंत्री तक उनकी बात नहीं मानते। प्रधान मंत्री के न चाहने पर भी उनका पुनर्वास मंत्री शरणार्थी-कैम्पों को समाप्त कर देता है। सूद जी जैसे नेता उनकी समाजवादी आर्थिक नीतियों और योजनाओं का विरोध करते हैं। इसलिए प्रधान मंत्री की कोई भी योजना सफल नहीं हो पाती। दूसरी पंचवर्षीय योजना, आगामी चुनावों में कॉंग्रेस के लिए जनता के वोट बटोरने के लिए ही बनाई जाती है। कांग्रेस का यह अन्तर्विरोध उसके प्रभाव को कम कर देता है। जनता में सरकार के विरुद्ध असन्तोष और क्षोभ बढ़ता जाता है। इसका परिणाम सूद जी की करारी हार के रूप में सामने आता है। यह सब दिखाकर यशपाल यह संकेत देते हैं कि देश का भविष्य कॉंग्रेस के हाथ में सुरक्षित नहीं है। देश का भविष्य जनता की उन जनवादी शक्तियों के हाथ में ही सुरक्षित रह सकेगा जो सूद जी को हराने में सफल होती हैं।

निष्कर्ष

उपर्युक्त विश्लेषण से यह स्पष्ट हो जाता है कि इस उपन्यास की रचना में यशपाल का उद्देश्य अपने पाठकों को यह बताना रहा है कि किन लोगों की कमजोरियों, स्वार्थपरता, अज्ञानता और पद-लोलुपता के कारण देश का विभाजन हुआ था, जिसका भयंकर परिणाम बर्बादी के रूप में जनता को भोगना पड़ा था। साथ ही उन्होंने दूसरे भाग में यह बताया है कि आजादी चन्द लोगों के लिए ही सौभाग्य और सुविधा लेकर आई थी। शेष जनता पहले के ही समान शोषित और पीड़ित बनी रही थी। आजादी के बाद देश का शासन भ्रष्ट और अवसरवादी नेताओं और अफ़सरों के हाथ में आ गया था जिन पर पूँजीपतियों का गहरा प्रभाव था। जनता उस समय भी इस शासन का उसी प्रकार विरोध कर रही थी, जैसे आज कर रही है। यह सब दिखाकर यशपाल यह सन्देश देते प्रतीत होते हैं कि प्रगतिशील लोगों को जन-शक्ति को संगठित कर ऐसे भ्रष्ट शासन को उखाड़ फेंकना चाहिए। हमारी दृष्टि में इस उपन्यास की रचना में यशपाल का मूल उद्देश्य यही सन्देश देना रहा है।

प्रश्न १५—भाषा-शैली की दृष्टि से 'झूठा सच' की आलोचना कीजिए।

प्रश्न १६—"'झूठा सच' में प्रयुक्त भाषा-शैली उसमें चित्रित वातावरण के नितान्त अनुरूप है।"—विवेचन कीजिए।

प्रश्न १७—" 'झूठा सच' में भाषा-शैली का प्रयोग समाज में प्रचलित और प्रयुक्त होने वाली भाषा-शैली के ही अनुरूप हुआ है।"—इस उपन्यास की भाषा शैली का विवेचन करते हुए उपर्युक्त कथन पर अपने विचार प्रकट कीजिए।

उत्तर :

जनवादी उपन्यासकार

यशपाल जनवादी उपन्यासकार हैं। उन्होंने जो कुछ लिखा है, और लिख रहे हैं, वह जन सामान्य को अपना पाठक मानकर ही लिखा है और लिख रहे हैं। ऐसे कलाकार भाषा के साथ खिलवाड़ नहीं करते। उन्हें जनता तक अपनी बात पहुँचानी और समझानी होती है, इसलिए वह उसी भाषा-शैली का प्रयोग करते हैं जो जनता में प्रचलित और व्यवहृत होती है। वह भाषा का लगभग वही रूप प्रयुक्त करते हैं जो जनता द्वारा बोली और समझी जाती है। ऐसे कलाकारों की जन-प्रियता और सफलता का एक बहुत बड़ा कारण उनकी भाषा-शैली भी होती है। प्रेमचन्द अपनी ऐसी ही भाषा-शैली के कारण जनता में, हिन्दी के सामान्य पाठकों में अत्यन्त लोकप्रिय हुए थे, और यशपाल की सफलता का भी एक यही कारण रहा है। इसलिए यशपाल की रचनाओं में हमें किंचित साहित्यिक पुट लिए जन-भाषा का ही रूप प्रयुक्त हुआ मिलता है। उनकी भाषा-शैली की एक उल्लेखनीय विशेषता यह रही है कि उन्होंने बौद्ध-युग पर लिखे गए अपने ऐतिहासिक उपन्यास 'दिव्या' में भी ऐसी संस्कृत-बहुल भाषा का प्रयोग किया है जो कहीं भी दुर्बोध या क्लिष्ट नहीं हो पाई है। भाषा पर ऐसा अधिकार बिरले ही कलाकारों में मिलता है।

'झूठा सच' में प्रयुक्त भाषा का रूप

'झूठा सच' एक सामाजिक राजनीति प्रधान उपन्यास है। इसमें यशपाल ने एक कल्पित कथा के माध्यम से भारतीय इतिहास के आधुनिक-युग के एक दशक का चित्रण किया है। यह दशक आज

से दस वर्ष पूर्व का ही है। इसलिए इस उपन्यास में भाषा का वही रूप प्रयुक्त हुआ है जो आज समाज में, पढ़े-लिखे समाज में सामान्यत: प्रचलित है। इस भाषा का रूप पात्र और परिस्थिति के अनुरूप ही रखा गया है। आज हमारी बोलचाल की तथा कथा-साहित्य की भाषा में अंग्रेजी, फारसी, हिन्दी, उर्दू आदि भाषाओं के लोक-प्रचलित शब्दों का धड़ल्ले के साथ प्रयोग होता है। वही बात इस उपन्यास की भाषा में भी मिलती है। इस उपन्यास की प्रधान कथा पंजाब और पंजाबी पात्रों के साथ आरम्भ होती है, इसलिए कहीं-कहीं, दाल में नमक के बराबर पंजाबी भाषा के शब्दों तथा लोकगीतों का भी प्रयोग हुआ है। और जगह-जगह पँजाबी वाक्यों और शब्दों के हिन्दी अर्थ भी दे दिए गए हैं। इस उपन्यास की भाषा की एक बहुत बड़ी विशेषता यह मिली है कि इसमें हिन्दी के अधिकांश पंजाबी लेखकों द्वारा प्रयुक्त वाक्य-विन्यास नहीं मिलता। यशपाल जन्म से पंजाबी हैं। सम्भवत: घर में पंजाबी ही बोलते हों। परन्तु इस उपन्यास में पंजाबी भाषा का प्रभाव कहीं भी नहीं मिलता। हम एक उदाहरण देकर अपनी बात को स्पष्ट करने का प्रयत्न करेंगे। हम हिन्दी में एक वाक्य इस प्रकार लिखते हैं—"**हमको** यह काम करना है।" पंजाबी इस वाक्य को हिन्दी में इस प्रकार लिखेंगे और बोलेंगे—"**हमने** यह काम करना है।" यह प्रवृत्ति इस उपन्यास में नहीं मिलती। पंजाबी पात्र भी ऐसे वाक्य-विन्यास का प्रयोग नहीं करते।

भाषा का लगभग एक-सा रूप

इस उपन्यास में प्रारम्भ से लेकर अन्त तक भाषा का लगभग एक-सा ही रूप प्रयुक्त हुआ मिलता है। यशपाल ने कहीं भी भाषा के साथ खिलवाड़ नहीं किया है। भाषा पात्र, परिस्थिति और वर्ण्य-विषय के अनुरूप अपने रूप में हल्का-सा परिवर्तन करती हुई चलती रहती है। उच्च या शिक्षित मध्य वर्ग के पात्रों की भाषा थोड़ी सी संस्कृत गर्भित या उर्दू-प्रधान हो उठती है। अशिक्षित और सामान्य पात्र बहुत ही साधारण स्तर की स्थानीय मुहावरों से युक्त भाषा बोलते हैं। जब राजनीतिक विवाद होते हैं तो अँग्रेजी के अनेक प्रचलित शब्द धड़ल्ले के साथ आते चले जाते हैं। कुछ लोगों को अंग्रेजी शब्दों के इस प्रयोग पर काफी आपत्ति

रही है। परन्तु वे यह भूल जाते हैं कि राजनीतिज्ञ और उच्च शिक्षित समाज के व्यक्ति अंग्रेजी के इन शब्दों का प्रयोग किए बिना एक वाक्य भी पूरा नहीं बोल पाते। ये शब्द हमारे दैनिक जीवन और बोलचाल की भाषा के अनिवार्य अंग बन गए हैं। इसलिए वातावरण का यथार्थ अंकन करने के लिए इन शब्दों का प्रयोग अपरिहार्य और अनिवार्य हो उठा है।

मुहावरों का सुष्ठु-सार्थक प्रयोग

सामान्य जनता अपनी अभिव्यक्ति को स्पष्ट और प्रभावशाली बनाने के लिए भाषा में प्रचलित मुहावरों का उन्मुक्त भाव से खुल कर प्रयोग करती है। यशपाल ने इस उपन्यास में भी सामान्य अशिक्षित स्त्रियों आदि द्वारा मुहावरों से सशक्त बनी ऐसी ही भाषा का प्रयोग करवाया है। एक उदाहरण द्रष्टव्य है। बाबू रामज्वाया की पत्नी अपनी मृत-सास के क्रिया-कर्म के सम्बन्ध में कहती है—"हम चली आई रीति को छोड़ अपनी **नाक कैसे कटा लें ? लोग नाम धरेंगे** कि खर्च से डर गए।" इसके आगे वह तारा के रूप-रंग की प्रशंसा करती हुई सोमराज की माँ से कहती है—"मेरा देवर बेचारा स्कूल में मास्टर है। गरीब आदमी है। बड़ा दान-दहेज तो क्या पर सच मानो, लड़की के नैन-नक्श **हजारों में एक हैं, हाथ लगे से मैली होती है।** आँखें मानो आम की फाँकें हैं। ···मेरी शीलो से दो ही महीने बड़ी है पर उससे आधा बालिश्त **सिर निकालती है।** बिल्कुल छमक-सी, दसवीं में पढ़ रही है। पढ़ाई में सदा अव्वल आती है। मेरी देवरानी तो बेचारी·······।"

उपर्युक्त भाषा कितनी अर्थ और भाव-गर्भित तथा सादा परन्तु प्रभावक है, यह देखते ही बनता है।

साधारण बिना पढ़ी-लिखी स्त्रियाँ कैसी चलती, अर्थ और भाव से ओत-प्रोत, तद्भव शब्दों का प्रयोग करती सीधी-सरल भाषा बोलती हैं, इसका एक रूप सोमराज की माँ जयरानी के मुँह से सुनिए—

"बहिन तू जानती है, हमारे लिए लड़कियों की कमी नहीं है। अर्थी जलाकर लौट भी नहीं पाए थे कि पाँच जगह से सन्देश आ चुके थे, पर मैं इस बार जल्दी नहीं करूँगी। वह बेचारी स्वभाव की तो अच्छी थी। उन

लोगों ने दान-दहेज भी बुरा नहीं दिया था परन्तु सच बात यह है कि लड़के के मन नहीं भाई थी। कुछ सिद्धड़-सी, चेहरा-मोहरा भी साधारण ही था। घर पर लड़के का मन ही नहीं लगता था। बेचारी को खाँसी जुकाम वाला फलंजा बुखार (इन्फ्लुएन्जा) हो गया था। 'बच्छो वाली' और 'मालरोड' के सभी डाक्टरों का इलाज करा लिया, परन्तु परमेश्वर की लिखी को कौन मेट सकता था····।"

उपर्युक्त उद्धरण में सामान्य स्त्रियों की बोलचाल की भाषा में उस वर्ग की सहजता, मान्यताओं और दृष्टिकोणों को स्पष्ट कर देने की पूरी शक्ति है।

भाषा के विविध रूप

हम पीछे कह आए हैं कि यशपाल की भाषा वर्ण्य-विषय के अनुरूप अपने रूप में परिवर्त्तन करती हुई चलती है। ऊपर एक साधारण गृहस्थ हिन्दू स्त्री द्वारा प्रयुक्त भाषा का रूप उद्धृत किया गया है। अब एक राजनीतिज्ञ की भाषा का रूप द्रष्टव्य है। देश-विभाजन के सम्बन्ध में प्रगतिशील विचारों वाला कालीचरन कहता हैं—

"प्रोफेसर प्राण कह रहा था कि अब भी दोनों औटो-नोमस (स्वायत्त) होकर भी फेडरेशन (सम्मिलित संघ) में रहें तो अधिक हानि नहीं होगी, लेकिन स्वयं एटली की नीति लीग को सेपरेशन (पृथक् होने) के लिए प्रोत्साहन दे रही है। अँग्रेज बँटवारे की जिम्मेदारी इसीलिए ले रहे हैं कि अपने हित के अनुकूल बँटवारा कर सकें।"

उपर्युक्त उद्धरण में राजनीति का विवेचन हुआ है इसलिए अँग्रेजी के कुछ प्रचलित शब्दों का निस्संकोच और स्वाभाविक प्रयोग हुआ है।

अब एक गुन्डे, बदमाश, क्रोध में अन्धे बने व्यक्ति सोमराज के मुँह से निकली भाषा का रूप भी देख लीजिए। सोमराज सुहागरात को ही अपनी पत्नी तारा के लात लगाते हुए उससे कहता है—

"भूखे मास्टर की औलाद, तेरी यह हिम्मत कि मुझसे शादी के लिए मिजाज दिखाए ?····बी० ए० पढ़ने का बहुत घमण्ड है ? तेरी जैसी बीसियों को मैंने देखा है ! देखूँगा तुझे ! गली-गली कुत्तों और गधों से न रौंदवा दिया···· ।"

इसी प्रकार की पात्रानुकूल भाषा का एक अन्य रूप तारा को अपने यहाँ शरण देने वाले वृद्ध मुसलमान हाफिज जी के कथन में द्रष्टव्य है । वह तारा को समझाते हुए कहते हैं—

"बेटी, तेरी गुफ्तगू जाहिर कर रही है कि तू ख्वान्दा (शिक्षित) है, समझदार है । बेटी, समझ से काम ले । खुदा का हुक्म है कि यह बन्दा तेरी मदद करे वर्ना मैं यहाँ कैसे आ सकता था ? बेटी, जिद्द करने से क्या फायदा ?····तेरी हालत सुन कर, तेरी मुसीबत में मदद करना फर्ज समझ कर आया हूँ, यानी खुदा ने मुझे तेरी खिदमत के लिए भेजा है । यह खुदा का हुक्म है । बेटा, इन जाहिल लोगों के बीच में पड़ी रहने पें तो हर तरह का खतरा है ।"

इस भाषा को उर्दू कहा जायेगा, परन्तु यह ऐसी उर्दू है जिसे समझने में किसी भी सामान्य पढ़े-लिखे पाठक को भी कोई दिक्कत नहीं हो सकती । अब पंजाब के उर्दू-प्रधान वातावरण में पली एक साधारण स्त्री की भाषा का रूप भी देख लिया जाय । गुन्डे मुसलमान की कैद में पड़ी दुर्गा बन्ती से कहती है—

"तू भी क्या कहती है ? घर से एक बार निकली, दर-दर ख्वार हुई तीमी (अबला) को फिर कौन रखता है ? घर से निकली तीमी और डाल से टूटा फल, उनका फिर मेल क्या ?"

अब हम भाषा के दो अन्य रूप दिखा कर इस प्रसंग को समाप्त कर देंगे । सूदजी राजनीतिज्ञ हैं । कहने में खरे और पढ़े-लिखे वकील होने पर भी लट्ठमार भाषा का प्रयोग करने वाले हैं । वह जयदेव से पंजाब की राजनीति के प्रति अपना क्षोभ व्यक्त करते हुए कहते हैं—

"····पंजाव में कांग्रेस मिनिस्टरी बनाने का अवसर आया है तो यह लोग फिर सब कुछ अपने गुट्ट के हाथ में समेट लेना चाहते हैं । हाई कमान्ड ने तो क्या नाम सब कुल दो आदमियों के हाथ में दे दिया है । यह लोग क्या नाम सब जिम्मेवारी तो हमारे पूर्व जिलों से चुने गए मेम्बरों पर डाल देना चाहते हैं और पावर सब अपने हाथ में ले ली है । हम भी देख लेंगे, कैसे गवर्नमेन्ट चला लेते हैं । यहाँ की हालत हम जानते हैं कि क्या नाम यह बाहर से आये हुए लोग····।"

'क्या नाम'—सूद जी का तकिया कलाम है। यह एक गुट्टबाज अक्खड़ राजनीतिज्ञ की भाषा है।

चड्ढा कम्युनिस्ट है। माथुर कम्युनिस्ट पार्टी पर रूस से प्रेरणा प्राप्त करने का आरोप लगाता है। चड्ढा उसका तर्कपूर्ण उत्तर देता हुआ कहता है—

"तो इसमें दोष क्या है ? किसी भी देश में साम्राज्यवादी अथवा शोषण की व्यवस्था का अन्त प्रजातंत्रवाद के लिए सहायक होगा। ऐसा प्रगतिवादी अन्तरराष्ट्रीय सहयोग किसी भी देश के राष्ट्रीय हित के विरुद्ध कैसे हो सकता है। कांग्रेस सरकार देश की खाद्य-समस्या के लिए अन्तरराष्ट्रीय सहायता ले रही है या नहीं ? कश्मीर के प्रश्न पर आप अन्तरराष्ट्रीय मत की सहायता चाहते हैं या नहीं ? अपने उद्योग-धन्धों का विकास करने के लिए आप अमेरिका-ब्रिटेन और सोवियत से सहायता और ऋण ले रहे हैं या नहीं ?"

यह एक सुलझे हुए राजनीतिज्ञ की तर्कपूर्ण सशक्त भाषा का रूप है। उपर्युक्त दोनों उद्धारणों में प्राप्त भाषा के भिन्न रूप, उन्हें बोलने वाले पात्रों के वैचारिक स्तर को स्पष्ट कर देता है। भाषा के उपर्युक्त विभिन्न रूप यह सिद्ध करने के लिए पर्याप्त हैं कि इस उपन्यास में भाषा सर्वत्र पात्र, उनके स्तर और परिस्थिति के अनुकूल तथा सुबोध रूप में प्रयुक्त हुई है। उसका सामान्य रूप बोलचाल की भाषा का ही रहा है—दो वर्गों की बोल-चाल की भाषा का। शिक्षित और अशिक्षित—दोनों ही प्रकार के पात्र जो भाषा बोलते हैं उसमें भिन्नता तो रहती ही है।

सशक्त शैली

भाषा के अनुरूप इस उपन्यास में प्रयुक्त शैली का समष्टि-रूप अत्यन्त सशक्त और प्रभावशाली रहा है। यशपाल रोचक रूप में कथा कहने की कला में अत्यन्त निपुण हैं। वह एक शैली में कथा कहते चलते हैं, उसमें नाटकीय मोड़ उत्पन्न करते हुए उसे आकर्षक बनाते चलते हैं। और बीच-बीच में राजनीतिक, सामाजिक उथल-पुथल के वर्णन भी देते चलते हैं। इन वर्णनों की शैली भी विषय के अनुरूप बदलती रहती है। आरम्भ में ही

कौला नाऊन के नेतृत्त्व में होने वाले स्यापे का वड़ा स्वाभाविक और सुन्दर वर्णन किया गया है—

"स्यापे में स्त्रियों के हाथ एक ताल से धप-धप छातियों पर पड़ने लगे। नाऊन वेदना में कुरलाते स्वरों में विलाप के बोल बोलती थी और स्त्रियाँ एक स्वर से 'हाया-हाया, हाया-हाया' पुकारतीं दोनों हाथों से एक साथ छाती पीटती जाती थीं। रीति के इस विलाप और पीटने में एक सुनिश्चित क्रम था। स्त्रियों के हाथ कभी छातियों पर पड़ते थे, कभी क्रम में जाँघों और छातियों पर, फिर जाँघों, छातियों और गालों पर पड़ते थे। कौला के संकेतों के अनुसार यह क्रम कभी विलम्बित में, कभी द्रुत में और फिर अति द्रुत में चलता और कभी वैठ कर और कभी खड़े होकर।....आँख मूँद कर अथवा दीवार की ओट से सुनने पर स्त्रियों के छाती पीटने का सम्मिलित स्वर इस प्रकार बँधा हुआ जान पड़ता था मानो मैदान में वहुत सधे हुए सिपाही मार्च, मार्क टाइम और क्विक-मार्च कर रहे हों।"

यह वर्णन स्यापे के उस दृश्य का एक ध्वन्यात्मक-सा चित्र अंकित कर देता है। सार्थक उपमा द्वारा वर्णन और अधिक सजीव बन गया है। इसके विपरीत यशपाल जब किसी की विपन्नता, गरीबी, दुख आदि का वर्णन करते हैं तो उनकी शैली वदल जाती हैं। वह पूरणदेई की दशा का वर्णन करते हुए लिखते हैं—

"सबसे करुण अवस्था थी ब्राह्मणी पूरणदेई की। वेचारी अनपढ़ विधवा शीशामोती वाजार की 'आर्यपुत्री पाठशाला' में बुलावी का काम करती थी। वताती थी कि अच्छे खाते-पीते खानदान की लड़की और बहू थी। विधवा हो गई थी तो जेठ ने पूरे मकान पर कब्जा करके उसे घर से निकाल दिया था। कसूर में बिरादरी के लोगों के सामने नौकरी करते उसे शरम लगती थी, इसलिए लाहौर आ गई थी। उसकी पन्द्रह बरस की जवान लड़की सीता थी। उसे किसी तरह आठवीं श्रेणी में पढ़ा रही थी। ऐसे जमाने में भी पाठशाला के समाज-सेवी प्रबन्धक पूरणदेई को वीस ही रुपया महीना दे रहे थे। वेचारी घर में रूखी-सूखी खा लेती या भूखी रह जाती पर लाज ढँकने के लिए कपड़े तो चाहिए ही थे, खास कर जवान लड़की के लिए।"

उपर्युक्त उद्धरण में शैली मार्मिक, व्यंग्यपूर्ण और करुण हो उठी है। यह स्यापे का वर्णन करने वाली शैली से भिन्न और मन्द है और साथ ही संक्षेप

में बहुत कुछ कह देने की क्षमता से सम्पन्न। यशपाल ने इसके विपरीत लाहौर में छाई साम्प्रदायिक उत्तेजना, जुलूस, सभा, दंगे, आगजनी आदि का जो वर्णन किया है उसकी शैली अधिक गत्यात्मक हो उठी है। इस शैली की एक विशेषता यह है कि इसमें कहीं भी वर्णन-विस्तार की प्रवृत्ति नहीं मिलती। इस उपन्यास में यशपाल को बहुत कुछ कहना था और ऐसा करना संक्षिप्त शैली द्वारा ही सम्भव था। उन्होंने अपने पात्रों के अन्तर्मन्थन का भी कहीं-कहीं भावपूर्ण वर्णन किया है। उपन्यास के पृष्ठ १३५ पर कनक को लेकर जयदेव का आत्म-मन्थन सुन्दर और स्वाभाविक है।

दृश्य वर्णन

यशपाल दृश्यों का वर्णन करने में अत्यन्त कुशल हैं। उन्होंने राजनीतिक जुलूसों, शरणार्थियों के काफिलों, शरणार्थी-कैम्पों, लूटमार, आगजनी, हत्या-कांड आदि के बड़े प्रभावशाली वर्णन किए हैं। इन वर्णनों में वह छिपे व्यंग्य का भी समावेश करते चलते हैं। नैनीताल में देश की स्वतंत्रता का समारोह मनाने की तैयारियाँ की जा रही हैं। यशपाल उसी का वर्णन करते हुए लिखते हैं—

"बाजार में स्थान-स्थान पर लोग झुंड बाँधे रेडियो के सम्मुख बड़ी उत्सुकता से उस दिन के लिए निश्चित कार्यक्रम की घोषणा सुन रहे थे। बाजारों में और सड़कों के किनारे भी रस्सियों में पिरोई हुई तिरंगी झंडियों से वन्दनवार लगाए जा रहे थे।....बाजार में खौलते घी और शक्कर की, खास कर गरम जलेबी की महक भर गयी थी। कहीं अगरबत्तियों की सुगन्धि की लपटें उठ रही थीं। नैनीताल के बोट-हाउस-क्लब और थियेटर, जहाँ कांग्रेस के बहुत प्रबल आन्दोलन के दिनों में और १९३७ में कांग्रेसी-मन्त्रिमंडल के शासन के समय भी सदा ही यूनियन जैक फहराते रहे थे, तिरंगी झन्डियों से सजाए जा रहे थे।....जिन लोगों ने कभी खद्दर का उपयोग नहीं किया था, उस दिन वे भी गर्व से खद्दर की सफेद नोकदार टोपी सिर पर रखे घूम रहे थे। दो दिन पूर्व पंजाब में हिन्दुओं से भरी पूरी ट्रेन कत्ल कर दी जाने के समाचारों से पंजाबियों के चेहरे मुरझाए हुए थे, परन्तु वे भी अपने दुख को दबा कर, देश भर के जीवन में पहली बार आए इस दिन को उत्साह से मनाने को तत्पर थे।"

इस वर्णन में उत्साह, उमंग, व्यंग्य और करुणा—सब कुछ एकसाथ स्फुरित हो रहे हैं। यह यशपाल की शैली की एक अनुपम विशिष्टता है।

यशपाल कहीं-कहीं सूक्तियाँ सी कहते चलते हैं। इन सूक्तियों में गहरे जीवनानुभव भरे हुए हैं। अभावग्रस्त मनुष्य आगे बढ़ने के साधन मिल जाने पर महत्त्वाकांक्षी हो उठता है। वह इसी मानव-स्वभाव की व्याख्या-सी करते हुए लिखते हैं—

"जब मनुष्य अभाव के गढ़े में होता है, उसे असमर्थता की दीवारें बन्दी बनाए रखती हैं। उसे सफलता का कोई मार्ग नहीं दिखाई दे सकता। साधनों की सीढ़ी पा जाने पर मनुष्य की दृष्टि अभाव के गढ़े से ऊपर उठ जाती है। उसे सफलता के राज-मार्ग दिखाई देने लगत हैं, महत्त्वाकांक्षा के शिखरों पर चढ़ सकने की राहें भी दिखायी देने लगती हैं।"

ऐसे स्थलों पर यशपाल की शैली चिन्तन-प्रधान हो उठती है। इस उपन्यास में अनेक प्रेम-प्रसंग भी आए हैं। परन्तु उनका वर्णन करते समय भी यशपाल की शैली पूर्ण संयमित रही है। उसमें भावावश की आकुलता बहुत कम दिखाई पड़ती है। कनक और जयदेव पति-पत्नी के रूप में साथ-साथ रह रहे हैं। एक दिन जयदेव के माता-पिता उसे छोड़कर एक दूसरे मकान में रहने चले जाते हैं। यशपाल उसी स्थिति का वर्णन करते हुए लिखते हैं—

"सास-ससुर और परिवार के चले जाने से घर में सूनापन भर गया। कनक और पुरी को प्रेम के उन्माद में अत्मविस्मृत हो जाने का अवसर मिल गया। कनक घर का सभी काम सम्हालती पर उसे कुछ भी भारी न जान पड़ता। परन्तु कभी-कभी पुरी का अकारण चिड़चिड़ा उठना उसे खल जाता था। कनक को अपमान अनुभव होता, वह संयम का निश्चय कर लेती। कुछ समय बाद पुरी का आवेग छलक जाता। परन्तु थोड़े समय बाद कनक को लगा कि पुरी के स्नेह के आवेग का उच्छ्वास क्षीण होने लगा था। प्रेम के व्यवहार में से उमंग मिटती जा रही थी।"

निष्कर्ष

'झूठ सच' में प्रयुक्त भाषा और शैली का उपर्युक्त विवरण और विश्लेषण यह सिद्ध करने के लिए पर्याप्त है कि इस उपन्यास की भाषा सामान्य प्रचलित बोलचाल की जनभाषा है। शैली भावुकता प्रधान न होकर बौद्धिकता-प्रधान

है। यद्यपि उपन्यास में भाषा और शैली के विविध रूप मिलते है, परन्तु उनका मूल ढाँचा एक-सा ही सीधा और सपाट रहा है। एक राजनीति-प्रधान सामाजिक उपन्यास के लिए, जिसका चित्रफलक अत्यन्त विस्तृत और सामाजिक जीवन की व्यापकता को समेट लेता है, इसी प्रकार की भाषा और शैली की अपेक्षा थी। अतः भाषा और शैली की दृष्टि से 'झूठा सच' को एक पूर्ण सफल और सशक्त उपन्यास माना जा सकता है।

विभिन्न पात्रों का चरित्र-चित्रण

प्रश्न १८—"जयदेव पुरी को इस उपन्यास का नायक माना जा सकता है।" क्या आप इस कथन से सहमत हैं ? तर्कपूर्ण उत्तर दीजिए।

प्रश्न १९—"जयदेव का चरित्र एक ऐसे सामान्य कांग्रेसी का चरित्र है, जिसमें उसकी व्यक्तिगत स्वार्थसिद्धि, पदलिप्सा और प्रतिक्रियावादी दृष्टिकोण की प्रधानता रही है।"—जयदेव के चरित्र का विश्लेषण करते हुए उपर्युक्त कथन के सम्बन्ध में अपने विचार प्रकट कीजिए।

उत्तर :

नायक की समस्या

सामान्य रूप से, पुरानी शास्त्रीय मर्यादा के अनुसार नायक उस पुरुष-पात्र को माना जाता रहा है जो कथा में सबसे अधिक प्रभावशाली, दृढ़ चरित्र वाला और श्रेष्ठ हो। परन्तु अब नायक की यह परिभाषा बदल गई हैं। अब नायक या प्रधान पुरुष-पात्र उसे माना जाता है जो कथा में महत्त्वपूर्ण स्थान रखता हो, अन्य विशिष्ट पात्र जिससे प्रगाढ़ रूप से सम्बन्धित हो और जिसके चरित्र का स्वाभाविक और सुन्दर विकास हुआ हो। इसी नवीन मान्यतानुसार 'होरी' को 'गोदान' का नायक माना जाता है और इसी के अनुसार जयदेव पुरी को भी 'झूठा सच' का नायक मान लेना चाहिए। जयदेव इस उपन्यास की कथा में आरम्भ से लेकर अन्त तक महत्त्वपूर्ण बना रहता है। उपन्यास के सारे प्रमुख पात्र—कनक, डाक्टर प्राणनाथ, सूद जी, पंडित गिरधारीलाल, महेन्द्र नैयर, उर्मिला, गिल आदि उससे घनिष्ट रूप से सम्बन्धित रहते हैं। उसके चरित्र का आरम्भ एक शिक्षित, संघर्षशील,

महत्त्वाकांक्षी और आत्म-सम्मानी नवयुवक के रूप में होता है और वह क्रमश: संघर्ष करता हुआ, सूद जी की सहायता से सम्पादक, सम्भ्रान्त और विधान सभा का सदस्य बन जाता है। उपन्यास की पूरी कहानी में उसका स्थान और महत्त्व आरम्भ से अन्त तक बना रहता है। सारी कथा ही मानो उसी को केन्द्र-सा बनाकर घूमती और बढ़ती रही है। उपन्यास के अन्य विशिष्ट पात्र उसी के सम्पर्क में आकर कथा में महत्व प्राप्त करते हैं। अत: नायक के प्राचीन शास्त्रीय लक्षणों और गुणों से रहित होते हुए भी जयदेव को इस उपन्यास का निर्विवाद नायक माना जा सकता है।

एक संघर्षशील नवयुवक

जयदेव एक राष्ट्रीय विचारों वाला देशभक्त नवयुवक है। वह सन् १९४२ के स्वतंत्रता संग्राम में अपनी एम. ए. की पढ़ाई अधूरी छोड़ जेल चला जाता है। आरम्भ में उसकी महत्त्वाकांक्षा अपनी शिक्षा समाप्त कर प्रोफेसर बन जाने तथा साहित्य-साधना करने की रहती है। वह जेल में निरन्तर अध्ययन करता और कहानियाँ लिखता रहता है। अपनी इसी महत्त्वाकांक्षा को पालते-पोषते हुए वह जेल में पौने दो वर्ष का समय काट देता है। परन्तु जेल से छूट कर जब अपने घर आता है और मंहगाई के कारण अपने घर की तथा साथ ही समाज की आर्थिक विपन्नता को देखकर व्याकुल तो हो उठता है परन्तु हताश नहीं होता। वह पूरी शक्ति के साथ धन कमाने के प्रयत्नों में जुट जाता है। ट्यूशन करता है, अनुवाद करने में लग जाता है मगर फिर भी घर की आर्थिक स्थिति को नहीं सम्हाल पाता। उसका एक कहानी-संग्रह प्रकाशित और प्रशंसित हो चुका है। एक उदीयमान साहित्यकार के रूप में लोग उसका सम्मान करने लगे हैं। सम्पादक उससे कहानियाँ और लेख माँगते हैं, प्रकाशित भी करते हैं, परन्तु पारिश्रमिक के रूप में एक पैसा तक नहीं देते। सब सम्मान तो करते हैं परन्तु नौकरी कोई भी नहीं देता। नौकरी की बात करते ही उसके प्रति लोगों की दृष्टि बदल जाती है। 'पैरोकार' के सम्पादक कशिश जी एक लेखक के रूप में उसका स्वागत करते हैं, परन्तु जब उन्हें यह पता चलता है कि वह उनके यहाँ नौकरी करने आया है तो उसके प्रति उनका व्यवहार एकदम बदल जाता है। जयदेव

महसूस करता है कि वह साहित्य द्वारा अपना और अपने परिवार का पेट नहीं भर सकता, इसलिए मजबूर होकर नौकरी कर लेता है।

महत्त्वाकांक्षी

जयदेव आरम्भ से ही महत्त्वाकांक्षी है। कुछ कहानियाँ लिखकर मिली प्रसिद्धि के कारण वह अहंकारी-सा बन जाता है। उसकी महत्त्वाकांक्षा साहित्य और पत्रकारिता के क्षेत्रों में कुछ कर गुजरने और प्रसिद्धि पाने की है। 'पैरोकार' में नौकरी मिल जाने पर वह पूरे मनोयोग के साथ काम करना आरम्भ कर देता है। वहाँ उसका और उसकी राय का सम्मान होने लगता है। वह हिन्दू-मुस्लिम एकता का समर्थक और देश-विभाजन का विरोधी है—हर समझदार व्यक्ति के समान। 'पैरोकार' कांग्रेसी पत्र है। जब वह पंजाब की अशान्ति और दंगों के लिए मुस्लिम-लीग और कांग्रेस—दोनों को जिम्मेदार मान तीखी टिप्पणी लिखता है तो उसे अपमान के साथ नौकरी से हटा दिया जाता है। यहाँ जयदेव के चरित्र का एक गुण उभरता है—निर्भीकता और दृढ़ता। वह समझौता न कर, सम्पादक 'कशिश जी' के अपमान का मुँहतोड़ उत्तर दे तुरन्त नौकरी छोड़कर चला आता है। एक सफल पत्रकार बनने की उसकी महत्त्वाकांक्षा अधूरी रह जाती है। परन्तु विभाजन के उपरान्त जालन्धर में सूदजी का संरक्षण और सहयोग प्राप्त कर वह 'नाजिर' नामक एक पत्र निकालता है। स्वयं उसका सम्पादन करता है। थोड़े ही समय में 'नाजिर' की धूम मच जाती है। जयदेव की एक महत्त्वाकांक्षा पूरी हो जाती है।

एक परिवर्तित और कुंठित व्यक्तित्व

हम आगे चलकर जयदेव को एक घृणित षड्यंत्रकारी, शान-शौकत के शौकीन, उत्तरदायित्व से भागने वाले परन्तु और अधिक महत्त्वाकांक्षी व्यक्ति के रूप में देखते हैं। उसका आरम्भ का संघर्षशील, दृढ़, स्वाभिमानी और स्नेही रूप समाप्त हो जाता है। वह भी अन्य काँग्रेसियों के समान अहंकारी, स्वार्थी और बहती गंगा में हाथ धोने वाला बन जाता है। वह कनक से प्रेम करते हुए भी उर्मिला से पति-पत्नी के से सम्बन्ध स्थापित करता है और कनक के अचानक आ जाने पर उर्मिला

को निराश्रित सा छोड़ उसे घर से निकाल-सा देता है। कनक से विवाह करने के उपरान्त कुछ समय तक तो कनक के प्रति उसका आवेगपूर्ण स्नेह रहता है, परन्तु धीरे-धीरे उसमें शिथिलता आने लगती है। वह चिड़चिड़ा बन जाता है। कनक के प्रति उसका व्यवहार उपेक्षा पूर्ण-सा होने लगता है। पुरुष और नारी की समानता का यह समर्थक आगे चलकर यह चाहने लगता है कि कनक अखबार के दफ्तर में जाना बन्द कर घर में ही रहे। अपनी सगी बहन तारा के दिल्ली में होने की सूचना पाकर भी वह उसकी खोज खबर नहीं लेता, उस बहन की जिसके सम्बन्ध में यह उड़ गया था कि वह मर गई थी। वह यहीं तक सीमित नहीं रहता। आगे चल कर वह सूद जी के साथ षड़यंत्र रच तारा और डाक्टर प्राणनाथ के जीवन को बर्बाद करने का प्रयत्न करता है। कनक के घर में रहते हुए भी वह शिमला में ठहरते समय उर्मिला से पुनः सम्बन्ध स्थापित करने का प्रयत्न करता है और उसके न मिलने पर झुँझला कर रह जाता है। उसके पिता मास्टर जी जब रिखीराम की बेईमानी की उससे शिकायत करते हैं तो वह उत्तर देता है कि बरसों से चली आती हुई बेईमानी को वह अकेला कैसे दूर कर सकता है। इस पर उसके पिता प्रेस का हिसाब-किताब देखना बन्द कर देते हैं। इस पर भी वह चुप रह कर मानो उस बेईमानी का समर्थन सा ही करता है। कुछ समय बाद मास्टर जी एक अलग मकान में रहने चले जाते हैं।

धीरे-धीरे जयदेव की स्थिति दृढ़ होती जाती है। 'नाजिर' द्वारा उसे प्रसिद्धि भी मिल जाती है। फिर सूद जी के सहायक के रूप में वह पंजाब विधान-सभा का सदस्य भी चुन लिया जाता है। अब उसे अपने पुराने छोटे घर में रहना अखरने लगता है। वह माडल टाउन में एक घर किश्तों पर खरीद लेता है। उसके रहन-सहन का स्तर बढ़ने के साथ ही खर्च भी बढ़ जाता है और वह मध्यवर्गीय उस विसंगति का शिकार बन जाता है जिसके कारण आमदनी और खर्च में समान अनुपात न रहने के कारण मध्यवर्ग के लोग परेशान और दुखी रहते हैं। अब जयदेव का मूल ध्येय अपनी स्थिति को दृढ़ बनाते जाना ही बन जाता है। जिस व्यक्ति ने आरम्भ में इतना आर्थिक दुख भोगा था, वही आगे चलकर, थोड़ा सा पैसा और शक्ति पा जाने पर समाजवादी व्यवस्था का विरोधी और पूँजीवादी अर्थ-व्यवस्था का समर्थक बन जाता है। इस परिवर्तन के साथ ही उसके चरित्र में भीरुता आ जाती है। वह कनक के

आग्रह करने पर भी उसे तलाक इस लिए नहीं देता कि इससे उसकी नई सामाजिक और राजनीतिक स्थिति पर बुरा और विपरीत प्रभाव पड़ेगा। परन्तु जब कनक तारा और डाक्टर के मामले में उसके विरुद्ध गवाही देने के लिए तैयार हो जाती है और सूद जी तथा उसके षड़यंत्र की सूचना प्रधान मंत्री तक पहुँचा दी जाती है, तो वह अपनी जान बचाने के लिए तुरन्त कनक को तलाक दे देता है। अब उसके लिए किसी भी व्यक्ति का कोई महत्व नहीं रह जाता। केवल अपना स्वार्थ ही उसके लिए सर्वाधिक और एकमात्र महत्वपूर्ण रह जाता है। पत्नी कनक, पुत्री जया आदि किसी का भी मोह उसे आकर्षित और विचलित नहीं कर पाता।

आरम्भ से ही एक कुंठित व्यक्तित्व

जयदेव के चरित्र में हुए इस परिवर्तन के कारण उसके आरम्भिक व्यक्तित्व में ही छिपे हुए हैं। उसके आरम्भिक जीवन में व्याप्त आर्थिक अभाव और उसी के कारण उत्पन्न सामाजिक हीनता की भावना ने उसके जीवन में आरम्भ से ही कुंठाएँ भर दी थीं। यदि वह महत्त्वाकांक्षी न होता तो ये कुँठाए इतने प्रबल रूप में न उभर पाती। महत्त्वाकांक्षा का पूरा न होना ही व्यक्ति में कुंठा उत्पन्न कर देता है। हम जयदेव में आरम्भ से ही कुंठा की प्रबलता पाते हैं। वह आर्थिक अभाव से पीड़ित होते हुए भी कनक को पढ़ाना इस शर्त पर स्वीकार करता है कि वह पढ़ाने के पैसे नहीं लेगा। वह उस सम्पन्न परिवार पर यह प्रकट नहीं होने देना चाहता कि वह गरीब है। इसलिए जब भी कनक के यहाँ जाता है, खूब साफ-सुथरे कपड़े पहन कर जाता है। एक कहानीकार के रूप में अपनी प्रसिद्धि को वह आर्थिक अभाव के कारण धूमिल नहीं होने देना चाहता। कनक का जीजा महेन्द्र नैयर उसकी इस दुर्बलता और हीनता की भावना को पहली मुलाकात में ही भाँप जाता है। इसीलिए वह भरसक प्रयत्न करता है कि उसके साथ प्रेम-सम्बन्ध न बढ़ाए। जयदेव अपनी आर्थिक हीनता को छिपा कर उस सम्पन्न परिवार के साथ बराबरी का व्यवहार करने का प्रयत्न करता है। परन्तु उस समाज में ऐसा करना सम्भव नहीं होता जिसमें सामाजिक स्थिति का मापदंड धन और उसके द्वारा प्राप्त सम्पन्नता ही मानी जाती । जयदेव की यह हीनता की भावना ही उसके स्वभाव में छिपाव और दुराव की प्रवृत्ति उत्पन्न कर देती है।

उसमें हीनता की यह भावना एक दूसरे कारण से भी है। वह कद का छोटा है। उसका व्यक्तित्व भी आकर्षक नहीं है। उसे अपना कद छोटा होने की तीखी अनुभूति है। इसी कारण वह अपने कद की छुटाई को दूर करने के लिए सिर उठा, कन्धे फैला, सीना आगे निकाल चलने और बैठने का प्रयत्न करता रहता है। कनक उसके बाह्य व्यक्तित्व से प्रभावित हो उसके प्रति आकर्षित नहीं होती। वह आरम्भ में उसे एक अच्छा कहानीकार मान कर ही उसका सम्मान करती है। और धीरे-धीरे सम्मान की यह भावना प्रेम का रूप धारण कर लेती है। जयदेव के चरित्र की यह प्रारम्भिक कुंठाएँ ही आगे चल कर उसे घोर स्वार्थी और अन्याय का समर्थन करने वाला बना देती हैं। वह अपनी आर्थिक स्थिति को दृढ़ बना सामाजिक स्थिति को भी ऊँचा उठा लेता है। और ऐसा करने में न्याय-अन्याय, उचित-अनुचित किसी भी बात की चिन्ता नहीं करता।

कुंठा का एक परिणाम : प्रतिहिंसा की भावना

मनोविज्ञान के अनुसार निर्बल व्यक्तित्व वाले व्यक्तियों की कुण्ठाएँ उन्हें घोर स्वार्थी और प्रतिहिंसक बना देती हैं। हमें जयदेव चरित्र की यह निर्बलता और हीनता की भावना आरम्भ में ही उर्मिला के प्रसंग में मिल जाती है। उर्मिला का शारीरिक आकर्षण और स्वभाव की चपलता उसे अपने प्रति आकर्षित करती है। परन्तु एक दिन उसी के कारण जब उर्मिला की पिटाई होती है तो वह कायर के समान वहाँ से लाहौर भाग आता है। लाहौर लौट कर वह प्रतिक्षण उर्मिला की याद में डूबा रहता है और सोचता है कि क्या यह मेरी कापुरुषता नहीं थी? क्या हमारा परस्पर विवाह नहीं हो सकता? परन्तु तुरन्त ही उसकी हीनता की भावना उसके विचारों को दूसरी ओर मोड़ देती है। वह सोचता है—"नौकर होकर क्या प्रेम करता? मेरे लिए विवाह का मतलब केवल शारीरिक सम्बन्ध नहीं है। वह लड़की तो प्रबल शारीरिक आकर्षण के अतिरिक्त और कुछ है ही नहीं। कैसे गले पड़ गयी?" इस विचार-परिवर्तन का कारण जयदेव की महत्त्वाकांक्षा थी। "उसने अपने सफल जीवन की कल्पना में अपने बौद्धिक कलात्मक जीवन की उचित संगिनी के विषय में" ऊँची कल्पनाएँ कर रखी थीं। उसने उर्मिला के प्रसंग से बच जाने पर सोचा कि दलदल में फँस जाने से बच ही गया।

कनक के प्रति उसके प्रेम को भी गहरा और सच्चा नहीं माना जा सकता। कनक एक सम्पन्न परिवार की सुन्दर, शिक्षित, सुरुचिपूर्ण विचारों वाली भली लड़की थी। उसके कोई भाई नहीं है। इसलिए जयदेव सोचता है कि कनक के रूप में उसे एक सम्पन्न घराने की लड़की तो मिलेगी ही, साथ ही वह आगे चल कर पंडित गिरधारीलाल के प्रेस, प्रकाशन आदि का भी मालिक बन जायेगा। जब विभाजन के उपरान्त उसे कनक का पता नहीं लग पाता तो उर्मिला के सम्पर्क में आकर उसके शारीरिक आकर्षण में डूब जाता है, परन्तु फिर भी कनक के लिए ललकता रहता है क्योंकि कनक को प्राप्त कर लेने से उसकी सामाजिक स्थिति बढ़ जायेगी। साथ ही वह सोचता है कि ऐसा हो जाने से वह नैयर द्वारा स्पष्ट और पंडित जी द्वारा उसके प्रति की गई शालीन उपेक्षा का भी बदला ले लेगा। कुण्ठाग्रस्त व्यक्ति ही अपने मन में ऐसी दूरगामी दुर्भावनाएँ पालते रहते हैं।

घोर स्वार्थी

जयदेव महत्त्वाकांक्षी होने के कारण घोर स्वार्थी भी है। वह हिन्दू-मुस्लिम एकता की बात करता है, कनक के साथ अन्तरजातीय विवाह करना चाहता है, परन्तु जब तारा असद के प्रति अपने आकर्षण को अभिव्यक्त कर देती है तो यह स्वार्थी व्यक्ति उसका दुश्मन बन जाता है और उससे कहनी-अनकहनी बातें कहने लगता है। कनक से न मिल पाने की अपने मन की कचोट को वह तारा पर अत्याचार कर उतारता है। तारा असद से विवाह न करे इसलिए वह सोमराज के साथ उसके विवाह की भी, आरम्भ में विरोध करते हुए भी, अन्त में मौन स्वीकृति दे देता है और उसकी जिम्मेदारी स्वयं अपने ऊपर न ले, तारा पर ही डाल देता है। कनक के अचानक आ जाने पर उर्मिला को मँझधार में छोड़ देता है और फिर कनक के असन्तुष्ट रहने लगने पर पुनः उर्मिला से सम्बन्ध स्थापित करने का प्रयत्न करता है। तारा का पता पाकर भी उससे मिलने दिल्ली नहीं जाता। और जब तारा कनक की सहायता करती है तो यह सुनकर तारा का दुश्मन बन जाता है। संक्षेप में, वह अपने स्वार्थ के आगे किसी भी दूसरे की चिन्ता नही करता।

स्वाभाविक चरित्र

जयदेव का यह चरित्र आरम्भ से अन्त तक पूर्ण स्वाभाविक रहता है।

हम पीछे कह आए है कि महत्वाकांक्षी परन्तु निर्बल चरित्र वाले व्यक्तियों की कुंठाएँ उन्हें स्वार्थी और प्रतिहिंसक वना देती हैं। आर्थिक अभाव से ग्रस्त, सामाजिक उच्च स्थिति का आकांक्षी परन्तु उच्च समाज द्वारा उपेक्षित निर्वल चरित्र वाला व्यक्ति परिस्थितियों द्वारा प्रताड़ित होते-होते स्वार्थी ग्रौर अवसरवादी बन जाता है। हम जयदेव के चरित्र में इसी का स्वाभाविक विकास होता देखते हैं।

सामान्य काँग्रेसी का प्रतीक

यशपाल ने जयदेव के रूप में एक सामान्य कांग्रेसी व्यक्ति का चरित्र उभारा है। देश को आजादी मिलने के बाद कांग्रेस के पुराने तपे-तपाए, ईमानदार कार्यकर्त्ताओं और नेताओं को काँग्रेस से उखाड़ फेंका गया था। पद-लोलुप पुराने नेता कांग्रेस की नीतियों को त्याग गुटबन्दी में व्यस्त हो गए थे और इन्हीं के कारण कांग्रेस में नए अवसरवादी रँगे सियार घुस आए थे। इस उपन्यास में भी सोमराज जैसा लफंगा सूद जी की सहायता से राज-नीतिक-पीड़ित बन जाता है। जयदेव आरम्भ से देशभक्त और प्रगतिशील विचारों का है। काँग्रेस की नीतियों के प्रति उसकी कोई विशेष आस्था नहीं दिखाई पड़ती। वह विभाजन को लेकर कांग्रेस की आलोचना भी करता है। परन्तु जब विभाजन के बाद जालन्धर में सूद जी का आश्रय और संरक्षण प्राप्त कर लेता है तो उसकी अपूर्ण महत्त्वाकांक्षा फिर सिर उठाने लगती है और वह सूद जी का पल्ला पकड़ काँग्रेस में घुस जाता है और अन्त तक उन्हीं की हाँ में हाँ मिलाता रहता है। क्योंकि वह जानता है कि सूद जी काँग्रेस के एक शक्तिशाली और प्रभावशाली नेता हैं। उन्हीं की सहायता से वह एक पत्र का प्रधान सम्पादक, एक फ्लैट का मालिक और विधान-सभा का सदस्य बन जाता है। आजकल काँग्रेस में ऐसे ही लोगों की भरमार है जो आजादी मिलने के बाद कांग्रेसी वने थे और फिर भौतिक दृष्टि से सम्पन्न और सम्भ्रान्त बन बैठे हैं। जयदेव का चरित्र ऐसे ही कांग्रेसियों का प्रतीक है।

प्रश्न २०—"कनक को इस उपन्यास की नायिका ओर सर्वाधिक सशक्त चरित्र माना जा सकता है।"—नायिका की समस्या को सुलझाते हुए कनक के चरित्र का विवेचन कीजिये।

प्रश्न २१—"कनक नए उगते हुए भारतीय नारीत्व का प्रतीक है।"—विवेचन कीजिए।

उत्तर :

नायिका की समस्या

सामान्यत: नायिका उसे माना जाता है जो नायक की पत्नी या प्रेमिका होती है। इस दृष्टि से तो कनक को निर्विवाद रूप से इस उपन्यास की नायिका मान लेना चाहिए। क्योंकि हमने जयदेव पुरी को इस उपन्यास का नायक माना है और कनक पहले उसकी प्रेमिका और फिर पत्नी बन जाती है। वह जयदेव के साथ संघर्ष भी करती है। यह विशुद्ध शास्त्रीय दृष्टिकोण है। परन्तु हम कनक को उसके सशक्त व्यक्तित्व और महत्व के कारण ही इस उपन्यास की नायिका मानते हैं। हमें उपन्यास के सम्पूर्ण पात्रों में उसी का चरित्र सर्वाधिक सशक्त, स्वाभाविक, प्रभावशाली और महत्त्वपूर्ण लगा है। नायिका-पद के लिए इस उपन्यास में केवल तारा को ही उसकी हल्की सी प्रतिद्वन्द्विनी माना जा सकता है। परन्तु तारा के चरित्र में हमें वह दृढ़ता, विषम परिस्थितियों के विरुद्ध अथक संघर्ष करने, स्वयं सोच कर निर्णय लेने और आगे कदम बढ़ाने की शक्ति नहीं मिलती जो कनक के चरित्र की एक अद्भुत विशेषता है। इसी कारण तारा उसके सामने ठहर नहीं पाती। उपन्यास के समस्त नारी पात्रों में तो कनक सर्वश्रेष्ठ है ही, पुरुष पात्रों में भी उसकी सी दृढ़ता, साहस और शक्ति नहीं मिलती। हमने इसी कारण उसे इस प्रकार का सर्वाधिक सशक्त पात्र और नायिका माना है। हमारे द्वारा आगे किया जाने वाला उसके चरित्र का विश्लेषण हमारी इस राय को स्पष्ट कर देगा।

एक सम्भ्रान्त, सुशिक्षित लड़की

कनक एक सम्भ्रान्त ब्राह्मण-परिवार की सुन्दर, सुशिक्षित और सुशील लड़की के रूप में पहले हमारे सामने आती है। उसके विचार आरम्भ से ही राष्ट्रीय रहे हैं। उसने सन् १९४२ की राजनीति में भी भाग लिया था। उसके पिता पंडित गिरधारी लाल पुराने देशभक्त और उदार

विचारों के हैं। उन्होंने अपनी बड़ी बेटी कान्ता का अन्तरजातीय विवाह किया था। ऐसे वातावरण में रहने वाली कनक में इसी कारण किसी प्रकार की कुंठाएं उत्पन्न नहीं हो पाई है। वह महीन खद्दर की सफेद साड़ी पहनती है। उसका वेश और सलोना रूप लोगों को आकर्षित करता है। वह पहले अँग्रेजी में एम. ए. कर, उर्दू में 'मुंशी कालिज' की परीक्षा देना चाहती थी परन्तु फिर राष्ट्रीयता की भावना से प्रेरित हो हिन्दी की ओर झुक गई और हिन्दी विशारद की परीक्षा में बैठने का निश्चय कर लिया। कनक का यह जयदेव से मिलने से पहले का रूप है। वह जयदेव की लिखी कहानियाँ और लेख पढ़ चुकी है। इसलिए जयदेव के प्रति उसके मन में पहले से ही आदर और श्रद्धा की भावना है। जयदेव को गुरु रूप में प्राप्त कर वह उसका स्वागत विशेष विनय और आदर से करती है। आरम्भ में जयदेव के प्रति उसका व्यवहार संयमित रहता है। जयदेव उसकी प्रतिभा और संयमित शालीन व्यवहार से आकर्षित हो उसके प्रति झुकता है। उपन्यासकार के शब्दों में—"यह नहीं था कि उससे पूर्व पुरी किसी लड़की के रूप-लावण्य के प्रति आकर्षित हुआ ही नहीं था, परन्तु कनक के सामीप्य से वे ओछी स्मृतियाँ ऐसे धुल गईं, जैसे सूर्योदय हो जाने पर ऊषा का धुँधलका लोप हो जाता है।"

यह कनक का आरम्भिक रूप है जो यह आभास देता है कि यह लड़की आगे चलकर महत्त्वपूर्ण बनने की क्षमता रखती है।

दृढ़ और अनन्य प्रेम का उदय

जयदेव कनक को पढ़ाने आने लगता है। यह साहचर्य धीरे-धीरे कनक के निस्संकोच व्यवहार और साहित्य-चर्चा के उत्साह को दूर कर प्रेम की ओर पग बढ़ाने लगता है। अब जयदेव को देख कनक की आखें हर्ष से खिल उठने लगती हैं। और अन्त में वही होता है जो प्रायः हुआ करता है। एक दिन एकान्त पा दोनों जीवन भर साथ निभाने की प्रतिज्ञा कर लेते हैं। यहाँ से कनक के जीवन का एक नया अध्याय आरम्भ हो जाता है। जयदेव के प्रति उसका आकर्षण घर वालों पर प्रकट हो जाता है। दोनों कभी-कभी घर से बाहर भी मिलने लगते हैं। जयदेव की हीन आर्थिक और सामाजिक स्थिति के कारण उसके पिता, जीजा, बहन आदि उसका विरोध करते हैं। बस, यहीं से कनक का अथक संघर्ष आरम्भ हो जाता है। वह जयदेव से मिल न सके,

इसलिए उसे उसकी बहन कान्ता अपने घर लिवा ले जाती है, उसकी चिट्ठियाँ रोक ली जाती हैं। कनक यह सब जान कर मिलन के लिए छटपटाने लगती है। वह अपने आराध्य को प्राप्त करने का दृढ़ संकल्प कर लेती है और बड़े जीवट और साहस का परिचय देती है। जयदेव के हवालात में होने का समाचार सुन वह एक सहेली के यहाँ जाने का बहाना कर कोतवाली पहुँच हवालात में बन्द जयदेव से मुलाकात करती है। दूसरी बार जयदेव की गली की तरफ लगी भयकर आग के समाचार से व्याकुल हो अकेली, चुपचाप, ढूँढ़ती जयदेव के घर पहुँच जाती है। और वह ये साहस भरे कदम उस समय उठाती है जब लाहौर हिन्दू-मुस्लिम दंगों की आग में जुलस रहा है। उसके ये कार्य जयदेव के प्रति उसके दृढ़ और अनन्य प्रेम के परिचायक हैं।

अनवरत संघर्ष

कनक के घर वाले यथा सम्भव उसे जयदेव से दूर रखने का प्रयत्न करते हैं, समझाते हैं, परन्तु वह अपने निश्चय पर अडिग रहती है। नैयर के साथ नैनीताल चले जाने पर भी निरन्तर जयदेव के चिन्तन और चिन्ता में ही डूबी रहती है। देश-विभाजन से उत्पन्न विषम स्थिति में स्वयं अपने पैरों पर खड़े होने का प्रयत्न करती है। अवस्थी से केवल वह इसलिए मिलती है कि उसके द्वारा जयदेव को नौकरी दिलवा सके। इसके लिए वह रुपये भेज कर जयदेव को नैनीताल बुलाती है और वहाँ से लखनऊ भेजती है। परन्तु लाहौर के समाचार सुन जब जयदेव लाहौर जाने के लिए वहाँ से चला जाता है और फिर बहुत दिनों तक उसका कोई समाचार नहीं मिलता तो वह बहुत परेशान रहने लगती है। इसी दुखी, विपन्न मनःस्थिति में वह अपने पिता के पास दिल्ली पहुँचती है। वहाँ पत्रों के कार्यालयों में काम करने का प्रयत्न करती है, परन्तु सम्पादकों के अश्लील व्यवहार से दुखी और हताश हो नौकरी की तलाश में लखनऊ चली जाती है। यहाँ यह द्रष्टव्य है कि वह ये सारे काम उश्रृंखल होकर नहीं करती। पिता की आज्ञा प्राप्त करके ही करती है। लखनऊ में नौकरी के सिलसिले में गिल से उसका परिचय होता है। गिल लाहौर का रहने वाला था और जयदेव को जानता था। कनक और गिल में परस्पर सहानुभूति और सौहार्द स्थापित हो जाता है। दोनों ही मानसिक रूप से दुखी हैं। गिल की प्रियतमा पाकिस्तान में मारी गई थी,

और कनक जयदेव का पता न लगने से दुखी थी। दोनों परस्पर मिलने लगते हैं। परन्तु कनक अपने प्रति गिल का झुकाव देख उसे स्पष्ट बता देती है कि वह जयदेव की वाग्दत्ता है। यहाँ हम देखते हैं कि कनक जयदेव के प्रति अपने प्रेम में दृढ़ और एकनिष्ठ है।

प्रियतम जयदेव के प्रति क्षोभ का उदय

एक दिन 'नाजिर' के विज्ञापन के माध्यम से जयदेव का पता पाकर कनक दिल्ली होती हुई अचानक जयदेव के दरवाजे पर जा खड़ी होती है। वहाँ कमरे में जयदेव के साथ सोई हुई उर्मिला को देख उस पर वज्रपात सा होता है। वह स्तम्भित और जड़ सी खड़ी रह जाती है। जिस प्रियतम को खोजने और प्राप्त करने के लिए उसने इतना संघर्ष किया था, इतनी भटकती फिरी थी, उसी प्रियतम को एक अन्य नारी को अपनी अंकशायिनी बनाए देख क्षोभ, क्रोध और निराशा के कारण उसे मूर्च्छा सी आ जाती है। परन्तु जयदेव अपनी सारी व्यग्र मानसिक स्थिति, झेले दुख और सकट की गाथा सुनाकर कनक के मन में अपने प्रति करुणा उत्पन्न करने में सफल हो जाता है। कनक सब कुछ भूल, उसके साथ विवाह कर, उसकी पत्नी बन उसके साथ रहने लगती है। घर का सारा काम सम्हालती है, 'नाजिर' के सम्पादन और व्यवस्था में उसका हाथ बटाती है। कुछ समय तक दोनों बड़े प्रेम के साथ रहते हैं। परन्तु कुछ समय उपरान्त जयदेव बात-बात पर चिड़चिड़ाने लगता है और कनक महसूस करती है कि जयदेव के स्नेह का आवेग क्षीण होने लगा है। उसके व्यवहार में से प्रेम की उमग मिटती जा रही है।

विवाह के पूर्व नैयर ने जयदेव की नीचता की बात बताते हुए कनक से कहा था कि जयदेव ने तारा की मर्जी के खिलाफ सोमराज और तारा के विवाह में सहयोग दिगा था। उस समय कनक ने इस बात का उग्र विरोध किया था और कहा था कि जयदेव ऐसा कभी नहीं कर सकता। परन्तु कनक का विवाह हो जाने के उपरान्त एक ऐसी घटना घटती है जिसे देख कनक को नैयर की बात सत्य लगने लगती है। एक दिन दिल्ली से एक पत्र आता है कि तारा दिल्ली में है और सरकारी नौकरी कर रही है। सुनकर कनक प्रसन्न हो जयदेव से तारा को तुरन्त लिवा ले आने का आग्रह करती है, परन्तु

जयदेव परिस्थिति को विपरीत बता टाल देता है। तारा खिन्न हो उठती है और पुरी से बोलने को उसका मन नहीं करता। बस, यहीं से कनक के मन में पुरी के विरुद्ध क्षोभ और सन्देह की भावना उत्पन्न हो जाती है और आगे घटने वाली अनेक घटनाएं उसके इस क्षोभ को बढ़ाती चली जाती हैं। वह सोचने लगती है कि पुरी का स्वभाव और व्यक्तित्व कैसा फरेबी और विचित्र है। वह पुरी से खिंची हुई रहने लगती है। इस समय तक गिल को लखनऊ से जालन्धर बुला 'नाजिर' का काम सौंप दिया गया था। एक बार कनक और गिल के कहने पर पुरी दौलतराम आजाद नामक एक पुराने परन्तु विपन्न कम्युनिस्ट को टीन का कोटा दिलाने के लिए सूद जी से सिफारिश करता है, परन्तु सूदजी टाल देते हैं। इस पर कनक बहुत बिगड़ती तो पुरी उसे डाट देता है।

समझौते का प्रयत्न

कनक जयदेव के व्यवहार और स्वभाव से क्षुब्ध तो रहती है परन्तु साथ ही सोचती है कि उसे अहंकार नहीं करना चाहिए, अपने मन के देवता को वह मना लेगी। दोनों में पुनः स्नेह सम्बन्ध स्थापित हो जाता है। कनक पति की कल्याण-कामना के लिए 'करवा चौथ' का व्रत रखती है, चाँद को अर्घ्य देती है और फिर दोनों साथ-साथ बैठ प्रेम से भोजन करते है। परन्तु कुछ समय बाद जब पुरी की छोटी बहन ऊषा के विवाह के अवसर पर कनक तारा को बुलाने की बात कहती है तो पुरी स्वीकार नहीं करता। अतः दोनों में फिर खटक जाती है। अन्त में शीलो के प्रसंग को लेकर कनक पुरी की आज्ञानुसार दिल्ली जाकर तारा से मिलती है। वहाँ बातों ही बातों में तारा उससे कहती है कि वह सोमराज से विवाह नहीं करना चाहती थी परन्तु भाई के विश्वास में मारी गई। भाई ने उसकी कोई सहायता नहीं की। कनक जालन्धर लौट कर तारा की प्रशंसा करती हुई पुरी को सारी बातें बता देती है। बस, इसी पर बात बढ़ जाती है और दोनों में बोलचाल बन्द हो जाती है। आगे चल कर कई अन्य ऐसी ही घटनाएँ घटती हैं जिसके कारण पुरी के प्रति कनक का मन फटता चला जाता है। एक दिन 'नाजिर' के एक सम्पादकीय को लेकर पुरी को सूदजी की कड़वी बातें सुननी पड़ती हैं। पुरी खिन्न हो कनक से कहता है कि वह 'नाजिर' का काम न कर घर पर ही रहा करे।

अलगाव का आरम्भ

अब कनक के लिए पुरी के साथ रहना असह्य होता चला जाता है। वह पुरी की उपेक्षा, व्यवहार, अन्याय को सहन नहीं कर पाती और एक दिन अपनी माँ से मिलने के लिए बेटी जया को साथ ले दिल्ली चली जाती है और फिर लौट कर जालन्धर नहीं आती। कनक ने अन्याय के सामने झुकना नहीं सीखा है। वह दिल्ली में आकर अपने लिए नौकरी ढूँढ़ने लगती है। पिता और माँ के समझाने पर उन्हें उर्मिला और पुरी के सम्बन्ध तथा पुरी के बुरे व्यवहार की सारी बातें बता, लौटने से इन्कार कर देती है। कनक स्वभाव से अक्खड़, स्वावलम्बी और स्वाभिमानी है। वह अपने मन की वेदना को तारा के सामने स्पष्ट करती हुई कहती है—

"मेरे लिए वहाँ रहना सम्भव नहीं है। मानती हूँ, मेरा ही दोष है। मैं असहिष्णु हूँ। 'उनकी' प्रकृति वैसी है। सब लोग उनका आदर करते हैं, परन्तु मैं क्या करूँ? समझ लो मैं अपने को ही दंड दे रही हूँ, पर मैं वहाँ पर रह नहीं सकती। सच कहती हूँ मैंने अपने दोष के कारण बहुत सहा है, अब नहीं सह सकती। मुझे उनकी कोई बात अनुकूल नहीं लगती। विवाह के छः मास बाद से ही कटुता आरम्भ हो गई थी। पाँच बरस निबाहा, अब नहीं सह सकती। निन्दा होगी, हो। मैं क्या करूँ?"

कनक के उपर्युक्त कथन से उसका चरित्र और स्वभाव स्पष्ट हो जाता है। वह हृदय की निश्छल, स्वभाव की स्वावलम्बी और अन्याय या अनुचित को किसी भी दशा में न स्वीकार करने वाली नारी है। उसने अपने घर वालों का घोर विरोध कर जयदेव के साथ विवाह किया था, उर्मिला और उसके सम्बन्ध को अपनी आँखों से देख कर भी जयदेव के प्रति अपने प्रेम को कम नहीं होने दिया था। परन्तु अपने जिस एकात्म प्रेम के कारण उसने सबका विरोध सहा था, जब पति को अपने उस प्रेम का ही अपमान और उपेक्षा करते पाया, तो उसका स्वाभिमान जाग्रत हो उठा और वह अपने मन के आराध्य को निस्संकोच त्याग कर चली आई।

दृढ़ चरित्र की अद्भुत प्रतिमा

कनक का यह नारी-रूप रूढ़िवादियों को अखर सकता है; शाश्वत और अनन्य प्रेम की दुहाई देने वाले कनक में प्रेम की एकनिष्ठता का अभाव

पायेंगे। परन्तु व्यावहारिक दृष्टि से देखने पर कनक के इस व्यवहार में कुछ भी अनुचित नहीं प्रतीत होता। कनक आधुनिक भारत के उस उगते हुए नारीत्त्व का प्रतीक है जो संघर्ष करना जानती है, उसे अपने पैरों पर खड़ा होना आता है और जो पति को श्रद्धा और पूजा की चीज न मान सच्चे अर्थों में जीवन-साथी के रूप में देखना और निबाहना चाहती है। प्रेम कल्पना के स्तर पर अलौकिक हो सकता है, परन्तु व्यवहार के क्षेत्र में बराबरी का दावा करता है। प्रेम एकपक्षीय न होकर जब उभयपक्षीय होता है, तभी उसकी सार्थकता और जीवन्तता प्रकट होती है। कनक प्रेम के इसी रूप की उपासिका है। वह पति द्वारा अपने प्रेम का अपमान किया जाना सहन नहीं कर पाती। वह पति को परमेश्वर न मान जीवन-साथी मानती है। दूसरे, जिस व्यक्ति को उसने आरम्भ मे एक दृढ़ चरित्र वाला आदर्श व्यक्ति समझा था और मन से जिसकी पूजा की थी, वही व्यक्ति जब उसकी आशा के विपरीत एक भिन्न, निर्बल, स्वार्थी और अन्यायी के रूप में उसके सामने आता है तो उसकी गैरत उसे स्वीकार नहीं कर पाती।

नई भारतीय नारी की प्रतीक

कनक उस शिक्षित नई भारतीय नारी की प्रतीक है जो नारी के अधिकार, सम्मान, स्वाभिमान और दायित्व के प्रति जागरूक है। और जब अपने अधिकारों पर चोट होती हुई देखती है तो बड़ी दृढ़ता और संयम के साथ अपनी रक्षा करने को तत्पर हो जाती है। वह प्रेम-सम्बन्ध को भी शाश्वत न मान व्यावहारिक मानती है। यदि पति भ्रष्ट और अन्यायी तथा फरेबी होता है तो वह सात भाँवरों के अभेद्य कहे जाने वाले बन्धन को तोड़, पति को त्याग, अपने पैरों पर खड़े होने का प्रयत्न करती है। कनक ने स्वेच्छा से जयदेव को वरण किया था और न पटने पर स्वेच्छा से ही उसे त्याग कर चली आती है। वह इसके लिए किसी से शिकायत भी नहीं करती और अपना तथा अपनी बेटी जया का पालन करने के लिए पुनः नौकरी कर लेती है। वह अपने पिता की भी आश्रिता बनकर नहीं रहना चाहती। उसकी केवल एक ही माँग है कि जयदेव उसे तलाक देकर बन्धन से मुक्त कर दे। अब वह जयदेव के असली रूप को पहचान गई है, इसलिए जयदेव द्वारा लाख समझाने और खुशामद करने पर भी उसके साथ जाने को तैयार नहीं होती। और अन्त में तारा

और डाक्टर प्राणनाथ के मामले में जयदेव द्वारा किए गए षड्यंत्र को देख उसके मन में उसके प्रति तीव्र घृणा और क्रोध उत्पन्न हो जाता है। वह उलट कर जयदेव पर आक्रमण करती है और उसे तलाक देने के लिए विवश कर देती है। अपने अधिकार के लिए इस प्रकार सतत संघर्ष करने वाली यह नारी सच्चे अर्थों मे उस आधुनिक भारतीय नारी का प्रतीक बन गई है, जो प्राचीन रूढ़ मान्यताओं के बन्धन न से मुक्त हो, स्वावलम्बी बन जीवन के प्रगतिशील पथ पर आगे बढ़ रही है। उसके चरित्र में दृढ़ता है, संयम है और विपरीत के विरुद्ध सतत संघर्ष करते रहने की अद्भुत क्षमता है।

जीवन का नया रूप

कनक जयदेव से तलाक प्राप्त कर गिल के साथ विवाह कर लेती है। पुर्नविवाह को पाप मानने वाले रूढ़िवादी इसके लिए कनक की भर्त्सना करने में संकोच नहीं करेंगे। परन्तु यह आधुनिक युग का यथार्थ है जो जीवन की विषमताओं में दम घोट कर प्राण त्याग देने, या उसी नारकीय जीवन को बिताने में आस्था और विश्वस नहीं रखता। यह नया यथार्थ यह है कि विवाह एक सामाजिक-समझौता है। यदि कोई पक्ष समझौते का उल्लंघन या अन्याय करता है तो दूसरा पक्ष कानूनी रूप से उस समझौते को भग कर स्वतंत्र हो जाता है। इसके बाद उसे यह अधिकार है कि वह अपने भावी जीवन को अपनी इच्छानुसार बिताए। कनक जयदेव से तलाक ले लेने के उपरान्त यही करती है। उसके द्वारा गिल को जीवन-साथी चुन लेना कोई अप्रत्याशित और आकस्मिक घटना नहीं है। गिल के साथ हुए प्रथम परिचय में ही वह गिल के स्वभाव की उदारता और सहृदयता से प्रभावित हो जाती है। कनक लखनऊ में जिस नौकरी के लिए प्रार्थना-पत्र देती है, गिल भी उसी नौकरी का उम्मीदवार है। जब गिल को कनक से बात करने पर इसका पता चलता है तो वह इन्टरव्यू देने से इन्कार कर देता है और कनक को वह नौकरी मिल जाती है। कनक उसके इस व्यवहार से बहुत प्रभावित होती है। दोनों प्रायः परस्पर मिलने और बातें करने लगते हैं। कनक उसके लिए एक स्वेटर भी बुनकर देती है। परदेश में किसी की इतनी और ऐसी सहानुभूति मिल जाने पर उसके प्रति मन में आत्मीयता पूर्ण कोमल भावनाओं का उदय हो जाना नितान्त स्वाभाविक है। एक दिन कनक उसे अपने और

जयदेव के सम्बन्ध में भी बता देती है और कहती है कि उसका पता मिल जाय तो वह इस नौकरी को छोड़कर चली जायेगी। सुन कर गिल उदास हो जाता है। यह देख कनक ने उसे सान्त्वना दी और उसके मन में अपने प्रति फूलती-फलती भावना के लिए स्वयं को दोषी ठहरा कर गिल से क्षमा माँगी।

कनक यह जानती है कि गिल उससे प्रेम करता है। परन्तु साथ ही वह यह भी जानती है कि जयदेव और उसके सम्बन्धों को जानने के उपरान्त गिल उसके मार्ग में रोढ़े नहीं अटकाता, इसके विपरीत कनक को सहर्ष पुरी के पास भेज देता है। गिल की यह उदारता महान है। इसके उपरान्त जब गिल जालन्धर आकर 'नाजिर' में काम करने लगता है, तब भी उसका वही उदार और महान रूप बना रहता है। वह पुरी और कनक में मनमुटाव या झगड़ा होने पर सदा कनक को ही समझाता है कि वह संयम से काम ले। यदि कनक के प्रति उसकी कोई दुर्भावना होती, यदि वह कनक को प्राप्त करना चाहता तो दोनों को एक दूसरे के विरुद्ध भड़का कर झगड़े को और अधिक बढ़ा सकता था, परन्तु वह ऐसा गन्दा और ओझा काम नहीं करता। जालन्धर में कनक के साथ काम करने और एक ही मकान में रहते हुए भी वह कनक के प्रति अपने व्यवहार में निश्छल और खरा बना रहता है। कनक इसी कारण उसे अपना हितैषी और एक भला और अच्छा आदमी मानती है। कनक के दिल्ली चले आने पर गिल भी दिल्ली आ जाता है और हर तरह से कनक की सहायता करता और खोज-खबर लेता रहता है। उसका यह व्यवहार कनक के प्रति उसकी सच्ची और सहज सहानुभूति और कोमल भावना का प्रतीक है। उसके इसी व्यवहार से प्रभावित और आकर्षित हो कनक उसे अपना नया जीवन-साथी बना लेने का निश्चय कर लेती है। वह जानती है कि गिल के साथ उसकी निभ जायेगी। क्योंकि दोनों का स्वभाव और चरित्र निश्छल, स्पष्ट, सहानुभूतिपूर्ण और सदाशयता से भरा हुआ है। जबकि जयदेव का स्वभाव और चरित्र कनक से नितान्त भिन्न दुरावभरा और स्वार्थी था। अतः गिल को अपना जीवन-साथी बनाकर कनक सही कदम उठाती है। उसके पिता भी उसके इस चुनाव से सहमत होते हैं और नैयर आदि भी विरोध नहीं करते।

निष्कर्ष

कनक के चरित्र का उपर्युक्त विश्लेषण यह स्पष्ट कर देता है कि कनक एक दृढ़ चरित्र वाली ऐसी निर्भीक नारी है जो अपने प्राप्य को प्राप्त करने के

लिए अपने परिवार के विरुद्ध सतत संघर्ष करती है और सफल हो जाती है। अन्त में जब उसे यह ज्ञात होता है कि उसने अपने आराध्य और जीवन-साथी जयदेव के चरित्र और स्वभाव को समझने में धोखा खाया था और अब उसके साथ नहीं पट सकती तो वह बिना किसी को दोष दिए, बिना किसी से शिकायत किए उसे छोड़ कर चली जाती है। उसने किसी पर भी निर्भर रहना नहीं सीखा है। संकट आने पर वह स्वयं नौकरी खोज कर अपनी जीविका चलाती है, जयदेव से विवाह होने से पहले और उसे छोड़ देने के बाद—दोनों बार। वह जानती है कि गलती उसने की है, इसलिये उस गलती का परिणाम भी उसे ही भोगना होगा। हम आरम्भ से अन्त तक उसे कभी भी लड़खड़ाते या विचलित होते नहीं देखते। अपने लक्ष्य के प्रति उसकी सी दृढ़ आस्था बहुत कम लोगों में मिलती है। कनक के रूप में आधुनिक शिक्षित भारतीय नारी यह समझने, लगी है कि उसे अपने अधिकारों को प्राप्त करने के लिये सतत संघर्ष करना होगा, तभी वह समाज में अपना उचित स्थान और सम्मान प्राप्त करने में समर्थ हो सकेगी। इसीलिये हमने उसे उगते हुए भारतीय नारीत्व का प्रतीक माना है। उपन्यास के अन्य किसी भी पात्र में कनक की सी चारित्रिक दृढ़ता और आत्म-निर्भरता की भावना और शक्ति नहीं मिलती, इसी कारण हमने उसे इस उपन्यास का सर्वाधिक सशक्त चरित्र माना है।

प्रश्न २२—"तारा एक ऐसी नारी है जो संघर्ष करने की शक्ति रखते हुए भी दूसरों की सहायता पर ही अधिक निर्भर करती है और सहायता न मिलने पर परिस्थितियों से विवश हो आत्म-समर्पण कर देती है।"—तारा के चरित्र का विश्लेषण करते हुए उपर्युक्त मत के सम्बन्ध में अपने विचार प्रकट कीजिए।

प्रश्न २३—"तारा का चरित्र एक सौम्य, सहनशील विद्रोही नारी का प्रतीक है।"—विवेचन कीजिए।

उत्तर :

दो ही प्रधान नारी-पात्र, कनक और तारा

इस उपन्यास में दो ही नारी-पात्र—कनक और तारा—सर्वाधिक प्रमुख और महत्त्वपूर्ण हैं। दोनों ही कथा में आरम्भ से अन्त तक अपना महत्त्वपूर्ण

स्थान और प्रभाव बनाए रखती हैं। डाक्टर त्रिभुवनसिंह ने इन दोनों के सम्बन्ध में लिखा है कि—"कनक और तारा आधुनिक पढ़ी-लिखी विचारशील नारी-वर्ग का प्रतिनिधित्त्व करती हैं। दोनों स्वाभिमानिनी हैं और जीवन के प्रति स्वस्थ दृष्टिकोण रखती हैं। वे पुरुष के साथ समता के आधार पर ही सम्बन्ध कायम कर सकती हैं। पुरानी रूढ़ियों से वे बँधी नहीं रह सकती। वे समाज में अपना स्थान बनाने के लिए संघर्षशील हैं और समाज के प्रगतिशील तत्त्वों से सहानुभूति रखती हैं फिर भी यशपाल पर यह आक्षेप किया जा सकता है कि वे तारा और कनक के चरित्र के वैयक्तिक पहलू को नहीं उभाड़ पाए। प्रत्येक व्यक्ति का अपना व्यक्तित्व होता है, उसकी अपनी कुछ ऐसी विशेषताएँ होती हैं जिनके कारण वह अन्य व्यक्तियों से भिन्न मालूम पड़ता है। तारा और कनक सभी दृष्टियों से एक-सी ही दीखती हैं। उनके व्यक्तित्त्व का कोई ऐसा पहलू नहीं उभड़ पाया है जिसके कारण वे अपने स्वतंत्र व्यक्तित्व की घोषणा कर सकें।"

डा० सिंह का कनक और तारा के सम्बन्ध में व्यक्त किया गया उपर्युक्त मन्तव्य पढ़कर ऐसा लगा कि वह इन दोनों के अन्तर को पकड़ने में धोखा खा गए हैं या उन्होंने अन्यमनस्कता से काम लिया है। ध्यान से देखने पर तारा और कनक के चरित्र की विशिष्टताएँ, जो परस्पर भिन्न हैं, पकड़ में आ जाती हैं। आरम्भ में कुछ दूर तक दोनों का चरित्र एक-सा दिखाई देता है, परन्तु उनके जीवन में संघर्ष का आरम्भ आते ही दोनों की संघर्ष-प्रणालियाँ भिन्न हो जाती हैं। विषम परिस्थितियों के विरुद्ध संघर्ष दोनों ही करती हैं, मगर उस संघर्ष में दृढ़ता और साहस की मात्रा में अन्तर आ जाता है। और इसी अन्तर तथा कार्य प्रणाली की भिन्नता ने दोनों के चरित्र को परस्पर भिन्न बना दिया है। कनक में हमें अद्भुत दृढ़ता, आत्म-निर्भरता, साहस और तेजस्विता दिखाई पड़ती है और तारा में निर्बलता, परमुखापेक्षिता, अपेक्षित साहस का अभाव और दृढ़ता की कमी मिलती है। समष्टि रूप से कनक का चरित्र तेजस्वी और तारा का सौम्य है। कनक एक अग्निपुंज के समान उग्र और दाहक सी है जिसके संसर्ग को झेल लेना हरेक के वश की बात नहीं है, जब कि तारा के सौम्य रूप को देख प्रत्येक उसके संसर्ग के लिए लालायित हो उठता है। दोनों के चरित्र में यही मूलभूत अन्तर है।

तारा एक शालीन, सुशिक्षित लड़की

तारा एक निम्न मध्य वर्ग की, आर्य समाजी वातावरण और आर्थिक अभाव-ग्रस्त परिवार की लड़की है। वह पढ़ने में कुशाग्र है। मेट्रिक की परीक्षा प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण करती है; फिर इन्टर उत्तीर्ण कर आगे कालेज में पढ़ने की इच्छा करती है। उसकी इच्छा जल्दी विवाह के बन्धन में न बँध एम. ए. तक पढ़ने की है। वह स्वभाव से शालीन, विनम्र और सौम्य है। उसे लड़कियों को घूरने या छेड़ने वाले लड़कों से वितृष्णा है। वह पड़ोसी रतन द्वारा छेड़छाड़ किए जाने पर उसे फटकार देती है। उसे वे लड़के अच्छे लगते हैं जो स्वभाव से बिल्कुल सरल, अनायास, सहृदय और विनीत होते हैं, जैसे जयदेव के मित्र 'असद भाई साहब'। वह कालेज में पढ़ना चाहती है परन्तु पिता की आर्थिक स्थिति कालेज़ की शिक्षा के खर्च को वहन करने योग्य नहीं है। अन्त में वह डाक्टर प्राणनाथ की सहायता से उनके घर के बच्चों को पढ़ाकर अपने दाखिले का खर्च निकाल लेती है। यहीं से उसमें स्वावलम्बन की भावना का उदय और विकास होने लगता है। कालेज में दाखिला ले, वहाँ की प्रगतिशील लड़कियों सुरेन्द्र, जुबेदा, गुर्दू आदि की संगति उसे अच्छी लगने लगती है और वह उनके साथ सभा-सुसाइटियों तथा राजनीनि में रुचि और भाग लेने लगती है।

उसके पिता मास्टर राम लुभाया आर्य-समाजी हैं। अपने बच्चों को आर्य समाजी नियम और अनुशासन में रखने का प्रयत्न करते हैं। परन्तु ता[illegible] यह पसन्द नहीं आता। वह अच्छे और चुस्त कपड़े पहनना चाहती है

कभी सहेलियों के साथ रेस्टोरेन्टों में खा-पी भी लेती है। इससे [illegible]

संस्कारों के बन्धनों से मुक्ति पाने का सन्तोष मिलता है। [illegible]रों ओर भटकते, निस्संकोच बातें करने और साथ रहने से समता और आत[illegible]घर पर मुसलमानों भूति होती है। इस प्रकार कालेज का वातावरण उसती है। वहाँ से निकलने में एक खुलापन उत्पन्न कर देता है परन्तु घ[illegible]र उसके साथ बलात्कार वातावरण के अनुरूप पूर्ववत बना रहता है। तारा[illegible] पाती है और फिर वहाँ जो उसे एक शालीन, सुशिक्षित, प्रगतिशील [illegible] जा पहुँचती है। यहाँ एक प्रस्तुत करता है। [illegible]न्त में पाकिस्तान में बची और

जीवन का पहला संघर्ष : प्रेम [illegible]न वाले दल के द्वारा उसका उद्धार

तारा के इस शान्त, हल्के से संघर्ष भारत पहुँचा दी जाती है। इस सारे [illegible]रिस्थितियों के भँवर में पड़ी थपेड़े खाती

समय उठता है जब सोमराज के साथ उसका विवाह होने की चर्चा चलती है। शीलो बहाने से उसे सोमराज को दिखाने ले जाती है। परन्तु सोमराज का प्रथम दर्शन ही उस पर प्रतिकूल प्रभाव डालता है। उसे सोमराज का अपनी ओर तीखेपन के साथ घूरना अच्छा नहीं लगता। अभी तक तारा के जीवन में असद का महत्वपूर्ण प्रवेश नहीं हो पाया है। उसे असद अच्छा अवश्य लगता है परन्तु यह अच्छा लगना प्रेम का रूप नहीं धारण कर पाया है। सोमराज के सम्बन्ध में उसे पता लगता है कि वह लफंगा लड़का है। उसकी पहली पत्नी की मृत्यु हो चुकी है। तारा दो कारणों से विवाह नहीं करना चाहती। इनमें से प्रमुख कारण यह है कि वह अभी विवाह न कर आगे पढ़ना चाहती है। दूसरा गौण कारण है, सोमराज का धृष्ट और लफंगा होना। जयदेव भी इस सम्बन्ध का विरोध करता है। परन्तु उसके माता-पिता, ताऊ-ताई आदि इस सम्बन्ध पर अड़े रहते हैं। इसी प्रकार कुछ समय निकल जाता है। तारा और असद का संसर्ग बढ़ता जाता है, और दोनों परस्पर प्रेम करने लगते हैं। इसी दौरान तारा को जीवन का एक और कटु अनुभव होता है। वह डाक्टर प्राणनाथ के भतीजों-भतीजियों को पढ़ाने उनके घर जाती रहती है। वहाँ कभी-कभी डाक्टर उसे अपने कमरे में बुलाकर बात कर लेते हैं। इसी बात को लक्ष्य कर उनके घर की औरतें तारा का वहाँ आना पसन्द नहीं करती और एक दिन नौकर द्वारा उससे कहला दिया जाता है कि वह पढ़ाने न आया करे। तारा

हैं। और स्वयं को अपमानित महसूस करती लौटने लगती है तो डाक्टर उसे अपने कमरे
जीवन में सारी वस्तुस्थिति समझा देते हैं और उसे सौ रुपए दे पढ़ाना बन्द कर
हैं। विषम प आग्रह करते हैं। असद से तारा की मुलाकात प्राय: डाक्टर के घर पर
में दृढ़ता और साहोती थी और डाक्टर उनके प्रेम-सम्बन्ध को भाँप गये थे।
कार्य प्रणाली की भिन्
कनक में हमें अद्भुत दृढ़ता
पड़ती है और तारा में निर्बल के विवाह की बात पुनः आरम्भ हो जाती है। दोनों
और दृढ़ता की कमी मिलती ग हो जाने के लिए विवाह की तिथि निश्चित
तारा का सौम्य है। कनक एक ठती है। वह जयदेव और कनक के प्रेम-सम्बन्ध
जिसके संसर्ग को झेल लेना हरेक ी है कि यदि इन दोनों का अन्तरजातीय विवाह
सौम्य रूप को देख प्रत्येक उसके संसर्ग उसके विवाह का विरोध न कर सहायता
के चरित्र में यही मूलभूत अन्तर है। और असद के सम्बन्धों का पता चलता

है तो वह बौखला जाता है। राजनीति में हिन्दू-मुस्लिम एकता का समर्थक जयदेव यह सहन नहीं कर पाता कि उसकी बहन एक मुसलमान से विवाह करे। यह स्थिति देख तारा गुप्त रूप से असद से मिलती है और उससे तुरन्त विवाह कर लेने का आग्रह करती है। परन्तु असद लाहौर की उस तनावभरी परि-स्थिति में यह कह कर इन्कार कर देता है कि उसकी पार्टी (वह कम्युनिस्टपार्टी का सदस्य है) उसे इस समय ऐसा करने की इजाजत नहीं देगी क्योंकि इस विवाह को तुरन्त हिन्दू-मुस्लिम का प्रश्न बना तूफान खड़ा कर दिया जायेगा। हताश तारा घर लौट आत्म-हत्या करने का प्रयत्न करती है परन्तु उसकी योजना सफल नहीं हो पाती। उधर जयदेव असद के प्रसंग को लेकर उसे खूब खरी-खोटी सुनाता है। इस पर तारा अपना सिर फोड़ लेती है। चारों तरफ से निराश और हताश हो अन्त में वह विवाह की मौन स्वीकृति दे देती है और अन्यमनस्कता के साथ विवाह की तैयारियों में सहायता भी करने लगती है।

यहीं हमें तारा और कनक के चरित्र, दृढ़ता और संघर्ष करने की शक्ति का अन्तर स्पष्ट हो जाता है। कनक सारे विरोधों का सामना करती हुई अपने निश्चय पर अडिग बनी रहती है। इसके विपरीत तारा विरोध के उग्र रूप को देख, हताश हो पहले आत्म-हत्या करने का प्रयत्न करती है और उसमें असफल हो चुपचाप आत्म-समर्पण कर देती है। और उसका विवाह हो जाता है। सुहागरात को ही उसे अपने पति सोमराज द्वारा अपमानित होना और पिटना पड़ता है।

परिस्थितियों के भँवर में त्रस्त असहाय लड़की

इसके उपरान्त हम तारा को भँवर में पड़े तिनके के समान चारों ओर भटकते, अत्याचार सहते और व्याकुल होते देखते हैं। सोमराज के घर पर मुसलमानों का आक्रमण होते ही वह पड़ोस के एक घर में कूद जाती है। वहाँ से निकलने पर नब्बू नामक गुन्डा उसे उठा ले जाता है और उसके साथ बलात्कार करता है। इसके बाद वह हाफिज जी के यहाँ शरण पाती है और फिर वहाँ से गुन्डों के चंगुल में फँस गफूर नामक गुन्डे के यहाँ जा पहुँचती है। यहाँ एक कुटनी बुढ़िया उसे फुसलाना चाहती है और अन्त में पाकिस्तान में बची और खोई हुई हिन्दू नारियों का उद्धार करने वाले दल के द्वारा उसका उद्धार होता है और वह बन्ती आदि के साथ भारत पहुंचा दी जाती है। इस सारे समय में तारा असहाय सी बनी परिस्थितियों के भँवर में पड़ी थपेड़े खाती

रहती है। पाकिस्तान से चलते समय असद की उससे मुलाकात होती है परन्तु यहाँ भी भाग्य तारा का साथ नहीं देता। असद उससे शाम को पुनः आने का वायदा कर चला जाता है और तारा का काफिला असद के आने से पूर्व ही भारत की सीमा की ओर रवाना हो जाता है। और सीमा को पार करते ही उसके जीवन का पहला अध्याय समाप्त हो जाता है। उसके परिचित सब लोग उसे मरा हुआ समझ लेते हैं।

विरक्ति और घृणा का उदय

सोमराज के साथ विवाह होने और सुहागरात को उसके साथ सोमराज द्वारा दुर्व्यवहार किए जाने के उपरान्त तारा को अपने घर-परिवार आदि सभी से घोर विरक्ति हो जाती है। वह हाफिज जी द्वारा उसके घरवालों का पता पूछने पर भी पता न बता शरणार्थी-कैम्प में भिजवा देने का आग्रह करती है। और आगे चल वह कौशल्या देवी को भी अपने घरवालों का पता नहीं बताती। सो ·राज के घर से उसके गायब हो जाने से सब लोग उसे मरा हुआ समझ लेते हैं। भारत में शरण पाने के बाद भी वह किसी को भी अपना या अपने घरवालों का असली परिचय न बता एक प्रकार से गुमनाम बनी रहती है। इसका कारण यह है कि उसे सब लोगों से घोर विरक्ति और घृणा हो गई है।

स्वावलम्बन और नए जीवन का आरम्भ

इसके उपरान्त तारा का नया जीवन आरम्भ होता है, जिससे उसके पिछले जीवन का प्रत्यक्षतः कोई सम्बन्ध नहीं रह जाता। तारा शिक्षित है, सुन्दर है, सौम्य है। बन्ती के घर की खोज के प्रयत्न में वह बन्ती के साथ उसके घरवालों द्वारा किए गए भयंकर व्यवहार को देख काँप उठती है, मर्माहत हो जाती है। वह दृढ़ निश्चय कर लेती है कि अपने घरवालों या सुसरालवालों को वह अपना पता नहीं लगने देगी। अपने सौम्य और मृदु व्यवहार के कारण पहले उसे मिसेज अगरवाला के यहाँ नौकरी और शरण मिलती है। वहीं वह अपने सौन्दर्य, शिक्षा और व्यवहार के कारण बड़े-बड़े लोगों के सम्पर्क में आती है और इसी सम्पर्क के कारण उसे केन्द्रीय सरकार की एक अच्छी सी नौकरी मिल जाती है। नरोत्तम के साथ उसका व्यवहार आत्मीयता भरा हो जाता है और नरोत्तम को अपने प्रति अधिक झुकता देख वह उससे स्पष्ट शब्दों में कह देती है कि वह उसे भाई मानती है,

इसलिए उसके साथ विवाह नहीं कर सकती। कुछ समय तक उसका जीवन सुचारू रूप से मन्थर गति से आगे बढ़ता रहता है। वह अपने जीवन से सन्तुष्ट-सी प्रतीत होती है परन्तु मन के भीतर कहीं एक खोखलेपन और रिक्तता की अनुभूति उसे व्याकुल बनाए रखती है। नौकरी में उन्नति करती हुई वह अन्डर सेक्रेटरी के पद तक पहुँच जाती है। जीवन की अधिकांश सुविधायें उसे मिलने लगती हैं। वह अपनी पूर्व-परिचित पूरणदेई और उसकी लड़की तारा की सहायता करती है, और उन्हें अपने साथ ही रख लेती है। मिस मर्सी, माथुर, चड्ढा आदि से उसके घनिष्ठ सम्बन्ध बन जाते हैं। परन्तु उसके द्वारा विवाह की चर्चा चलाए जाने पर वह साफ इन्कार कर देती है उसका यह जीवन घटनाहीन और एकरस रहता है।

सुख और संकट का पुनः उदय

परन्तु आगे चल कर उसके शान्त जीवन में दो पूर्व-परिचित व्यक्तियों के प्रवेश करने से उसके जीवन की एकरसता भंग हो जाती है। एक दिन अपने सरकारी काम-काज के सिलसिले में उसकी अचानक और अप्रत्यशित रूप से डाक्टर प्राणनाथ से भेंट हो जाती है जो केन्द्रीय सरकार में आर्थिक परामर्श-दाता हैं। दोनों एक दूसरे से मिल कर बड़े उत्साहित और प्रसन्न होते हैं। डाक्टर के रूप में एक स्नेही आत्मा और संरक्षक प्राप्त कर तारा के जीवन में हर्ष और सुख की लहर दौड़ जाती है और उनका यह मिलन दोनों के भावी जीवन में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण भाग अदा करता है।

परन्तु इसी समय तारा के जीवन में इसी प्रकार अप्रत्याशित रूप से एक अन्य व्यक्ति आता है जिसे देख वह भय, आशंका और भावी अनिष्ट की भावना से भर उठती है। वह व्यक्ति है उसका पति सोमराज। परन्तु वह उसके साथ पूर्ण उपेक्षा का व्यवहार कर उसे पुनः अपने पास नहीं फटकने देती। इससे भी पूर्व शीलो, रतन आदि उसके जीवन में आते हैं और वह सबकी सहायता करती है। स्वयं जीवन की कटुता और विषमता की भुक्त-भोगी होने के कारण वह सब की सहायता करती है। परन्तु वह अपने घर-वालों या ससुरालवालों से कोई सम्बन्ध नहीं रखती। वह जयदेव के पत्र का उत्तर तक नहीं देती परन्तु कनक के मिलने आने पर बड़े प्रेम के साथ उसका स्वागत और बातें करती है। सोमराज को देख कर उसे यह आशंका सताने लगती है कि कहीं यह दुष्ट उसके जीवन में पुनः तूफान न खड़ा कर दे।

जीवन की सहजता और सुकुमारता

तारा के यहाँ तक के जीवन को देख हमें यह पता लग जाता है कि वह जीवन की सहजता और सुकुमारता को ही पसन्द करती है। हम उसे कहीं भी परिस्थितियों के विरुद्ध सशक्त संघर्ष करते हुए नहीं देखते। उसे जीवन में सब कुछ सहज रूप से मिलता चला जाता है। जब भी बाधाएँ आती हैं तो वह लड़खड़ा जाती है। उसमें हम कनक की सी संघर्ष करने की वह शक्ति नहीं पाते जो विषम परिस्थितियों पर विजय प्राप्त कर उन्हें अपने अनुकूल बना लेती है। तारा का जीवन एक सपाट, समतल सा जीवन है, जिसमें यदि कभी गहरे उतार-चढ़ाव आते हैं तो वह घबड़ा कर या तो आत्म-समर्पण कर देती है या दूसरों की सहायता से ही अपना उद्धार कर पाती है। डाक्टर प्राणनाथ के साथ हुए अपने विवाह के उपरान्त उसके जीवन में जो बवन्डर उठ खड़ा होता है, उसके कारण वह बहुत अधिक घबड़ा जाती है और भयंकर रूप से चिन्तित रहने लगती है। वह बीमार और पीली पड़ जाती है। उसे यह पश्चाताप खाए जाता है कि उसके कारण डाक्टर जैसे महान व्यक्ति का जीवन नष्ट हुआ जा रहा है।

ईमानदारी : एक विशिष्ट गुण

तारा स्वभाव से निश्छल और ईमानदार है। वह अपने और अपने विचारों के सम्बन्ध में किसी को भी धोखे में नहीं रखती। सोमराज उसे पसन्द नहीं आता। वह इस बात को स्पष्ट कह देती है और यह बात उड़ते-उड़ते सोमराज के कान तक पहुँच जाती है। असद के प्रति अपनी आसक्ति को भी वह देर तक छिपा नहीं पाती। जयदेव और डाक्टर प्राणनाथ इसे भाँप लेते हैं। आगे चल कर वह नरोत्तम, प्रोफेसर तिवारी, मेजर कपूर आदि किसी को भी भ्रम में नहीं रखती। इन सबके द्वारा किए गए विवाह के प्रस्ताव को साफ टाल देती है। इसका शायद यह कारण रहा हो कि उसे उस गुन्डे नब्बू द्वारा एक बुरी बीमारी लग गई थी, इसलिए वह किसी के साथ विवाह कर अपने साथ उसका भी जीवन बर्बाद नहीं करना चाहती थी। परन्तु वह इस कारण को किसी पर प्रकट नहीं करती। जब डाक्टर प्राणनाथ उसके सामने विवाह का प्रस्ताव रखते हैं, तब वह बड़ी मुश्किल से, काफी रो धोकर, उन्हें अपनी उस गुप्त बीमारी की बात बता विवाह करने में अपनी

असमर्थता प्रकट कर देती है। वह उनके साथ इस आश्वासन को प्राप्त करके ही शादी करने को सहमत होती है कि पहले उस बीमारी का इलाज होगा। तारा ईमानदार होने के साथ-साथ सहृदय और सदय भी है। वह अपने सम्पर्क में आने वाले हर संकटग्रस्त की अपनी शक्ति भर सहायता करती है। पूरणदेई और उसकी लड़की सीता को अपने यहाँ आश्रय देती है और चंचल सीता के फिसल जाने पर दो वार उसकी सहायता करती है। शीलो को दुखी देख उसे रतन के पास चले जाने की सलाह देती है। कनक के संकटग्रस्त होने पर उसे सान्त्वना देती तथा उसके लिए नौकरी ढ़ूँढ़ने में सहायता देती है। संक्षेप में वह एक भली, स्वावलम्बी, ईमानदार, सहानुभूतिशील, सौम्य और सहृदय नारी है।

तारा और प्रेम

तारा यौवन के आरम्भिक चरण में असद के प्रति अनुरक्त हो उससे प्रेम करने लगती है। इसे हम उसके प्रेम के 'आवेग' की स्थिति मान सकते हैं। अपने इस प्रेम को विषम परिस्थितियों के कारण सफल न होता देख वह आत्म-हत्या तक करने का प्रयत्न करती है और चारों ओर से हताश होकर ही सोमराज के साथ अपने विवाह की मौन स्वीकृति दे देती है। उसका यह प्रेम-प्रसंग यहीं समाप्त हो जाता है। डाक्टर प्राणनाथ के प्रति उसके मन में सम्मान और श्रद्धा की भावना है। डाक्टर आगे पढ़ने में उसकी आर्थिक सहायता करते हैं। उससे बड़े स्नेह और अपनेपन के साथ बात और व्यवहार करते हैं और एक दिन बातों-ही-बातों में उससे यह भी कह बैठते हैं कि—'आइ लाइक यू' (मैं तुम्हें पसन्द करता हूँ)। डाक्टर उससे अवस्था और स्थिति—दोनों ही दृष्टि से बहुत बड़े हैं। इसलिए तारा के प्रति उनके इस भाव को 'प्रेम' न कह कर बड़ का छोटे के प्रति स्नेह ही कहा जायेगा। परन्तु इस स्नेह के अन्तर की गहराइयों में छिपी अनुराग की भावना भी है और तारा की सहज नारी बुद्धि इसे भाँप जाती है। बहुत वर्षों बाद जब दिल्ली में दोनों की अचानक फिर मुलाकात होती है, तो दोनों ही एक दूसरे को देख प्रसन्न और उत्साहित हो उठते हैं।

इस पुनर्मिलन के समय दोनों ही अपने-अपने परिवार और आत्मीय जनों से दूर एकाकी और एकरस जीवन व्यतीत कर रहे हैं। दोनों ही के मन

में एक दूसरे को देखकर सहानुभूति उत्पन्न होती है। डाक्टर के प्रति तारा की श्रद्धा सहानुभूति और आत्मीयता का रूप धारण कर लेती है। वह उनके जीवन में आकर उनके अस्त-व्यस्त एकाकी जीवन को अपनी सेवा और स्नेह द्वारा भर देना चाहती है। और बदले में उसे संरक्षण और जीवन का अवलम्ब मिल जायेगा। डाक्टर भी अपने जीवन की एकरसता और रिक्तता को दूर करने को लालायित हो उठते हैं। और इसी कारण दोनों परस्पर जीवन के सह-यात्री बनने का निश्चय कर लेते हैं। तारा का यह निश्चय सहानुभूति, सम्मान और स्वयं संरक्षण प्राप्त करने की भावना से प्रेरित है। यह प्रेमावेग की स्थिति का निर्णय नहीं है जो भविष्य की मनोरम आकर्षक कल्पनाओं से भरा रहता है। यह निर्णय विशुद्ध यथार्थ पर आधारित है। अस्तु,

निष्कर्ष

सक्षेप में तारा एक ऐसी सुशिक्षित, सौम्य और सुन्दर नारी है जो रूढ़ सामाजिक बन्धनों को भंग कर अपना मनचाहा साथी प्राप्त करना चाहती है परन्तु विपरीत और प्रबल विषम परिस्थितियाँ उसकी मुराद को पूरा नहीं होने देती। वह उनके विरुद्ध संघर्ष करने का भी प्रयत्न करती है परन्तु प्रियतम असद के सहयोग न करने से असफल हो जाती है। कुछ लोग असद के इस कार्य को कायरता मानेंगे मगर असद कम्युनिस्ट होने के कारण अपने व्यक्तिगत सुख और उपलब्धि की अपेक्षा अपने कार्य द्वारा समाज पर पड़ने वाले घातक प्रभाव को अधिक महत्त्व देता है। इसी कारण तारा को असफलता और हताशा का सामना करना पड़ता है। उसकी विद्रोह-भावना समाप्त हो जाती है। उसमें अपने परिवार का खुलकर विरोध करने का साहस नहीं होता। इसी अपेक्षित साहस के अभाव के कारण उसे आगे चलकर भयंकर संकटों और यंत्रणाओं को भोगना पड़ता है। कनक में यह साहस है, इसलिए उसे अपने प्राप्य जयदेव को प्राप्त करने में सफलता मिल जाती है। परन्तु तारा के स्वभाव और चरित्र में कुछ ऐसे विशिष्ट गुण हैं जो उसे सर्वत्र, सभी समाजों में लोकप्रिय बना देते हैं। वह स्वभाव से सौम्य, मृदु, विनम्र और कोमल है। रहन-सहन और बोलचाल का अच्छा और शिष्ट तरीका आता है। उसके सौन्दर्य और मृदु व्यवहार से लोग प्रभावित हो उठते हैं। करोड़पति मिस्टर अगरवाला और केन्द्रीय सरकार के गृह-सचिव मिस्टर रावत तक उसका

सम्मान करने लगते हैं। दूसरी तरफ पूरणदेई और सीता उसकी सहायता और स्नेह पाकर उसके प्रति कृतज्ञ बनी रहती हैं। उसके दफ्तर के एक बाबू उसी के नाम पर अपनी लड़की का नाम तारा रखते हैं। नरोत्तम, तिवारी, मेजर कपूर उसके प्रणय के प्रार्थी रहते हैं। यह सब तारा के सौम्य, मृदु, सहानुभूति शील स्वभाव और व्यक्तित्व का ही प्रभाव है। अन्त में डाक्टर प्राणनाथ जैसे अन्तरराष्ट्रीय ख्याति के विद्वान उसे जीवन-संगिनी के रूप में प्राप्त कर अपने जीवन को धन्य मानते हैं। तारा एक ऐसी सुशील, सुन्दर और मीठे स्वभाव की नारी है जिसे प्राप्त करने की कामना, पत्नी-रूप में प्राप्त करने की कामना, प्रत्येक पुरुष के मन में उत्पन्न हो सकती है।

कनक से तारा का व्यक्तित्व भिन्न है। कनक तेजस्वी और दृढ़ है। तारा सौम्य और कोमल है। समस्याओं को सुलझाने का दोनों का ढंग ही अलग-अलग है। इसलिए यह कहना नितान्त असंगत है कि तारा और कनक के चरित्र एक से, व्यक्तित्व हीन और सपाट हैं।

प्रश्न २४—"सूद जी का चरित्र एक टिपीकल कांग्रेसी का चरित्र है।" —सूद जी के चरित्र का विश्लेषण करते हुए उपर्युक्त कथन के सम्बन्ध में अपने विचार प्रकट कीजिए।

प्रश्न २५—"सूद जी उन कांग्रेसी नेताओं के प्रतीक हैं जो सत्ता के भूखे ओर गुटबाज हैं।"—विवेचन कीजिए।

उत्तर :

व्यक्तिगत स्वार्थ से मुक्त पुरुष

सूद जी का पूरा नाम विश्वनाथ सूद है। वह इस उपन्यास के एक बहुत सशक्त पात्र हैं। यदि दूसरे भाग में सूद जी न होते तो यह भाग इतना प्रभावशाली, रोचक और तत्कालीन राजनीति पर इतना यथार्थवादी प्रकाश डालने वाला न बन पाता। सूद जी के अभाव में जयदेव भी इस भाग में इतना महत्व न प्राप्त कर पाता। ऐसे सूद जी अपने विद्यार्थी जीवन से ही सामाजिक और सार्वजनिक आन्दोलनों में रुचि और भाग लेने लगे थे। सन् १९२१ से ही खद्दर पहनने लगे थे। १९३१ और ३४ के बीच हुए कांग्रेस द्वारा छेड़े गए समस्त आन्दोलनों में उन्होंने भाग लिया था और जेल गए थे। इसलिए

जनता उनकी भक्त थी, परन्तु उनके घर वाले उनसे उतने ही अधिक नाराज थे। सूद जी वकालत पास कर वकील और नेता बन जाने पर भी, कुछ भी न कमाने के कारण घर के लिए बोझ बने हुये थे। सूद जी ने अपना समस्त जीवन जन-सेवा को अर्पित करने का व्रत ले विवाह करने से इन्कार कर दिया था। घर की सम्पत्ति का बटवारा होने पर उनके हिस्से में आटे की एक चक्की आई थी जिसे उन्होंने किराए पर उठा दिया था। लोग उन्हें श्रद्धा से 'फकीर वकील' कहते थे। जालन्धर में सूद जी बहुत लोकप्रिय होने के कारण ही, सन् १६४६ में, अँग्रेज-सरकार का प्रबल विरोध होते हुए भी पंजाब असेम्बली के सदस्य चुन लिए गए थे। अब उनका प्रभाव और भी अधिक बढ़ गया था। उनका रहन-सहन बहुत सादा था। खद्दर का कुर्त्ता और धोती या पजामा पहनते थे। सवारी के लिए एक पुरानी साईकिल थी। विभाजन के समय जालन्धर की विकट परिस्थिति को वही सम्हाल रहे थे। सरकारी अधिकारी हर बात में उनकी सलाह लेते थे। पूर्वी पंजाब में नया मंत्रिमंडल बनाने की चर्चा चल रही थी और सूद जी इस सम्बन्ध में बहुत चौकस और चिन्तित थे।

सूद जी का यह रूप एक त्यागी और तपस्वी ऐसे व्यक्ति का रूप है जिसने राष्ट्र और जनता की सेवा के लिए अपना सारा जीवन समर्पित कर दिया है। इस कार्य में कहीं बाधा न पड़े, इसलिए उन्होंने अपना विवाह तक नहीं किया है। उनका रहन-सहन बहुत सादा है। असेम्बली का सदस्य बन जाने पर भी उनके रहन-सहन और जीवन में कोई अन्तर नहीं आ पाता। ऐसे सूद जी श्रद्धा और सम्मान के पात्र हैं। यदि वह चाहते तो अपने पद और प्रभाव का प्रयोग कर अनेक व्यक्तिगत सुख-सुविधाएँ, धन-सम्पत्ति आदि प्राप्त कर लेते, परन्तु उन्होंने ऐसा कभी नहीं किया।

एक कुशल राजनीतिज्ञ

प्रभाव बढ़ने के साथ-साथ सूद जी की राजनीतिक सूझ-बूझ भी बढ़ती और चौकन्नी होती जाती है। देश का विभाजन हो जाने के बाद शायद अब जन-सेवा की उतनी आवश्यकता नहीं रही है जितनी कि राजनीतिक दाँव-पेच द्वारा अपना प्रभाव और शक्ति बढ़ाने की। इसलिए सूद जी इसी काम में जुट जाते हैं। विभाजन के बाद पश्चिमी पंजाब के सारे कांग्रेसी नेता पूर्वी

पंजाब में आ गए थे। कांग्रेस में सूद जी की अपेक्षा उनका प्रभाव अधिक था। कांग्रेस की 'हाई कमान्ड' तक उनकी पहुँच थी और उनकी बात मानी जाती थी। यही नेता लोग पंजाब में नया कांग्रेसी मन्त्रिमण्डल बनाने का प्रयत्न करते हैं और सूद जी को यह बात अखरती है। उनकी शिकायत यह है कि काम तो हम लोग करते हैं और मंत्रिमंडल ये लोग बनाते हैं। चुनाव के समय चन्दा हम इकट्ठा करते हैं और उसका लाभ ये लोग उठाते हैं। इसलिए जयदेव के सामने वह अपना क्षोभ व्यक्त करते हुए कहते हैं कि हम भी देख लेंगे कि ये नए लोग कैसे मन्त्रिमण्डल बना और उसे चला पाते हैं। सूद जी का यह कहना कांग्रेस में आजादी के बाद उभरने वाली, तीव्र गति से उभरने वाली, उस प्रवृति का सूचक है जिसने कांग्रेस में सत्ता-मोह और भीतरी दलबन्दी को बढ़ावा दिया था और जिसका भयंकर परिणाम आज हमारे देश को भोगना पड़ रहा है। सूद जी इस आन्तरिक राजनीतिक दलबन्दी के कुशल खिलाड़ी और व्यूह-निर्माता हैं।

प्रचार-साधनों के उपयोग में पटु

सूद जी कुशल राजनीतिक सूझ-बूझ के आदमी हैं। जयदेव उनका आश्रित है। वह जानते हैं कि जयदेव पत्रकार है। सूद जी विभाजन के समय ही ईसाक के 'कमाल प्रेस' को अपने अधिकार में ले लेते हैं। वह जयदेव को उसी प्रेस का काम सम्हलावा देते हैं। कुछ समय बाद जब जयदेव उनसे आग्रह करता है कि वह उसे डिस्ट्रिक्ट-कमान्डर बनवा दें, तो सूद जी अपना असली अभिप्राय उसके सामने प्रकट कर देते हैं कि—"पुलिस सुपरिन्टेन्डेन्ट का काम सरकार के निर्देश पूरे करना है। महत्त्व तो निर्देशों का है, उचित नीति का है। नौकरी का राजनीतिक महत्त्व क्या है? प्रेस तो एक प्रकार की राजनीतिक शक्ति है। उसे खामुखा दूसरे आदमी के हाथ में दे दें, इसमें क्या बुद्धिमत्ता है? प्रेस पर तुम्हारी तनखाह का क्या बोझ है?...."

सूद जी यह जानते हैं कि राजनीति में प्रेस का बहुत महत्त्व और शक्ति है। उसके द्वारा अखबार निकाल कर अपना, अपने विचारों और अपने गुट का प्रचार किया जा सकता है, जो प्रभाव और शक्ति बढ़ाने में सहायक होगा। इसलिए सूद जी जयदेव को एक समाचार-पत्र निकालने की सलाह देते हैं। इस नए समाचार-पत्र 'नाजिर' की नीतियाँ सूद जी की ही नीतियाँ रहती

हैं। जयदेव 'नाजिर' के माध्यम से अपना और सूद जी का खूब प्रचार करता है। इस सम्बन्ध में सूद जी की राजनीतिक सूझ-बूझ उस समय फिर दिखाई देती है जब चुनाव के समय सूद जी के इशारे पर जयदेव 'प्रधान-सम्पादक' के पद से अपना नाम हटा प्रीतमसिंह गिल को प्रधान-सम्पादक बना देता है। क्योंकि ऐसा न करने पर जनता यह कहती कि 'नाजिर' जनता का पत्र न होकर कुछ नेताओं का चुनाव-प्रचार करने वाला पत्र बन गया है। सूद जी 'नाजिर' से कोई प्रत्यक्ष सम्बन्ध नहीं रखते परन्तु उस पर उन्हीं का अप्रत्यक्ष नियंत्रण रहता है। एक बार जयदेव की अनुपस्थिति में कनक कांग्रेस की आलोचना करती हुई एक तीखा सम्पादकीय लिख देती है। सूद जी उसे पढ़ कर जयदेव को डाँट पिलाते हैं और जयदेव कनक पर अपनी झुँझलाहट उतारता है।

पूँजीवाद के समर्थक सूद जी

सूद जी के चरित्र का यह एक बहुत बड़ा विचित्र-सा विरोधाभास है कि वह स्वयं पूँजीपति नहीं हैं। उनके पास अपनी कोई धन-सम्पत्ति नहीं है, परन्तु फिर भी वह पूँजीवाद और पूँजीपतियों के कट्टर हिमायती और समाजवाद के घोर विरोधी हैं। यह बात ऊपर से देखने पर विचित्र-सी लगती है परन्तु तनिक ध्यान से देखने पर दिन की रोशनी की तरह उजागर हो उठती है। भारत में होने वाले चुनाव बड़े खर्चीले होते हैं, इसलिए चुनाव लड़ने के लिए काफी धन चाहिए। राजनीतिक नेताओं को यह धन पर्याप्त मात्रा में धनी और पूँजीपति लोगों से ही मिल सकता है और मिलता भी है। व्यापारी किसी को भी अपना पैसा लाभ उठाने के लिए ही दे सकता है और देता है। राजनीतिक नेता व्यापारियों से धन लेकर चुनाव लड़ते हैं और सत्ता हाथ में आ जाने पर अपने उन दान-दाताओं को हर सम्भव लाभ पहुँचाने का प्रयत्न करते हैं। क्योंकि वे जानते हैं कि यदि वे उन्हें लाभ नहीं पहुँचायेंगे तो आगामी चुनावों में उन्हें इन पूँजीपतियों से चुनाव लड़ने के लिए चन्दा नहीं मिलेगा और वे चुनाव में पराजित हो सत्ता से वंचित रह जायेंगे। स्वार्थों का यह गठबन्धन ही सूद जी जैसे राजनीतिक नेताओं को पूँजीवाद का प्रबल समर्थक बना देता है। यशपाल के शब्दों में—"मुनाफे को ही धर्म समझने वाले बड़े-बड़े पूँजीपति कांग्रेसी लोगों के प्रति श्रद्धा और

उदारता, घाटा उठाकर नहीं दिखा रहे थे"। परन्तु सूद जी का व्यक्तिगत जीवन बहुत सादा और सरल था। उनकी न जमीन-जायदाद बटोरने की निन्दा थी, न मकान खड़ा कर लेने या बैंक-बैलेन्स जमा करने की अफवाह थी। उनके विरोधी भी उन्हें जर-जन-जमीन के मोह से मुक्त मानते थे।

परन्तु फिर भी सूद जी पूँजीवादी अर्थ-नीति और व्यवस्था के कट्टर समर्थक हैं। वह डाक्टर प्राणनाथ और डाक्टर सालिस द्वारा बनाई गई सरकारी नियंत्रण में उत्पादन वाली नीति का घोर विरोध करते है। वह डाक्टर से कहते हैं कि "राष्ट्रीय नियंत्रण में उत्पादन करने वाली योजना लागू कर देने से कांग्रेस जनता के सब महत्व पूर्ण अंगों का विश्वास और सहयोग खो बैठेगी। यह योजना तो उन लोगों के लिए सीधी-सादी कम्युनिज्म की धमकी है। यह योजना कांग्रेस के लिए आत्म-हत्या बन जायेगी।" यहाँ 'जनता के सब महत्वपूर्ण अंगों' से सूद जी का अभिप्राय पूँजीपति-वर्ग से है। यदि यह वर्ग कांग्रेस के साथ सहयोग नहीं करेगा तो कांग्रेस को चुनाव लड़ने के लिए चन्दा कहाँ से मिलेगा। और जब चन्दा नहीं मिलेगा तो कांग्रेस की सरकार कैसे बन सकेगी और फिर ऐसी स्थिति में इस योजना को कार्यान्वित कौन करेगा? सूद जी की यही तर्क पद्धति है। उनके लिए चुनाव में विजय प्राप्त कर सरकार बनाना सर्वाधित महत्वपूर्ण काय है और यह कार्य बिना पूँजीपतियों के सहयोग के असम्भव है। सूद जी इसी कारण पूँजीपतियों के कट्टर हिमायती और समाजवाद के विरोधी हैं। अपनी इस बात को वह डाक्टर प्राणनाथ से बहस करते हुए स्पष्ट शब्दों में इस प्रकार प्रस्तुत करते हैं—

"प्रधान मंत्री तो हवा में रहते हैं। प्रधान मंत्री लाखों आदमियों की भीड़ से एक साथ मिलते हैं। काम भीड़ से नहीं चलता। प्रधानमंत्री भीड़ से चुनाव के लिए चन्दे की ही अपील कर के देख लें? लाख की भीड़ से दस हजार भी नहीं मिलेगा। आगामी इलेक्शन के लिए एक-एक राज्य में करोड़-करोड़ का खर्च पड़ेगा। प्रधानमंत्री इकट्ठा कर देंगे यह रकम? सोशलिस्टिक ढंग एक बात है पर ढंग व्यावहारिक तो होना चाहिए। अव्यावहारिक ढंग हम लोग कैसे मंजूर कर सकते हैं। जिम्मेवारी तो हमारी है। वे तो अपना आशीर्वाद देकर एक तरफ हो जायेंगे। यह बात आपको जरूर ध्यान में रखनी होगी।"

यह है सूद जी का असली रूप और दृष्टिकोण। क्योंकि उन्हें आगामी चुनावों में कांग्रेस को विजय दिला कर कांग्रेस की सरकार बनानी है और यह कार्य पूँजीपतियों के आर्थिक सहयोग बिना असम्भव है, इसलिए समाजवाद की बातें कर पूँजीपतियों को नाराज और चौकन्ना नहीं बना देना है। सूद जी के लिए देश और समाज के भविष्य की अपेक्षा सत्ता प्राप्त करना अधिक महत्त्व रखता है। जो लोग राजनीति में थोड़ी-सी भी दिलचस्पी रखते हैं, अखबार पढ़ते हैं, उन्हें मालूम होगा कि इन्दिरा-सरकार द्वारा देश के प्रमुख बैंकों का राष्ट्रीयकरण कर दिए जाने पर सूद जी जैसे ही नेताओं ने इस राष्ट्रीयकरण के विरुद्ध कैसा जहर उगला था। वस्तुतः सूद जी कांग्रेस के ऐसे ही नेताओं के प्रतीक हैं, जो पूँजीवाद के प्रबल समर्थक और समाजवाद के कट्टर दुश्मन हैं। ये नेतागण आजकल 'सिंडीकेट' के नाम से प्रसिद्ध और बदनाम हैं। इन नेताओं की एक सबसे बड़ी विशेषता यह है कि ये सभी चुनावों में बुरी तरह से हार चुके हैं, फिर भी कांग्रेस संगठन में इन्हीं की सबसे अधिक चलती है। अपनी समाजवाद-विरोधी नीतियों के कारण सूद जी भी सन् १९५७ के आम चुनाव में सत्रह हजार वोटों से हार खा जाते हैं।

अपने समर्थकों के प्रबल समर्थक

सूद जी राजनीति के कुशल खिलाड़ी हैं। वह राजनीति के इस गूढ़ रहस्य को भली-भाँति जानते हैं कि राजनीति में अपनी स्थिति और प्रभाव सुरक्षित बनाए रखने के लिए अपने कट्टर समर्थकों की एक बड़ी फौज चाहिए। और यह फौज तभी खड़ी की जा सकती है जब अपने आसपास चक्कर काटने वाले लोगों की उचित-अनुचित सहायता कर उन्हें लाभ पहुँचाया जाय। सूद जी अपनी स्थिति मजबूत करने के लिए अपने लोगों को हर तरह से सहायता करते और लाभ पहुँचाते रहते हैं। वह जयदेव को संरक्षण दे, उसे 'नाजिर' का प्रधान सम्पादक बना हमेशा के लिए अपना मुरीद और कट्टर समर्थक बना लेते है। इसमें हम कोई अनैतिकता नहीं देखते। परन्तु जब सोमराज जैसा लफंगा सूद जी से राजनीतिक पीड़ित हो जाने का भूठा प्रमाण-पत्र पा जाता है, तो सूद जी के चरित्र पर एक कलंक लग जाता है। राजनीति का एक गूढ़ मंत्र यह भी है कि अपने विरोधियों का समूल नाश

कर डालना चाहिए। डाक्टर प्राणनाथ सूद जी के आर्थिक सुझावों को स्वीकार नहीं करते। इस पर सूद जी पहले उन्हें किसी युनिवर्सिटी का वाइस-चांसलर वना देने का लालच देते हैं। और डाक्टर जब फिर भी उनकी बात नहीं मानते तो सूद जी उनके विवाह को लेकर उनके विरुद्ध भयानक षड्यंत्र रच उनके जीवन को बर्बाद कर देने का प्रयत्न करते हैं। अपने समर्थकों का हर तरह से समर्थन और सहायता करना तथा अपने विरोधियों का हर तरह के हथकन्डे अपना कर समूल विनाश करने का प्रयत्न करना सूद जी की राजनीति के प्रधान अंग हैं।

सच्चरित्र और तानाशाह

सूद जी राजनीति में चाहे कितने ही प्रतिक्रियावादी और कुटिल क्यों न हों, परन्तु उनका व्यक्तिगत चरित्र निष्कलंक और उज्जवल है। उन्होंने विद्यार्थी-जीवन से ही जन-सेवा का व्रत लिया है और अपना सारा जीवन और समय जन-सेवा में लगाने के कारण अपना विवाह तक नहीं किया है। वकील होते हुए भी कभी धनोपार्जन का प्रयत्न नहीं किया है। सब लोग उन्हें 'फकीर वकील' कहते हैं। रहन-सहन बिलकुल सादा है। मोटे खद्दर के कपड़े पहनते हैं, मामूली मकान में रहते हैं और सब की सहायता करने को हमेशा तैयार रहते हैं। धन, नारी, जमीन उन्हें आकर्षित नहीं करते। वह चारित्रिक लम्पटता के घोर विरोधी हैं। जयदेव और उर्मिला का सम्बन्ध उन्हें अच्छा नहीं लगता। एक दिन वह उर्मिला, कनक और जयदेव को साथ बैठा देख, जयदेव को नीचे बुला वहुत डाटते हैं। जयदेव की वदनामी न हो, इसलिए उर्मिला को तुरन्त नर्स के शिक्षण के लिए भिजवा देते हैं और पंडित गिरधारी लाल से पत्र-व्यवहार कर जयदेव और कनक के विवाह का प्रबन्ध कर देते हैं।

परन्तु सूद जी स्वभाव से तानाशाह हैं। सत्ता के प्रति उन्हें प्रबल मोह है। वह स्वयं को कांग्रेस का कर्ण-धार सा समझते हैं। वह अपना विरोध किसी भी व्यक्ति द्वारा और किसी भी दशा में सहन नहीं कर पाते। डाक्टर प्राणनाथ से वह तानाशाही लहजे में ही वातें करते हैं। जब कोई उनकी बात नहीं मानता तो तानाशाह के ही समान उसे उखाड़ने और बर्बाद करने में जुट जाते हैं। वह घुमा-फिरा कर बात या व्यवहार करना पसन्द नहीं करते।

सब कुछ मुँह पर और स्पष्ट कह देते हैं। तानाशाह के ही समान अपने आदमियों की हर उचित-अनुचित सहायता करते हैं। इसीलिए स्वार्थी लोगों की उनके चारों ओर भीड़-सी लगी रहती है।

निष्कर्ष

हमारा अनुमान है कि यशपाल ने सूद जी का चरित्र उत्तर भारत के एक विशाल राज्य के एक अत्यन्त प्रसिद्ध और शक्तिशाली नेता के आधार पर ही चित्रित किया है। उनका चरित्र इस नेता के चरित्र से हूबहू मिलता है। भारतीय कांग्रेस में सूद जी जैसे नेताओं की बहुलता है। ऐसे नेता कांग्रेस के प्रतिक्रियावादी तत्वों का नेतृत्त्व और प्रतिनिधित्त्व करते हैं। इस प्रकार सूद जी के चरित्र को कांग्रेस के ऐसे नेताओं का प्रतीक माना जा सकता है। सत्ता का मोह इनके चरित्र का मूलाधार है। सत्ता प्राप्त करने के लिए वे नेतागगण उचित-अनुचित सभी प्रकार के साधनों और हथकन्डों का खुल कर उपयोग करते हैं।

प्रश्न २६—डाक्टर प्राणनाथ के चरित्र का विश्लेषण करते हुए बताइये कि क्या उन्हें प्रगतिशील बौद्धिक जनों का प्रतीक माना जा सकता है ?

उत्तर :

अन्तरराष्ट्रीय ख्याति के अर्थ शास्त्री

डाक्टर प्राणनाथ इस उपन्यास के एक ऐसे विशिष्ट पात्र हैं जो अन्य सारे पात्रों से नितान्त भिन्न दिखाई पड़ते हैं। इन्हें देख प्रेमचन्द के 'गोदान' के डाक्टर महता याद आ जाते हैं, यद्यपि दोनों में पर्याप्त अन्तर और भिन्नता है। प्राणनाथ के चरित्र में वह विचित्रता नहीं मिलती जो डाक्टर महता में है। डाक्टर प्राणनाथ लाहौर के एक पुराने रईस और मिल-मालिक सेठ गोपालशाह के पुत्र हैं। जयदेव के पिता मास्टर रामलुभाया ने डाक्टर को बचपन में आठ वर्ष तक पढ़ाया था। डाक्टर मास्टर जी का इसी कारण बहुत सम्मान करते हैं। जयदेव और तारा पर भी इसी कारण उनका स्नेह और कृपादृष्टि है। डाक्टर सन् १९१९ में आक्सफोर्ड से अर्थशास्त्र में पी. एच. डी. की उपाधि प्राप्त कर भारत लौटे थे। वहाँ बड़े-बड़े पत्रों में उनके लेख प्रकाशित होते रहते थे। बड़े-बड़े अँग्रेज अर्थ-शास्त्रियों ने 'जीनियस' कहकर

डाक्टर की सूझ-बूझ और प्रतिभा की प्रशंसा करते हुए उनकी तुलना टौरी और डंकन जैसे अन्तरराष्ट्रीय ख्याति के अर्थशास्त्रियों से की थी। भारत आकर वह पंजाव युनिवर्सिटी में युनिवर्सिटी प्रोफेसर बन गये थे। द्वितीय विश्व-युद्ध के समय पंजाब के गवर्नर ने उन्हें आर्थिक विषयों का सरकारी परामर्शदाता नियुक्त कर दिया था। तब से वह उसी पद पर नाम कर रहे थे।

प्रगतिशील विचारधारा के विद्वान

डाक्टर के सम्बन्ध में यह प्रसिद्ध था कि वह यद्यपि कम्युनिस्टों के संगठन से सम्पर्क नहीं रखते थे परन्तु विचारों से मार्क्सवादी और उग्र परिवर्तन के समर्थक थे। वह कम्युनिस्टों को भी रूढ़िवादी कह कर आलोचना किया करते थे। मार्क्सवादी विचारधारा के समर्थक होने के कारण लाहौर के कम्युनिस्ट प्राय: उनसे मिलते और विचार-विमर्श किया करते थे। डाक्टर आर्थिक विषयों के तो विशेषज्ञ हैं ही, उनकी राजनीतिक सूझ-बूझ बड़ी गहरी और सुलझी हुई है। वह अँग्रेज-सरकार की कूटनीति को खूब अच्छी तरह से समझते हैं। वह विभाजन से पूर्व की पंजाब की भूमि-समस्या का विश्लेषण करते हुए असद से कहते हैं—

"मुझसे गवर्नर ने पंजाब के किसानों में फैले असन्तोष के आर्थिक कारणों के विषय में रिपोर्ट माँगी थी। उसे मालूम है कि किसान भूमि-व्यवस्था में परिवर्तन करने के लिए विद्रोह करने पर तुले हैं। युनियनिस्ट-मिनिस्ट्री उन्हें दबा नहीं सकेगी। सब शासन-व्यवस्थाओं की नींव भूमि-व्यवस्था पर ही निर्भर होती है। किसानों की ओर से सरकार पर आते संकट को टालने का फिलहाल यही उपाय हो सकता है कि वे अपनी समस्या साम्प्रदायिक झगड़ों में भूले रहें। यदि लीग और कांग्रेस आपस में नहीं लड़ेंगे तो अब सरकार के लिए इनमें से किसी एक को भी दबाना सम्भव नहीं है। जेंकिन्स (पंजाब का अंग्रेज गवर्नर) तो कैबिनेट–मिशन को यह दिखा देना चाहता है कि हिन्दुस्तानियों को शासन का अधिकार सौंपना व्यावहारिक नहीं है।·····ब्रिटेन में बैठे अंग्रेज तो अपनी स्थिति के कारण अपने आप को भारत का बोझ उठा सकने में असमर्थ समझने लगे हैं, परन्तु हिन्दुस्तान में मौजूद अंग्रेज-

ब्यूरोक्रेसी अन्तरराष्ट्रीय स्थिति और ब्रिटेन की वर्तमान आर्थिक स्थिति जानती नहीं । वे हिन्दुस्तान के शासस का मोह नहीं छोड़ना चाहते ।"

डाक्टर प्राणनाथ द्वारा तत्कालीन यथार्थ स्थिति का उपर्युक्त विश्लेषण यह सिद्ध कर देता है कि वह जनता के असन्तोष के मूल में आर्थिक कारणों को ही प्रधान मानते हैं । साथ ही अंग्रेज-नौकरशाही की प्रकृति की भी उन्हें गहरी पहचान है ।

आगे चलकर डाक्टर अँग्रेज-नौकरशाही के प्रतिक्रियावादी रूप को उघाड़ते हुए कालीचरन से कहते हैं—"ब्रिटिश ब्यूरोक्रेट, एटली और माउन्टबेटन की स्कीम से खुश नहीं हैं । वे दिखा रहे हैं कि हिन्दुस्तान को सेल्फ गवर्नमेन्ट देना मूर्खता है । अंग्रेज खूब जानते हैं, पार्टीशन से दोनों भाग लँगड़े हो जायेंगे । अब तक देश का विकास इकाई के तौर पर हुआ है । अब पाकिस्तान इन्डस्ट्रियल गुड्स (औद्योगिक सामान) के लिए तरसेगा, शेष भाग कच्चे माल के लिए । बड़ा क्लेवर मूव (गहरी चाल) है । पश्चिम पंजाब की रुई, दूसरी पैदावार और पूर्वी बंगाल का जूट कहाँ जायेंगे, ब्रिटेन में न ? इससे उनके मरते उद्योग जरा जिन्दा हो सकेंगे ।" यहाँ पर द्रष्टव्य है कि डाक्टर की गहरी अन्तर्दृष्टि राजनीतिक दाँव-पेचों के पीछे छिपी व्यापारिक कूटनीति को पकड़ लेती है और उसी के आधार पर परिस्थितियों का सही विश्लेषण प्रस्तुत कर देती है । वह विचारों से मार्क्सवादी हैं, इसलिए अर्थ-व्यवस्था को ही सारी राजनीतिक गतिविधि के मूल में मानते हैं ।

समाजवादी अर्थ-व्यवस्था के समर्थक

डाक्टर समाजवादी अर्थ-व्यवस्था के समर्थक और पोषक हैं । इसी कारण लाहौर और दिल्ली दोनों जगह उनके यहाँ कम्युनिस्टों तथा समाजवादी विचारधारा के युवकों का जमघट लगा रहता है । विभाजन के उपरान्त डाक्टर दिल्ली आ जाते हैं और उन्हें योजना-आयोग में आर्थिक परामर्शदाता का पद मिल जाता है । वह डाक्टर सालिस के साथ द्वितीय पंचवर्षीय योजना की रूपरेखा बनाने में जुटे हुए थे । प्रधानमन्त्री के आदेशानुसार वह राष्ट्रीय नियन्त्रण में उत्पादन की योजना बना रहे थे । सूद जी इस योजना के विरोधी थे । उन्हें समझाते हुए डाक्टर उनसे एक अत्यन्त महत्व-पूर्ण वाक्य कहते हैं—"हमारी अविकसित परिस्थितियों में, जिस बोझ को

स्वतन्त्र-निजी-व्यवसाय की व्यवस्था नहीं उठा सकती, उसे राष्ट्रीय साधनों और राष्ट्रीय उत्तरदायित्व से पूरा करने का प्रयत्न है।" डाक्टर अपने समाजवादी विचारों के प्रति इतने निष्ठावान हैं कि सूद जी द्वारा उन्हें किसी यूनिवर्सिटी का वाइस चान्सलर बना दिए जाने का आश्वासन भी अपने निश्चय से डिगा नहीं पाता और उसी के कारण उन्हें आगे चलकर सूद जी के भयंकर षड्यन्त्र का शिकार बनना पड़ता है।

हिन्दू-मुस्लिम वैमनस्य के मूल कारण के ज्ञाता

राजनीतिक और आर्थिक अन्तर्दृष्टि के साथ ही डाक्टर की सामाजिक समस्याओं की खोज-बीन करने वाली अन्तर्दृष्टि भी बड़ी गहरी और स्पष्ट है। भारत हिन्दू-मुस्लिम वैमनस्य की समस्या से आजादी से पूर्व भी पीड़ित था और आज भी लगभग वैसी ही स्थिति है। देश में आये दिन हिन्दू-मुस्लिम दंगे होते रहते हैं। स्वतन्त्र और धर्म-निरपेक्ष भारत में रहने वाले मुसलमान आज भी अपने को उपेक्षित समझते हैं। डाक्टर ने हिन्दू-मुस्लिम वैमनस्य की इस समस्या पर गहरा विचार किया है। वह इसी समस्या का विश्लेषण करते हुए तारा से कहते हैं—

"बैठे-बैठे ख्याल आता था, हम तो हिन्दू-मुसलमानों की दो कौमें होने की बात पर विश्वास ही नहीं कर सकते थे, लेकिन सामने प्रत्यक्ष क्या है? सब कुछ हमारे विश्वास पर ही निर्भर नहीं कर सकता। यदि पाकिस्तान के बनाने वाले हमें शत्रु समझते हैं तो हम इन्हें जबरदस्ती अपने साथ बाँध कर नहीं रख सकते। हम, मेरा अभिप्राय है सामूहिक-सामाजिक रूप से जिनसे छू जाना असह्य समझते रहे हों, आज उन्हें अपना अंग बता कर बहलाने का यत्न करना धोखा नहीं है। हमने चाहे जिस कारण ऐसा व्यवहार किया हो, उसकी कीमत देनी होगी। हिन्दू-मुसलमान के हिन्दुस्तान-पाकिस्तान के बँटवारे का बीज, सरकारी नौकरियों को हिन्दू मुसलमानों में साम्प्रदायिक अनुपात से बाँटने के दिन या उनके चुनाव-क्षेत्र अलग-अलग बना देने से नहीं बोया गया था। बल्कि मुसलमानों को म्लेच्छ और अछूत समझने के दिन से ही बो दिया गया था। हिन्दू को आप अछूत बनाकर भी दबा सकते हैं, क्योंकि वह आपके धर्म से बँधा है, मुसलमान तो उस धर्म से बँधा नहीं। वह अछूत समझे जाने का अपमान क्यों बर्दास्त करे? जिस नियम को हमने अपनी

सत्ता की रक्षा के लिए अपनाया था, उसी नियम ने हमें खा लिया। कैसा द्वन्द्व है ?"

यह डाक्टर का एक प्रबुद्ध सामाजिक विचारक का रूप है। अपने ऐसी ही विचारों के कारण वे प्रगतिशील समाज में पर्याप्त लोकप्रिय हैं।

व्यक्तिगत उदार चरित्र

डाक्टर के सामाजिक रूप के ही समान उनका व्यक्तिगत रूप और चरित्र भी उदार और व्यापक है। वह युवक-युवतियों को स्वावलम्बी बनाना और देखना चाहते हैं। जब जयदेव उनके पास तारा के दाखिले के लिए रुपये माँगने जाता है तो वह उसके सामने यह सुझाव रखते हैं कि तारा गर्मियों की छुट्टियों के तीन महीने उनके भतीजे-भतीजियों को पढ़ा दे और इस प्रकार अपनी पढ़ाई के खर्च को खुद कमा सके। डाक्टर विचारों से कम्युनिस्ट हैं इसलिए दान देना या लेना इन्सान के स्वाभिमान के प्रतिकूल मानते हैं। यह उनके चरित्र का एक रूप है जिसमें उदारता और दृढ़ता दोनों का ही सन्तुलित समावेश है। अपने से छोटों के प्रति उनके व्यवहार में एक आत्मीयता पूर्ण बड़प्पन का सा रूप भरा रहता है। तारा उनके यहाँ पढ़ाने आती है तो वे उसे कभी-कभी अपने कमरे में बुला कर उससे बातें कर लेते हैं। जब वह यह देखते हैं कि यह बात उनके घर की स्त्रियों को खटकती है और इसी के कारण एक दिन तारा से यह कहलवा दिया जाता है कि वह अब बच्चों को पढ़ाने न आया करे, तो डाक्टर बड़े शालीन और शान्त ढंग से तारा को समझाते हैं कि—"इस घर का वातावरण तुम्हारे लायक है भी नहीं। जानती हो, तुम्हें चेतू से यह सन्देश क्यों दिलाया गया है ? तुम स्वयं भाँप गई होगी। मैंने भूल से इन लोगों के सामने तुम्हारी प्रशंसा कर दी थी। इन लोगों का ख्याल है कि मैं तुम्हारे प्रति आकर्षित हूँ। शायद तुमसे विवाह कर लूँगा।....मुझे गलत न समझना।....आशा है फिर भी मुलाकात होगी।" इसी दौरान डाक्टर उससे यह भी कह जाते हैं कि—"आई लाइक यू !" यहाँ डाक्टर का तारा के प्रति छिपा हुआ आकर्षण अपनी हल्की-सी झलक दे रहा है परन्तु डाक्टर अपने गाम्भीर्य और बड़प्पन का आवरण डाल उसे प्रकट नहीं होने देते।

इससे पूर्व डाक्टर तारा और असद के पारस्परिक आकर्षण को भाँप कर

तारा से अँग्रेजी में कहते हैं—"टु वी इन लव इज ए प्लेजेंट फीलिंग (प्रेम में होने की अनुभूति आनन्द दायक होती है।) यू फील एलाइव (उससे उमंग अनुभव होती है।) इसके उपरान्त तारा को यह सलाह देते हैं कि—"प्रेम वेशक करो, परन्तु विवाह शिक्षा समाप्त करके ही करना।"

तारा ने सोमराज के घर पर मुसलमानों के आक्रमण होने पर अपने वहाँ से भागने की असली कहानी किसी को भी नहीं बताई थी, परन्तु डाक्टर की आत्मीयता और सहानुभूतिपुर्ण व्यवहार से प्रभावित हो तारा उनके सामने भूठ नहीं बोल पाती और उन्हें पूरी सच्ची कहानी सुना देती है। वह इस बात की चिन्ता नहीं करती कि डाक्टर उसके बारे में क्या सोचेंगे। सुन कर डाक्टर केवल एक ही वाक्य कहते हैं—"तारा, तुम बहुत बहादुर हो, बहुत साहसी हो।" और वह यह वाक्य आदर और स्नेह से छलकते स्वर में कहते हैं। आगे चल कर जव डाक्टर तारा के सामने विवाह का प्रस्ताव रखते हैं और जव तारा उन्हें यह बताती है कि वह इसलिए विवाह नहीं कर सकती क्योंकि उसे एक भयंकर गुप्त बीमारी है, और वह अपना इलाज नहीं करवा पाई है, तो डाक्टर उससे कहते हैं—"ठीक है, तुम खुद रोग का इलाज नहीं करा सकीं। लेकिन मेरा अधिकार और कर्त्तव्य है कि अपनी पत्नी का इलाज करवाऊँ। मिसेज नाथ को इलाज कराना पड़ेगा।" इसके बाद डाक्टर उसके साथ विवाह कर उसे इलाज के लिए युरोप ले जाते हैं और ठीक कराकर भारत लौट आते हैं।

गम्भीर स्वभाव

डाक्टर स्वभाव से गम्भीर हैं। वह विद्वान और अनुभवी हैं। एक धनी परिवार के पुत्र होते हुए भी उन्हें धन और सम्पति का कोई मोह नहीं है। एक बार जब उनकी शादी की बात चली थी तो उनकी होने वाली पत्नी ने उनसे यह कहा था कि वह परिवार की सम्पत्ति में से अपना हिस्सा अलग करवा लें। इसी बात पर उन्होंने शादी करने से इन्कार कर दिया था और अब भी इसी भय के कारण शादी नहीं करते थे कि पत्नी आकर कहीं वैसी ही शर्त न रख दे। वह यह बात तारा को स्पष्ट बता देते हैं। तारा के प्रति उनके मन में आकर्षण है, परन्तु वह इसे तारा पर खुलकर प्रकट नहीं होने देते। दिल्ली में लोग उन्हें तारा का अभिभावक समझते हैं और वह तारा को यह सलाह देते रहते हैं कि उसे अपने पिछले जीवन को भुला कर विवाह कर

लेना चाहिए। तारा के प्रति उनके मन में स्नेह, सम्मान और गहरी सहानुभूति है। वह अपने प्रति तारा के झुकाव को भी देखते रहते हैं। जब तारा के व्यवहार से उन्हें यह पूरा विश्वास हो जाता है कि वह उन्हें हृदय से चाहती है, वह तभी बड़े संकोच के साथ उसके सामने विवाह का प्रस्ताव रखते हैं। यह उनके गम्भीर और सहानुभूति शील स्वभाव का ही परिचायक है।

निष्कर्ष

डाक्टर प्राणनाथ इस उपन्यास के एक ऐसे पात्र हैं जो पात्रों की उस भीड़-भाड़ भरी दुनियाँ में सबसे निराले और विशिष्ट प्रतीत होते हैं। वह विद्वान, सम्पन्न और सम्भ्रान्त हैं। सरकार और जनता—दोनों उनका सम्मान करते हैं। धनी होते हुए भी विचारों और व्यवहार में मार्क्सवादी हैं। स्वावलम्बन के प्रचारक और समर्थक हैं। लालच उन्हें अपने विचारों और कर्त्तव्य से डिगा नहीं पाता। वह किसी की धौंस भी सहन नहीं करते। शान्त, सुस्थिर मन और बुद्धि से संकटों और समस्याओं का सामना करते हैं। तारा के प्रति आकर्षण रखते हुए भी बहुत समय तक उस पर प्रकट नहीं होने देते। उनके व्यवहार में एक आत्मीयतापूर्ण बड़प्पन और शालीनता रहती है। वस्तुत: डाक्टर प्राणनाथ को उस बुद्धिजीवी-वर्ग का प्रतीक माना जा सकता है जिसकी समस्याओं को परखने और समझने की दृष्टि बड़ी गहरी और उदार होती है। उनके चिन्तन में पूर्वाग्रहों का कोई मोह या बन्धन नहीं रहता। वह जन कल्याण के आकांक्षी और समर्थक होते हैं। डाक्टर कम्युनिज्म के दुराग्रहों और रूढ़ियों से सर्वथा मुक्त एक उदार प्रगतिशील विचारक हैं।

प्रश्न २७—"पंडित गिरधारी लाल इस उपन्यास के एक ऐसे पात्र हैं जो प्रकृति से देशभक्त, उदार, मर्यादावादी हैं परन्तु परिस्थितियों के सम्मुख झुक उनसे समझौता कर लेते हैं।"—उनके चरित्र का विश्लेषण करते हुए उपर्युक्त कथन के सम्बन्ध में अपने विचार प्रकट कीजिए।

उत्तर :

पुराने देशभक्त

पंडित गिरधारी लाल इस उपन्यास की नायिका कनक के पिता हैं। विचारों से देशभक्त हैं। बड़े-बड़े कांग्रेसी नेताओं से उनका परिचय है। खद्दर पहनते हैं, परन्तु कांग्रेस की राजनीति में सक्रिय भाग नहीं लेते।

उनके तीन लड़कियाँ हैं—कान्ता, कनक और कंचन। लड़का एक भी नहीं है। पंडित जी साहित्यिक रुचि के आदमी हैं, इसलिए स्वभाव से भले और उदार हैं। वह उर्दू और अंग्रेजी जानते हैं, हिन्दी नहीं आती। आरम्भ से ही साहित्य में रुचि होने के कारण लेखक बनना चाहते थे, परन्तु लेखक तो नहीं बन सके, प्रकाशक बन गए। उनकी अपनी प्रकाशन संस्था है—'नया हिन्द पब्लिकेशन।' सम्पन्न हैं। अच्छी तरह से रहते हैं। अपनी बच्चियों पर उनके विचारों और स्वभाव का गहरा प्रभाव है। स्वयं हिन्दी नहीं जानते परन्तु जब कनक हिन्दी पढ़ना चाहती है तो उसे प्रोत्साहित करते हैं। जयदेव का परिचय पाकर उससे कनक को पढ़ा देने का आग्रह करते हैं। साहित्य प्रेमी हैं, अतः साहित्यकारों का सम्मान करते हैं। जयदेव के समय की कीमत को समझते हुए इसी कारण वह बड़े संकोच के साथ घुमा-फिरा कर उससे पारिश्रमिक के सम्बन्ध में पूछते हैं।

उदार और रूढ़ि मुक्त

पंडित जी विचारों से उदार और रूढ़िमुक्त हैं। जब उनकी बड़ी लड़की कान्ता एडवोकेट महेन्द्र नैयर के साथ अन्तरजातीय विवाह करना चाहती है तो वह सहर्ष नैयर के साथ उसका विवाह कर देते हैं। नैयर सम्पन्न सामाजिक स्थिति का व्यक्ति है, इसलिए पंडित जी इस विवाह का विरोध नहीं करते। परन्तु आगे चलकर जब हम उन्हें कनक और जयदेव के विवाह का विरोध करते देखते हैं तो बड़ा आश्चर्य होता है। पंडित जी उदार और रूढ़िमुक्त होते हुए भी व्यवहारवादी हैं। वह कनक और जयदेव के सम्बन्ध का इसलिए विरोध नहीं करते कि दोनों दो भिन्न जातियों के हैं। उनके विरोध का कारण अपनी बच्ची के भविष्य की सुरक्षा और जीवन की सुख-सुविधाओं को लेकर ही है। वह जानते हैं कि उनकी बच्ची कनक सुख-सुविधाओं के बीच पली है, और उनकी अभ्यस्त बन गई है। जयदेव की आर्थिक दशा खराब है। अभी वह छोटे-मोटे काम करके ही अपना गुजारा चला रहा है। इसलिए ऐसी स्थिति में कनक को उसके साथ रहने में दुखों और असुविधाओं का सामना करना पड़ेगा। उनका दामाद नैयर जयदेव को हीन-भावना से ग्रसित एक तुच्छ व्यक्ति मानता है। जयदेव के व्यवहार में यह हीन-भावना झलकती रहती है। ऐसे व्यक्ति चरित्र और स्वभाव के दृढ़ नहीं होते। इन्हीं सारी बातों को सोच कर पंडित जी इस सम्बन्ध का अप्रत्यक्ष विरोध करते हैं।

व्यावहारिक बुद्धि

पंडित जी द्वारा इस सम्बन्ध का विरोध किए जाने का तरीका उग्र या कठोर न होकर व्यावहारिक और शालीन ढंग का है। वह कनक को समझाते हुए उससे कहते हैं कि वह कुछ दिन के लिए जयदेव से मिलना-जुलना बन्द करदे। इसीलिए वह उसे अपने यहाँ से हटा कर उसकी बड़ी बहन कान्ता के घर भेज देते हैं। कनक द्वारा भेजे गए पत्रों को चुपचाप रोक लेते हैं। उनका ख्याल है कि शायद उन दोनों का परस्पर मिलना-जुलना बन्द हो जाने पर प्रेम का यह उफान ठंडा पड़ जायेगा। जब कनक पंडित जी के समझाने पर भी चुपचाप जयदेव को पत्र डालती है, उससे मिलती है, तो वह मन में बहुत दुखी होते हैं परन्तु उससे कहते कुछ भी नहीं। केवल अपनी छोटी बेटी कंचन द्वारा कनक तक अपने दुख की बात अवश्य पहुँचवा देते हैं। जब कनक जुबेदा का नाम लेकर पिता से जयदेव को देने के लिए सत्तर रुपए लेती है तो बात खुल जाने पर भी वह कनक से कुछ भी नहीं कहते। हम उन्हें आरम्भ से अन्त तक बराबर शान्त, गम्भीर और शालीन बना हुआ ही पाते हैं। कनक को जयदेव से दूर हटाने के लिए वह उसे नैयर के परिवार के साथ नैनीताल भेज देते हैं। और वहाँ से जब कनक नैयर द्वारा जयदेव के साथ अपने विवाह की बात पिता को लिखवाती है तो वह उत्तर देते हैं कि अभी वह जल्दी न करे, वह शीघ्र ही नैनीताल आकर इस सम्बन्ध में बातें कर अपनी राय देंगे।

पंडित जी की व्यवहारिक बुद्धि का दूसरा रूप उस समय दिखाई देता है जब वह विभाजन से पूर्व के तनावपूर्ण वातावरण को देख, अपनी सम्पत्ति और अपने कारबार को लाहौर से हटा लखनऊ, दिल्ली या इलाहाबाद में जमाने की सोचते हैं। आसन्न संकट को देख वह अपना बैंक का सारा हिसाब दिल्ली ट्रान्सफर करवा देते हैं। और जब विभाजन के समय उन्हें लाहौर छोड़ना ही पड़ता है तो वह दिल्ली पहुँच, वहाँ एक मुसलमान से अपने लाहौर वाले मकान के बदले में उसका मकान खरीद वहीं जम जाते हैं। वहीं वह पुनः अपना छोटा-सा प्रकाशन भी खोल लेते हैं। दिल्ली में ही तारा के माध्यम से नरोत्तम और कंचन का परिचय और प्रेम-सम्बन्ध होता है। पंडित जी उन दोनों का खुशी के साथ विवाह कर देते हैं। इससे पूर्व, परिस्थितियाँ उन्हें कनक और जयदेव का विवाह भी कर देने के लिए बाध्य कर देती हैं।

एक स्नेही चिन्तित पिता

पंडित जी हमारे सामने आरम्भ से ही एक ऐसे पिता के रूप में आते हैं जो अपनी सन्तान की मंगल-कामना, सुचारु पालन-पोषण, और उनके सुरक्षित भविष्य की चिन्ता और प्रयत्न में डूबे रहते हैं। वह अपनी सन्तान को बलात् कभी नहीं दबाते। उनकी इच्छा-पूर्ति में केवल वहीं बाधा डालते हैं जब यह देखते हैं कि उनकी सन्तान का भविष्य निश्चित और सुरक्षित नहीं है। उनके कोई पुत्र नहीं है, इसलिए अपनी लड़कियों पर ही उनका सारा स्नेह और ममता केन्द्रित है। नैयर को वह सुलझा हुआ और समझदार व्यक्ति मानते हैं, इसलिए अधिकांश मामलों में उसकी बराबर सलाह लेते रहते हैं। अपनी सन्तान को सुखी और प्रसन्न देखना ही इस स्नेहशील पिता का एक मात्र लक्ष्य प्रतीत होता है। इसलिए जब कनक जयदेव से सम्बन्ध तोड़ उनके पास दिल्ली चली आती है तो वह उसके लिए बुरी तरह से व्यग्र और चिन्तित हो उठते हैं। वह कनक से स्वयं कुछ भी नहीं कहते परन्तु जयदेव को बड़ा स्नेहभरा पत्र लिख कर आग्रह करते हैं कि वह आकर कनक को लिवा ले जाय। मगर जयदेव के आने पर भी जब कनक उसके साथ जाने से इन्कार कर देती हैं तो पंडित जी और अधिक चिन्तित हो उठते हैं। कान्ता द्वारा जब उन्हें उर्मिला और जयदेव के सम्बन्धों का पता चलता है तो अपनी लाडली बेटी के स्वभाव और चरित्र को खूब अच्छी तरह से जानने और समझने वाला यह पिता यह समझ लेता है कि अब कनक और जयदेव में समझौता होना असम्भव है। इसीलिए वह कनक की बात का समर्थन करते हुए नैयर को लिख देते हैं कि वह जयदेव को समझा-बुझा कर कनक को तलाक दिलवा दे।

पंडित जी की तीनों लड़कियाँ उनसे बहुत स्नेह करती हैं। वह भरसक पिता के मन को दुखाना नहीं चाहती। वह जानती हैं कि उनके पिता सदैव उनकी सुख-सुविधा और सुरक्षित भविष्य की कामना में डूबे रहते हैं। ऐसे स्नेही उदार पिता कम ही लड़कियों के होते हैं। जब तारा और डाक्टर प्राणनाथ के विवाह की समस्या उठती है तो पंडित जी उसमें अपना पूरा सहयोग देते हैं। वह विवाह उनके घर में ही सम्पन्न होता है।

संक्षेप में, पंडित गिरधारी लाल पुरानी पीढ़ी के होते हुए भी उदार और प्रगतिशील विचारों वाले हैं। वह ब्राह्मण होते हुए भी अपनी तीनों

लड़कियों का अन्तरजातीय विवाह कर देते हैं। वह स्वभाव के सौम्य, गम्भीर और व्यवहार कुशल व्यक्ति हैं। उनके सम्पर्क में आने वाला कोई भी व्यक्ति उनसे नाराज नहीं होता। वह कभी किसी पर नाराज नहीं होते परन्तु अनुचित बात या घटना होते देख दुखी अवश्य हो उठते हैं। वस्तुतः वह उस पुरानी पीढ़ी के हैं जो स्वभाव से उदार, व्यवहार से शालीन और समय की गति को देख उसके साथ चलने का प्रयत्न करती थी। इसलिए उन्हें पुरानी पीढ़ी का प्रगतिशील अंग माना जा सकता है। यद्यपि उपन्यास की कथा में पंडित जी का कोई विशेष महत्व नहीं दिखाई पड़ता परन्तु उपन्यासकार ने मानवता की जिन शुभ्र और सूक्ष्म रेखाओं द्वारा उनके व्यक्तित्व का निर्माण किया है, उनका वह व्यक्तित्व पाठक को अनायास उनके प्रति आकर्षित कर सम्वेदन-शील बना देता है।

उपन्यास के अन्य सामान्य पात्र

इस उपन्यास के उपर्युक्त प्रधान पात्रों के अतिरिक्त अन्य अनेक सामान्य पात्र हैं, जिनका कथा-विकास और चरित्रांकन में सीमित स्थान और महत्व रहा है। इनमें से अनेक पात्र कथा-प्रवाह के बीच में उदय होते हैं और अपना निश्चित भाग अदा कर गायब हो जाते हैं। असद, रतन, शीलो, पूरणदेई, उसकी लड़की सीता, चड्ढा, मर्सी, माथुर, मिस्टर और मिसेज अगरवाला, रावत, नरोत्तम, डाक्टर श्यामा, प्रसाद अवस्थी, आदि ऐसे ही पात्र हैं। अन्त में केवल प्रीतमसिंह गिल कनक के सम्पर्क के कारण महत्त्व प्राप्त कर लेता है। ऐसा लगता है कि उपन्यासकार ने गिल को अधिक महत्त्व देने का प्रयत्न किया है, परन्तु उन्हें अपने इस प्रयत्न में अधिक सफलता नहीं मिल पाई है। गिल एक साधारण निर्जीव सा पात्र बन कर ही रह जाता है। शेष अन्य पात्रों का कथा-विकास के सम्बन्ध में क्षणिक और स्थानीय महत्त्व बन कर ही रह जाता है। वह कथा की मूल सम्वेदना को उकसा कर रंगमंच से गायब हो जाते हैं, इसलिए उनका विस्तृत विवेचन अपेक्षित नहीं है।



व्याख्या-भाग

पृष्ठ ११—'नाऊन वेदना................दे सकती है।'

उपन्यासकार पंजाबियों में किसी की मृत्यु के अवसर पर मनाए जाने वाले शोक का वर्णन कर रहा है। पंजाब में शोक मनाने की इस प्रक्रिया को 'स्यापा' कहा जाता है। कुछ स्त्रियाँ शोक मनाने की इस क्रिया में बड़ी कुशल होती हैं; अतः ऐसे अवसरों पर उन्हीं को बुला कर, उनके नेतृत्व में यह क्रिया पूरी कराई जाती है। जयदेव की दादी की मृत्यु पर कौला नाऊन के नेतृत्व में यह क्रिया मनाई जा रही है। लेखक उसी का वर्णन करता हुआ कह रहा है—

कौला नाऊन दुख से काँपते स्वरों में विलाप के गीत के बोल कहती थी और वहाँ उपस्थित अन्य सारी स्त्रियाँ एक स्वर में 'हाया-हाया' पुकारती दोनों हाथों से अपनी छातियाँ पीटती जाती थी। मृत्यु-शोक मनाने की इस रीति (क्रिया) में गाना और छातियाँ पीटना, दोनों एक निश्चित क्रम अर्थात नियम के अनुसार हो रहा था। गाने के साथ स्त्रियों के हाथ एक निश्चित क्रम के अनुसार छातियों और जाँघों, और गालों पर पड़ रहे थे। कौला नाऊन के इशारों के अनुसार ही हाथों द्वारा शरीर के विभिन्न अंगों के पीटे जाने की गति कभी मन्द, कभी तेज और फिर अत्यन्त तेज गति के साथ चलने लगती थी। उसी प्रकार जैसे लय के साथ संगीत के स्वर उतरते-चढ़ते, मन्द और तीव्र होते रहते हैं। स्त्रियाँ अंगों को पीटने की यह क्रिया कभी खड़ी होकर करने लगती थीं, कभी बैठ कर। कौला नाऊन इस मृत्यु-शोक मनाने की क्रिया का संचालन बड़ी सतर्कता और अनुशासन के साथ करा रही थी। आँख बन्द कर या किसी दीवाल के पीछे से सुनने स्त्रियों के छाती पीटने का वह स्वर ऐसा मालूम पड़ता था मानो किसी बड़े परेड के मैदान में कवायद करने में कुशल फौजी सिपाही धीमे आगे चलने, एक ही स्थान पर खड़े रह वहीं पैर चलाने और तेजी से आगे

बढ़ने का अभ्यास कर रहे हों। यदि कोई स्त्री इस नियमित लय और क्रम के विरुद्ध छाती पीटने लगती थी तो नाऊन उसे वहाँ से हटा सकती थी।

विशेष—इस गद्य-खंड में मृत्यु-शोक मनाते समय उपस्थित स्त्रियों द्वारा एक ताल और स्वर के साथ हाथों द्वारा शरीर के विभिन्न अंगों के पीटे जाने का वर्णन किया गया है। और इस पीटने की क्रिया की उपमा संगीत तथा फौजी कवायद की विभिन्न गतियों के साथ दी गई है। जिस प्रकार संगीत में स्वर और फौजी कवायद में कवायद करने वाले सिपाहियों के पैर एक निश्चित और नियमित गति के साथ कभी धीमे और कभी तेजी के साथ उठते गिरते रहते हैं, उसी प्रकार नाऊन के संकेतों के अनुसार स्त्रियाँ अपने अंगों के पीटने की गति को चढ़ा-उतार रही थीं।

संगीत में 'विलम्बित' धीमे स्वर को, 'द्रुत' तेज स्वर को और 'अति द्रुत' अत्यन्त तेज स्वर को कहते हैं। वहाँ इन शब्दों से स्वरों की गति से अभिप्राय होता है। इसी प्रकार फौजी कवायद में 'मार्च' धीमी स्वाभाविक चाल से आगे बढ़ना, 'मार्क टाइम' एक ही स्थान पर खड़े रह पैरों को चलने की मुद्रा में ऊपर उठाना और गिराना, तथा 'क्विक मार्च' तेजी से आगे बढ़ने के लिए प्रयुक्त किए जाते हैं।

पृष्ठ १८—'तारा को पिता……………करने लगी।'

तारा के पिता मास्टर रामलुभाया आर्यसमाजी थे, इसलिए अपने बच्चों से आर्यसमाजी नियमों और रहन-सहन का पालन करवाया करते थे। परन्तु तारा को पिता के आदेश और नियम अच्छे नहीं लगते थे। इन नियमों और आदेशों के प्रति अपनी अरुचि को देख कर वह सोचा करती थी कि कहीं उसका मन पाप की ओर तो नहीं जा रहा है क्योंकि वह सोचती थी कि पिता जो कहते हैं वह धर्म है और उसके विपरीत सोचना या करना पाप है। यह सोच-सोच कर तारा को अपने मन में यह ग्लानि होती थी कि वह पिता के आदेशों और नियमों की अवहेलना कर पाप कर रही है। परन्तु अपने सहपाठियों और विद्यार्थी-फेडरेशन (संघ) के साथियों के साथ रहते-रहते उसे यह महसूस होने लगा था कि उसकी रुचि और स्वभाव पापी नहीं था। अर्थात् उसके

मन में पाप के प्रति कोई आकर्षण नहीं था। यह महसूस कर वह आत्म सम्मान का अनुभव करने लगी। अर्थात् सोचने लगी कि वह बुरी लड़की न होकर अच्छी लड़की है।

पृष्ठ २०-२१—**'जयदेव ने बचपन...............असह्य लगा।'**

जयदेव के पिता एक मामूली स्कूल मास्टर थे। वेतन कम मिलता था और परिवार बड़ा था, इसलिए गरीबी के साथ गुजारा करना पड़ता था। जयदेव ने बचपन से ही इस गरीबी को देखा और भोगा था। परन्तु जब वह सन् १९४२ की राज्य क्रान्ति में भाग लेने के कारण जेल गया और वहाँ पौने दो वर्ष तक रहा तो सोचा करता था कि उसने अपने व्यक्तिगत स्वार्थ की चिन्ता न कर देश के लिए त्याग और बलिदान किया है। वह त्यागी वीर है। वह यह भी सोचा करता था कि जेल से छूटने के बाद वह अपनी योग्यता के बल पर सफल जीवन व्यतीत करेगा। खूब कमायेगा और साहित्य तथा जनता की सेवा करते हुए अच्छी तरह से रहेगा, खूब उन्नति करेगा। परन्तु जब वह जेल से छूट कर आया तो अपने घर की भयंकर गरीबी को देख विचलित हो उठा। उसने सोचा कि उसे सबसे पहले इस गरीबी को दूर करना है, धन कमाना है।

विशेष—यहाँ जयदेव के माध्यम से उपन्यासकार यह बताना चाह रहा है कि गरीबी मनुष्य की सारी ऊँची और श्रेष्ठ आशाओं और भावनाओं की पूर्ति और विकास में भंयकर रोढ़े अटका देती है। मनुष्य गरीबी से छुटकारा पाने में ही अपनी सारी शक्ति लगा देने को मजबूर हो जाता है।

पृष्ठ २५—आकर्षक, चपल...............का भी ध्यान था।

वधावामल नारंग की अठारह वर्षीया लड़की उर्मिला आकर्षक, चंचल और नवयुवती थी। जयदेव उसे पढ़ाता था। परन्तु उर्मिला पढ़ाई में मन न लगा जयदेव के साथ हँसी-मजाक और खेल किया करती थी। यदि एक सुन्दर आकर्षक नवयुवती किसी युवक के साथ ऐसी हरकतें करे तो उस युवक का विचलित हो जाना स्वाभाविक है। जयदेव भी उर्मिला की ऐसी हरकतों के कारण विचलित हो उठा करता था और ऐसे अवसरों पर वह बड़ी मुश्किल से अपने को काबू में रख पाता था। उसे आतम-दमन इसलिए और भी अधिक

करना पड़ता था क्योंकि उसे अपने पिता की इज्जत और उर्मिला के माता-पिता द्वारा अपने प्रति आदर और विश्वास की भावना का अधिक ख्याल था। वह सोचता था कि उसके फिसल जाने से, उर्मिला के साथ कोई हरकत कर बैठने से वह इनमें से किसी को भी मुँह दिखाने लायक नहीं रह जायगा।

पृष्ठ २५—'उर्मिला के स्वभाव..................कर बोलना।'

उर्मिला स्वभाव से पानी की लहर की तरह चंचल थी। नारी की चंचलता उसके आकर्षण को बढ़ा देती है। उर्मिला चंचल होने के साथ-साथ सुन्दर भी थी। इस चंचलता और सौन्दर्य ने मिल कर उसके आकर्षण को और भी अधिक बढ़ा दिया था। शरीर की गठन की दृष्टि से उर्मिला को सुन्दर नहीं माना जा सकता था। उसके सभी अंग सुडौल नहीं थे। उसका चेहरा गोल, गर्दन कुछ छोटी, नाक भी मामूली, परन्तु रंग चमकीला, सुनहरा और गोरा, हवा में लहराते कोमल, भूरे, सुनहरे बाल और बड़ी-बड़ी कौड़ियों जैसी बड़ी-बड़ी आँखें थी। एक बार उसकी ओर देख लेने पर उसकी तरफ से निगाहें हटा लेना सम्भव नहीं था। उसका यह रूप देखने वाले को अपनी ओर टकटकी बाँधे देखते रहने के लिए मजबूर कर देता था। उसका यह आकर्षण इतना प्रबल था कि उसमें बँध कर मनुष्य यह देखना भूल जाता था कि उर्मिला सुन्दर है अथवा कुरूप। अर्थात् उर्मिला में बड़ा प्रबल शारीरिक आकर्षण था। उस पर उर्मिला चुप न रह कर बराबर निस्संकोच बढ़-बढ़ कर बोला करती थी, बातें करती रहती थी। यह उसके आकर्षण को और भी अधिक बढ़ा देता था।

पृष्ठ २७—'पुरी जितना मौन..........................बच ही गया....।'

मरी में एक दिन उर्मिला की हरकतों को देख उसकी माँ ने उर्मिला की खूब पिटाई की। जयदेव इस घटना से क्षुब्ध और खिन्न हो, दूसरे ही दिन लाहौर लौट आया। लाहौर लौट कर वह मौन बना रहा। उसने अपने शीघ्र लौट आने के सम्बन्ध में किसी से भी कुछ न कहा। परन्तु वह मन-ही-मन बहुत क्षुब्ध हो रहा था। वह हर समय उर्मिला की याद में डूबा रहता और यह सोचा करता कि उर्मिला को इस तरह छोड़ कर चला आना क्या उसकी

कायरता नहीं थी ? वह कितनी सुन्दर है। क्या हमारा परस्पर विवाह नहीं हो सकता ? वे जी अर्थात् उर्मिला की माँ इस विवाह में कोई एतराज नहीं करेंगी। विवाह करने को तैयार हो जायेंगी। उर्मिला मुझे कितनी तन्मयता से प्रेम करती है। परन्तु मैं नौकर होकर उसके साथ कैसे प्रेम कर सकता था। मेरी दृष्टि में विवाह का मतलब यह नहीं है कि विवाह करके पत्नी से केवल शारीरिक सम्बन्ध ही स्थापित किया जाय। और उर्मिला प्रबल शारीरिक आकर्षण वाली ऐसी लड़की है जिससे केवल शारीरिक सम्बन्ध ही स्थापित किया जा सकता है, उससे प्रेम नहीं किया जा सकता। न मालूम यह लड़की मेरे गले कैसे पड़ गयी।—जयदेव यही बातें सोचता रहता था।

यह सोचते समय उसे यह भी याद आने लगता कि उसने अपनी जीवन-संगिनी—पत्नी के सम्बन्ध में कैसी-कैसी ऊँची कल्पनाएँ कर रखी थीं। उसने कल्पना की थी उसकी पत्नी ऐसी होगी जो उसके बौद्धिक कलात्मक जीवन के लिए सच्ची साथिन सिद्ध होगी। अर्थात् उसकी रुचि भी बौद्धिक और कलात्मक होगी। ऐसी पत्नी के साथ ही वह जीवन में सफलता प्राप्त कर सकेगा। परन्तु उर्मिला बौद्धिक और कलात्मक रुचि वाली लड़की नहीं थी। इसलिए जयदेव ने यह सोच कर मुक्ति और सन्तोष की साँस ली कि वह दलदल में फँसने से बच गया। अर्थात् यदि उर्मिला के चंगुल में फँस जाता तो उसका जीवन बर्बाद हो जाता।

विशेष—यह गद्य-खंड जयदेव पुरी के चरित्र पर सुन्दर प्रकाश डालता है। वह उज्ज्वल भविष्य का आकांक्षी है। सभी होते हैं। परन्तु उर्मिला के प्रति उसका प्रबल आकर्षण, उससे विवाह करने की कामना और फिर तुरन्त ही उसके प्रति विरक्ति और स्वयं के प्रति दलदल में फँसने से बच जाने की सन्तुष्टि, उसके अस्थिर स्वार्थी चरित्र के चिन्ह हैं। उसके आगामी जीवन में उसकी यही स्वार्थपरता और अधिक नंगे रूप में प्रकट होती है।

पृष्ठ ३०—'उर्मिला के व्यवहार..............लोप हो जाता है।'

जयदेव कनक को हिन्दी पढ़ाने लगता है। इससे पहले वह उर्मिला को भी पढ़ा चुका था। इन दोनों लड़कियों के सम्पर्क में आने पर उसे भिन्न-भिन्न प्रकार

की अनुभूतियाँ हुईं। उपन्यासकार यहाँ जयदेव की उन्हीं भिन्न अनुभूतियों का वर्णन कर रहा है कि—

उर्मिला के उच्छृंखल और चंचल व्यवहार के कारण जयदेव पुरी के मन में लड़कियों के प्रति एक विरक्ति की भावना उत्पन्न हो गई थी। परन्तु कनक प्रतिभाशाली लड़की थी। उसके व्यवहार में चंचलता न होकर संयम की गम्भीरता और सहजता थी। कनक के इस शालीन व्यवहार ने जयदेव के मन में भरी उस विरक्ति को इस प्रकार दूर कर दिया जैसे मई-जून की गर्मी में झुलसे हुए, उजाड़, धूल भरे मैदान की कुरूपता को सावन-भादों की वर्षा दूर कर उसे हरा-भरा और चैतन्य बना देती है। अर्थात् अब जयदेव ने नारी का एक दूसरा सौम्य और शालीन रूप देख उसके प्रति आकर्षण का अनुभव किया। जयदेव इससे पहले भी कई लड़कियों के रूप और सौन्दर्य के प्रति आकर्षित हो चुका था, परन्तु कनक के संसर्ग से, उसके साथ उठने-बैठने से, जयदेव की स्मृति से उन लड़कियों की याद, जो अच्छी नहीं थी, उसी प्रकार दूर हो गई जैसे सूर्य के उदय होने पर ऊषा का धुँधला प्रकाश नष्ट हो जाता है। अर्थात् कनक ने उसके मन में सूर्योदय का सा नवीन चेतना का उज्ज्वल प्रकाश भर दिया था। उसके मन की वासनाभरी सारी कलुषता नष्ट हो गई थी।

विशेष—यह गद्य-खंड गद्य-काव्य का एक सुन्दर रूप प्रस्तुत करता है। इसे ही गद्य में कविता करना कहा जाता है। इसमें मई-जून की गर्मी से तपते मैदान में सावन-भादों की वर्षा से तथा सूर्योदय होने पर ऊषा के धुँधलके के मिटने की उपमाएँ देकर जयदेव की बदलती हुई भावनाओं का अत्यन्त सुन्दर चित्रांकन किया गया है।

पृष्ठ ३१—'कुर्सी पर बैठाए..............बना दिया था।'

जयदेव, 'पैरोकार' नामक समाचार-पत्र में नौकरी करने गया था। उसके सम्पादक कशिश जी ने पहले उसके आने के असली मतलब को न जान एक साहित्यकार के रूप में उसका स्वागत-सम्मान किया था। और उसे आदर के साथ बैठने के लिए कुर्सी दी थी। परन्तु जब उन्हें यह ज्ञात हुआ कि जयदेव वहाँ नौकरी करने के लिए आया है तो उनका व्यवहार एकदम बदल

गया था। उपन्यासकार जयदेव की उस समय की मनःस्थिति का विश्लेषण करता हुआ कह रहा है कि—

जब कशिश जी ने जयदेव के आगमन पर, उसे एक सम्मानित कलाकार जान, बैठने के लिए आदर के साथ कुर्सी दी थी, तो वह उनकी नजर में एक सम्मानित कलाकार था। परन्तु जब कुछ देर बातें करने के बाद वह कुर्सी से उठने लगा तो कशिश जी की नजर में वह उनके नीचे काम करने वाला एक नौकर मात्र रह गया था। कशिश जी के व्यवहार में हुए इस परिवर्तन को देख जयदेव के मन में उनके प्रति एक कटुता की भावना उत्पन्न हो गई थी, उसने स्वयं को अपमानित अनुभव किया था। परन्तु वह इस अपमान को इसलिए सह गया क्योंकि अब जिन्दा रहने के लिए उसे एक सहारा मिल गया था, उसकी नौकरी लग गई थी। इसने उसे सन्तोष प्रदान किया था और इसी सन्तोष के सहारे वह अपमान के उस कड़वे घूँट को पी सकने में समर्थ हो सका था।

विशेष—समाज की नजर में कलाकार का, एक भूखे, नौकरी की खोज में भटकने वाले कलाकार का क्या स्थान होता है, यहाँ इसी को जयदेव के प्रति कशिश जी के बदले हुए व्यवहार द्वारा स्पष्ट किया गया है।

पृष्ठ ३८—'सब शासन व्यवस्थाओं की नींव सामयिक भूमि-व्यवस्था पर ही होती है।'

यहाँ उपन्यासकार अर्थ-शास्त्र और राजनीति की परस्पर निर्भरता के सिद्धान्त का उल्लेख कर रहा है। भूमि की व्यवस्था अर्थात् राज्य के निवासियों में भूमि का बँटवारा किस प्रकार और किस अनुपात में किया जाता है, शासन की स्थिरता और सफलता इसी बात पर निर्भर करती है। जहाँ जमीन पर बड़े-बड़े जमीदारों का अधिकार रहता है और खेत जोतने वाले किसानों को अपनी जमीन नहीं मिलती, वहाँ किसानों में, भूमिहीन किसानों में, शासन के विरुद्ध विद्रोह और असन्तोष की भावना पनपने लगती है। और ऐसी हालत में शासन का काम शान्ति के साथ नहीं चल पाता। शासकों को किसानों के असन्तोष और विद्रोह का सामना करना पड़ता है, जिससे राज्य की शान्ति

भंग हो जाती है देश-विभाजन से पहले पंजाब के भूमिहीन और कम भूमि वाले किसानों में यही असन्तोष और विद्रोह भड़क रहा था।

पृष्ठ ३८—'ब्रिटेन में बैठे..................छोड़ना नहीं चाहते।'

द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद ब्रिटेन की आर्थिक दशा बहुत खराब हो गयी थी। इसलिए ब्रिटेन में रहने वाले अंग्रेज यह समझने लगे थे कि अब ब्रिटेन भारत के शासन के खर्च का भार अपने ऊपर नहीं उठा सकता। इसलिए वह चाहते थे कि भारत को आजादी देकर इस जिम्मेदारी से मुक्त हो जाया जाय। परन्तु जो अंग्रेजी अफसर, अंग्रेज नौकरशाही के उच्च अधिकारी, भारत में शासन कर रहे थे, उन्हें वास्तविक अन्तरराष्ट्रीय स्थिति और ब्रिटेन की वर्तमान खराब आर्थिक दशा का असली ज्ञान नहीं था। इसलिए वह नहीं चाहते थे कि भारत को आजादी मिले और उनकी नौकरी खत्म हो जाय। वह भारत पर अपना शासन जमाए रखना चाहते थे।

पृष्ठ ५२—'सर खिजर ने..................रास्ता साफ।'

'सियासत' एक उर्दू का अखबार और विचारों से मुस्लिम-लीग का समर्थक था। पंजाब में युनियनिस्ट पार्टी का मंत्रिमंडल शासन कर रहा था। सर खिजर हयात खाँ मुख्य मंत्री थे। उनके मंत्रिमंडल द्वारा त्यागपत्र दे दिए जाने पर 'सियासत' अखबार में टिप्पणी प्रकाशित हुई थी कि सर खिजर ने लीग की माँग और अधिकार को स्वीकार कर अपने पद से त्यागपत्र दे दिया है। अब यह अनुमान लगाया जा रहा है कि नवाब ममदोत के नेतृत्व में लीग का मंत्रिमंडल बनेगा। अब लीग के मंत्रिमंडल के लिए रास्ता साफ हो गया है।

विशेष—यहाँ उर्दू-प्रधान भाषा का प्रयोग द्रष्टव्य है।

पृष्ठ ८१—'गिरधारीलाल जी.......... ....धोखा दे रहा था।'

कनक ने जयदेव को देने के लिए, जुबेदा के रुपए खो जाने के बहाने से अपने पिता पंडित गिरधारी लाल से सत्तर रुपए लिए थे, परन्तु उसके पीछे जुबेदा के उसके घर आने पर कनक का यह झूठ खुल गया था। पंडित गिर-धारी लाल को अपनी बेटी के इस झूठ को देख बहुत चोट पहुँची थी।

उपन्यासकार यहाँ उसी घटना और पंडित जी पर हुई उसकी प्रतिक्रिया का वर्णन कर रहा है कि—

पंडित जी की चतुर, अल्हड़ बेटी कनक ने बड़ी चतुरता के साथ अपने पिता से रुपये लिए थे। परन्तु रहस्य खुल जाने पर पंडित जी ने आसानी से यह अनुमान लगा लिया कि कनक ने ये रुपए जयदेव को देने के लिए ही माँगे होंगे। उन्होंने सोचा कि यदि जयदेव को ही रुपए देने थे तो इसमें मुझसे छिपाने की क्या जरूरत थी। उसका नाम लेकर मुझसे रुपए माँग लेती। उन्होंने इस बात पर भी गौर किया कि अब कनक जयदेव की बात चलने पर उसके लिए पहले की तरह 'भाई जी' शब्द का प्रयोग नहीं करती थी। पंडित जी यह जानते थे कि उनकी यह बेटी बहुत तेज है, इसलिए वह उस पर अधिक ध्यान रखना उचित और जरूरी समझते थे। वह तेज थी इसलिए वह आगे चल कर उन्नति कर कुछ बन सकती थी, परन्तु साथ ही यह आशंका भी थी कि अपनी तेजी के कारण वह कहीं चोट न खा बैठे, धोखा न खा जाय। तीन वर्ष पहले वह क्रिश्चियन कालेज के एक लेक्चरार के प्रेम में पूरी तरह से डूब गयी थी। परन्तु गनीमत यह रही कि वह लेक्चरार विवाहित था। इसलिए कनक को उसकी धोखेबाजी का पता लग गया और वह उससे विमुख हो गई।

विशेष—यहाँ कनक के इस स्वभाव पर प्रकाश डाला गया है कि वह जब किसी व्यक्ति से प्रभावित हो जाती है तो उसी के प्रेम में डूब जाती है। जयदेव से भी वह प्रभावित थी और उसके लिए अपने पिता से भी झूठ बोलने और धोखा देने लगी थी।

पृष्ठ १००—'पुरी को तारा के..................लपटें ले रहे थे।

तारा और असद के प्रसंग को लेकर जयदेवपुरी ने तारा से पूछा कि उसने असद से अपने विवाह के सम्बन्ध में बातें क्यों की थीं? तारा के चुप रह जाने पर जयदेव ने इसे अपने अधिकार और शक्ति का अपमान समझा। वह तारा का बड़ा भाई था, इसलिए उसे तारा के सम्बन्ध में सब कुछ जानने का अधिकार था। उसे दो नारियों ने धोखा दिया था—उसकी प्रियतमा

कनक ने तथा उसकी अपनी बहन तारा ने। कनक उससे मिलती नहीं थी और तारा ने एक मुसलमान से प्रेम किया था। इसलिए जयदेव का हृदय प्रतिहिंसा (बदला लेने की भावना) से धधक रहा था। अर्थात् वह इन दोनों को सता कर अपने मन की जलन बुझाना चाहता था।

पृष्ठ १०६—यह चिन्ह तारा..................निन्दनीय नहीं है ?

जयदेव द्वारा असद को लेकर तारा से उल्टी-सीधी बातें कहने पर तारा ने अपना माथा फोड़ लिया था। उस चोट से तारा के माथे पर एक चिन्ह बन गया था। जयदेव को वह चिन्ह काँटे की तरह नजरों में गड़ रहा था, अखरता था। जयदेव सोचता था कि यह चिन्ह मानो इस बात की घोषणा कर रहा हो कि उसने तारा के साथ अत्यन्त क्रूर व्यवहार किया था और तारा ने उस क्रूर व्यवहार के विरोध में अपना बलिदान देने का प्रयत्न किया था। तारा ने स्वयं तो एक मुसलमान लड़के से प्रेम कर अनुचित कार्य किया था और उसका सारा दोष जयदेव के ऊपर मढ़ दिया था। भाव यह है कि जयदेव ने सोमराज और तारा के विवाह का दृढ़ विरोध न कर उसके सम्बन्ध में अपनी मौन स्वीकृति दे तारा के साथ विश्वासघात किया था, इसलिए तारा को अपनी रक्षा के लिए असद के पास जाना पड़ा था। ऐसा करके तारा ने अपना सारा दोष जयदेव पर थोप दिया था। इसे जयदेव अपनी सज्जनता, सहृदयता और आत्म-सम्मान पर एक गहरा आरोप समझता और मानता था कि उस पर व्यर्थ ही, बिना उसके किसी दोष के यह आरोप लगाया जा रहा है। इससे उसका मन इतना खिन्न रहता था कि उसका मन इतिहास की पुस्तक लिखने में नहीं लगता था। वह सोचता कि तारा ने अपने दुराग्रह (बुरे हठ) को अहिंसा के पर्दे के पीछे छिपा सत्य का गला घोंटा है। अर्थात् एक बुरे उद्देश्य को लेकर अहिंसा का मार्ग अपनाते हुए सत्य का गला घोंटने वाला सत्याग्रह किया है। जयदेव की नजर में तारा का यह कार्य शारीरिक बल या हथियार के बल द्वारा सत्य का गला घोंटने से भी अधिक क्रूर और बुरा है।

विशेष—यहाँ जयदेव की, तारा द्वारा अपने ऊपर लगाए गए लांछन के कारण, जिसे वह अनुचित और अन्यायपूर्ण समझता है, उद्विग्न मानसिक स्थिति का सुन्दर चित्रण किया गया है।

पृष्ठ १०६—'कह रहा था..............जिन्दा हो सकेंगे।'

कालीचरन देश-विभाजन के सम्बन्ध में डाक्टर प्राणनाथ की राय बताते हुए कह रहा है कि डाक्टर कह रहा था कि भारत में शासन करने वाले अंग्रेज नौकरशाह (बड़े-बड़े सरकारी अफसर) एटली (इंगलैंड के तत्कालीन प्रधानमन्त्री) और माउन्टबेटन (भारत के तत्कालीन अंग्रेज वाइसराय) की भारत को स्वतंत्रता देने की योजना से खुश नहीं हैं। वे अफसर लोग यह दिखाने का प्रयत्न कर रहे हैं कि हिन्दुस्तान को आजादी दे देना मूर्खता है। परन्तु देश का विभाजन करके उसे आजादी देने की योजना बनाने वाले अंग्रेज खूब अच्छी तरह से जानते हैं कि देश का भारत और पाकिस्तान—दो टुकड़ों में विभाजन कर देने से ये दोनों ही देश लँगड़े हो जायेंगे, अपने-अपने पैरों पर खड़े नहीं हो सकेंगे। अब तक पूरे देश का विकास पूरे देश को एक ही मान कर हुआ है। देश के एक हिस्से की जरूरतों को देश के दूसरे हिस्से में होने वाली पैदावार द्वारा पूरा किया जाता रहा है। यह विभाजन इस प्रकार किया जा रहा है कि औद्योगिक सामानों का उत्पादन करने वाले प्रान्त भारत में शामिल कर दिए गए हैं और कच्चा माल पैदा करने वाले प्रान्त पाकिस्तान में दे दिए गए हैं। अब भारत को कच्चा माल नहीं मिल पायेगा और पाकिस्तान औद्योगिक सामान के लिए अन्य देशों पर निर्भर रहेगा। इस स्थिति में भारत और पाकिस्तान—दोनों ही देशों का विकास रुक जायेगा। और ये दोनों ही देश अपनी-अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए ब्रिटेन पर निर्भर रहेंगे। यह अँग्रेजों की बड़ी गहरी चाल है। द्वितीय विश्वयुद्ध के कारण ब्रिटेन के उद्योग-धन्धे चौपट हो गए हैं। उन्हें कहीं से भी अपने उद्योग-धन्धे चलाने और बढ़ाने के लिए कच्चा माल नहीं मिलता। अंग्रेज की कूटनीति के कारण विभाजन उपरान्त भारत और पाकिस्तान परस्पर घोर शत्रु बने रहेंगे। एक दूसरे के साथ व्यापार नहीं करेंगे। ऐसी स्थिति में पाकिस्तान के पश्चिमी पंजाब में उत्पन्न होने वाली रुई आदि तथा पूर्वी पाकिस्तान में पैदा होने

वाली जूट की पैदावार ब्रिटेन को मिल जायेगी। और इस कच्चे माल के मिल जाने से ब्रिटेन के मरते हुए उद्योग-धन्धे थोड़े से पनप जायेंगे। इस विभाजन के मूल में ब्रिटेन का यही भीतरी उद्देश्य छिपा हुआ है।

विशेष—देश-विभाजन के पीछे छिपी हुई अंग्रेजों की गहरी कूटनीति का सुन्दर विश्लेषण किया गया है।

पृष्ठ १२१—'समाज में परित्यक्त..............बाधा ही बनोगी।'

जयदेव के साथ विवाह करने के कनक के दृढ़ निश्चय को सुन नैयर उसे समझा रहा है कि जयदेव के साथ विवाह करने से तुम्हारा समाज तुम्हें त्याग देगा क्योंकि जयदेव की आर्थिक और सामाजिक स्थिति तुम्हारी सामाजिक स्थिति से बहुत नीची है। इसलिए तुम्हारे इस कार्य से तुम्हारे अपने सब लोग तुम्हारा बहिष्कार कर देंगे और तुम्हारे साथ ही जयदेव का भी बहिष्कार करने लगेंगे। इस तरह जयदेव का भविष्य नहीं सुधर सकेगा। वह सबकी अवहेलना पाकर क्षुब्ध और कुंठित हो उठेगा और ऐसे लोग उन्नति नहीं कर पाते। इसलिए तुम उसके साथ विवाह कर उसका भला नहीं करोगी, बल्कि उसकी उन्नति के मार्ग में बाधा बन जाओगी।

पृष्ठ १३५—'पुरी को सोचना..............से क्या लाभ?'

जयदेव कनक के यहाँ उसे हवालात से छुड़वाने के लिए धन्यवाद देने गया था। वहाँ नैयर ने बातों-ही-बातों में उसका अपमान-सा कर दिया था। जयदेव उसी अपमान से क्षुब्ध हो अपनी और कनक की स्थिति के सम्बन्ध में सोच रहा है—

कनक एक सुसंस्कृत और सम्भ्रान्त घराने की लड़की है। उसकी अपनी स्थिति ऐसी नहीं है कि वह ऐसी पत्नी को अपनी ऐसी हीन स्थिति में सम्मान के साथ अपने यहाँ रख सके। यदि घर में फूल सजाने के लिए फूलदान ही न हो तो फूलों को तोड़ कर लाने से ही क्या लाभ! अर्थात् जब उसकी हैसियत कनक जैसी सुसंस्कृत और सम्भ्रान्त घराने की लड़की को अपने यहाँ रखने की नहीं हैं, तो फिर उससे विवाह कर उसका जीवन क्यों नष्ट किया जाय। वह तब तक पंडित गिरधारी लाल और नैयर के साथ बराबरी के दर्जे से अकड़

बात नहीं कर सकता जब तक कि पहले अपनी इस गरीबी और बेकारी को दूर न कर ले। यह गरीबी और बेकारी उसके ऊपर बहुत बड़ा कलंक हैं और उसे विवश बनाए हुए है। जब तक वह इस योग्य नहीं हो जाता कि उन लोगों के सामने कनक को सम्मान के साथ अपनी निज की मोटर में बैठा कर ले जा सके, तब तक कनक को पत्नी बना अपने घर लाने की बात सोचना व्यर्थ है, उन लोगों द्वारा किए गए अपमान को सहन करना है। यह सोचना भी असह्य है कि कनक भी उसकी अपनी माँ और बहनों के समान फटे कपड़े पहन कर भोला पांधे की गली के उस छोटे से घर की रसोई में बैठ कपड़े धोए और बर्तन माँजे। इस सारी स्थिति पर विचार करते हुए जयदेव ने महसूस किया कि बिना अपनी आर्थिक स्थिति सम्हाले उसका कनक के प्रति आकर्षित हो जाना उसकी भूल थी। पहले उसे अपनी आर्थिक स्थिति सुधारनी चाहिए थी। वर्तमान स्थिति में उन दोनों का विवाह होना दोनों ही के भविष्य को बर्बाद कर देगा और उससे कोई लाभ नहीं होगा।

विशेष—यहाँ जयदेव अपने और कनक के सम्बन्ध में नितान्त व्यावहारिक दृष्टि से विचार कर रहा है

पृष्ठ १६५—'संयम ही.................संकट बनेगी'।

नैयर कनक को संयम का महत्व समझाता हुआ कह रहा है कि व्यवहार में संयम से काम लेना ही संस्कृति को जन्म देता है। अर्थात् जो लोग व्यवहार में संयम से जितना अधिक काम लेते हैं, वे उतने ही अधिक सुसंस्कृत और सभ्य होते हैं। व्यवहार ही धीरे-धीरे रुढ़ि अर्थात् नियम मान लिया जाता है। और इन नियमों के अनुसार व्यवहार करना ही संस्कृति कहलाने लगता है। तेज रफ्तार मोटर का एक गुण माना जाता है परन्तु यदि उसकी उस तेज रफ्तार पर बन्धन लगाने के लिए उसमें ब्रेक न हों तो उस मोटर को चलाने और उसमें बैठने वालों के प्राण संकट में पड़ जाते हैं, क्योंकि ब्रेक न होने पर समय पर उस मोटर को रोका नहीं जा सकेगा और वह किसी से टकरा जायेगी। इसी प्रकार यदि हमारे व्यवहार पर संयम का बन्धन नहीं रहेगा तो हम अपने उश्रृंखल व्यवहार के कारण संकट में पड़ जायेंगे। इसलिए हमारे व्यवहार पर संयम का बन्धन रहना अत्यन्त आवश्यक है।

पृष्ठ १७५—'गुनाह की सजा................गुनाह और बढ़ेगा।'

तारा द्वारा आत्म-हत्या कर लेने की बात कहने पर हाफिज जी उसे समझाते हुए कहते हैं कि पाप की सजा पाप करने वाले को दी जानी चाहिए। अगर अपराध की सजा उस अपराध करने वाले अत्याचारी को न मिल कर, उसके अत्याचार को सहने वाले को ही भोगनी पड़े तो इससे पाप और बढ़ेगा। इसलिए उस गुन्डे नब्बू को सजा न देकर तुम्हारा आत्म-हत्या करना एक और बड़ा पाप होगा।

पृष्ठ १७८—'कुरान शरीफ की.... ....लाने में है।'

हाफिज जी तारा को समझाते हुए कह रहे हैं कि कुरान शरीफ (मुसलमानों का धार्मिक ग्रन्थ, जिसमें इस्लाम-धर्म के पैगम्बर हजरत मुहम्मद साहब के वाक्य संग्रहीत हैं) का दर्शन और उसमें बताए गए कानून (नियम) शाश्वत हैं। वह न कभी बदले हैं और न बदलेंगे। उसी दर्शन और कानूनों में आस्था रखने से ही मनुष्य को मुक्ति प्राप्त हो सकती है।

पृष्ठ १८३-८४—'वे विश्वास कर........कर रहा था।'

जयदेव लखनऊ से निराश हो कनक के पास नैनीताल लौट आया। अवस्थी जी ने कनक को नौकरी मिल जाने का आश्वासन दे रखा था। उसी आश्वासन के आधार पर कनक और जयदेव ने यह विश्वास कर लिया था कि उन्हें एक अच्छी नौकरी मिल जायेगी जिसे पाकर उन दोनों का जीवन स्वर्ग के समान सुखी और सन्तुष्ट बन जायेगा। परन्तु अवस्थी जी द्वारा दिया गया वह आश्वासन उस मेघ के समान व्यर्थ सिद्ध हुआ जो तेज धूप में गायब हो जाता है अर्थात जब जयदेव ने अवस्थी जी से नौकरी दिला देने का आग्रह किया तो उन्होंने उसे टाल दिया। जयदेव नौकरी प्राप्त कर अमीर नहीं बनना चहता था। केवल यही चाहता था कि नौकरी मिल जाने पर उसका मामूली गुजारा तो हो जायेगा। उसे अवस्थी जी के इस धोखे पर और उनकी बात पर विश्वास कर लेने वाली कनक की सरलता पर झुँझलाहट आ रही थी।

पृष्ठ १८४—'हमारे लिए क्या........... ...रह गए हैं।'

कांग्रेसियों द्वारा स्वतंत्रता का उत्सव मनाए जाते देख जयदेव खिन्न स्वर

में कनक से कहता है कि हम जैसे पंजाबियों तथा दूसरे लोगों के लिए इस स्वतंत्रता का क्या महत्व है। इस स्वतंत्रता के मिलने पर हम लोगों के तो घर-बार उजड़ रहे हैं। हमें अपना घर-बार छोड़कर भागना और दर-दर भटकना पड़ रहा है। इस आजादी के लिए हम लोगों का बलिदान दिया जा रहा है। बलिदान हम लोगों ने किए हैं और आज भी कर रहे हैं परन्तु ये कांग्रेसी लोग हमारे बलिदानों के बल पर मिलने वाली स्वतंत्रता को प्राप्त करने का सारा श्रेय स्वयं लिए ले रहे हैं। हमारी कोई बात तक नहीं सुनता और पूछता। ये लोग अपने-आप को समझते क्या हैं? सन् १९४२ में, जब हम लोग अपनी जान पर खेल कर आजादी की लड़ाई लड़ रहे थे, पुलिस के जुल्म सहते हुए जेल जा रहे थे, उस समय ये कांग्रेसी पुलिस को टेलीफोन कर उसे सूचना दे देते थे कि वे सत्याग्रह कर रहे हैं, इसलिए पुलिस आकर उन्हें गिरफ्तार करके ले जाय। ऐसा करने से इन लोगों को पुलिस की मार नहीं सहनी पड़ती थी और गले में माला डाल चुपचाप जेल पहुँच जाते थे। हमने भी इस आजादी के लिए संकट सहे हैं, जेल भुगती है। अब जब आजादी मिल रही है तो उसका लाभ ये कांग्रेसी उठा रहे हैं और हमें राष्ट्र का निर्माण करने का उपदेश दे रहे हैं।

विशेष—सन् १९४२ में हुए देशव्यापी भयंकर जन-विद्रोह के समय, आजादी मिलने पर उसका लाभ उठाने वाले कांग्रेसी नेताओं के असली रूप पर यहाँ बड़ा सुन्दर, यथार्थ और तीखा प्रकाश डाला गया है।

पृष्ठ २१५—"हिन्दू-सिक्ख लाए..............का मुसलमान।"

हिन्दू-स्त्रियों को पाकिस्तान से हिन्दुस्तान ले जाने वाली गाड़ी का ड्राइवर, हिन्दुस्तान से पाकिस्तान की ओर आ रहे मुसलमानों के काफिले को देख कौशल्या देवी से कह रहा है कि पाकिस्तान से आने वाले हिन्दू और सिख अपने साथ अपने बक्से, सन्दूक, नकद रकम, जेवर और 'बांड' लेकर हिन्दुस्तान जा रहे हैं। परन्तु हिन्दुस्तान से पाकिस्तान आने वाले ये गरीब मुसलमान अपने साथ मिट्टी के हुक्के, टूटी चारपाइयाँ, चूल्हे, चक्की, मुर्गियाँ लिए चले आ रहे हैं। क्योंकि इनके पास केवल यही सम्पत्ति थी। यही इनकी गृहस्थी थी। जिसके पास जो कुछ होता है, उसे उसी से ममता होती है और अपना

घर छोड़ किसी दूसरी जगह जाने पर वह अपने साथ उसी चीज को ले जाता है जिसके प्रति उसकी ममता होती है। इन मुसलमानों के पास इन चीजों के अलावा और कुछ था ही नहीं, इसलिए ये वेचारे अपनी इन्हीं चीजों को अपने साथ उठा लाए हैं। लोगों में प्रचलित यह कहावत ठीक ही थी समृद्धि का नाम हिन्दू है, और गरीबी का नाम मुसलमान है। अर्थात् हिन्दू समृद्ध होते हैं, धनी होते हैं, और मुसलमान गरीब होते हैं।

विशेष—यहाँ एक अशिक्षित ड्राइवर हिन्दू और मुसलमान की माली हालत के अन्तर को बड़ी स्पष्टता के साथ अभिव्यक्त कर रहा है। इस सम्बन्ध में समाजशास्त्रियों का यह कहना रहा है कि पंजाब के हिन्दू और सिख अमीर थे और मुसलमान गरीब। मुसलमानों का सदियों से शोषण होता आया था। इसीलिए जब देश का विभाजन होने पर वहाँ के मुसलमानों को अपने नेताओं और अंग्रेजों का बल, समर्थन और सहयोग मिल गया तो उन्होंने वहाँ के हिन्दुओं और मुसलमानों को बड़ी वेरहमी के साथ मारा और लूट लिया। हिन्दुओं के प्रति मुसलमानों का यह गुस्सा मजहब का भी था, और गरीबी का भी।

पृष्ठ २१७—'रब्ब ने……………दो कर दिया ?'

हिन्दुस्तान और पाकिस्तान से एक दूसरी ओर आते-जाते मुसलमानों और हिन्दुओं के मीलों लम्बे काफलों को देख कर वही ड्राइवर बड़े आकुल, भावावेश भरे ऊंचे स्वर में कहता है कि जिन इन्सानों को भगवान ने एक वनाया था, उसे भगवान के वन्दों ने, मानने वालों ने, एक दूसरे के प्रति अपने वहम और अत्याचार से उन इन्सानों के दो टुकड़े कर दिए, उन्हें अलग-अलग दो भागों में—हिन्दू और मुसलमान, भारत और पाकिस्तान में—बाँट दिया।

विशेष—यहाँ एक अशिक्षित मगर समझदार ड्राइवर हिन्दु-मुस्लिम वैमनस्य के लिए, देश के विभाजन के लिए, दोनों धर्मों के ठेकेदारों, धार्मिक और धर्म के नाम पर राजनीति का खेल खेलने वाले नेताओं को जिम्मेदार ठहरा रहा है।

पृष्ठ २३३—'उर्मिला का अपने…………क्यों फूटता ?'

पाकिस्तान के दंगों में उर्मिला का पति मारा गया था। इसलिए उर्मिला

बहुत दुखी और गुमसुम बनी रही थी। जयदेव उसकी इस दशा को देख बहुत दुखी और चिन्तित था। वह देख रहा था कि उर्मिला गहरे शोक में डूबी, अपने प्रति पूरा उपेक्षा-भाव धारण किए जड़ पदार्थ के समान निश्चल और गुमसुम बैठी रहती थी। यह देख जयदेव को लगता था कि भगवान ने उर्मिला के साथ घोर अन्याय किया है। उसका दुख देखकर जयदेव का हृदय वेदना से फटने लगता था। वह सोचता था कि उर्मिला के इस दुर्भाग्य के लिए वही जिम्मेदार है। यदि वह उस समय उर्मिला से विवाह कर लेता तो उसे दुर्भाग्य की यह चोट क्यों झेलनी पड़ती, वह क्यों विधवा हो इस तरह दुखी रहती। वह एक और बात के लिए मन-ही-मन स्वयं को उर्मिला के प्रति अपराधी अनुभव करता था। उसको अपराध की यह अनुभूति अत्यन्त सूक्ष्म और गुप्त थी। वह सोचता था कि मरी में रहते समय उसने उर्मिला की अवहेलना की थी, उसके प्रेम-प्रस्तावों और हरकतों को ठुकराया था। वह मन ही मन यह अनुभव करता था कि उर्मिला को बढ़ावा देने में उसका अपना भी हल्का सा हाथ रहा था। परन्तु जब एक दिन उर्मिला की माँ ने उर्मिला को उसके साथ चुहल करते देख उर्मिला की ठुकाई की थी तो वह उस घटना की सारी असफलता, लज्जा और कुंठा की जिम्मेदारी उर्मिला के ऊपर ही थोप, कायर के समान वहाँ से भाग खड़ा हुआ था। अब वह सोचता था कि यदि वह उस समय साहस से काम लेता तो उर्मिला की उदार स्वभाव वाली माँ उन दोनों का परस्पर विवाह करने के लिए सहमत हो जाती और इस प्रकार उर्मिला को आज ये दिन न देखने पड़ते, इतना दुख न सहना पड़ता।

पृष्ठ २३४—'पुरी कनक के............आवश्यक था....।'

इस समय पुरी बड़ी विचित्र मानसिक स्थिति में फँसा हुआ था। पुराने सम्बन्धों के कारण वह उर्मिला के लिए भी चिन्तित था और कनक के लिए भी। कनक और उसने जीवन भर एक दूसरे का साथ देने की प्रतिज्ञा की थी। कनक अपनी प्रतिज्ञा पर अभी तक दृढ़ बनी हुई थी। इसलिए जयदेव यह अनुभव करता था कि उस पर कनक का अधिकार है। वह कनक के रहते उर्मिला को अपनी पत्नी नहीं बना सकता। परन्तु दूसरी तरफ वह यह

अनुभव करता था उर्मिला के प्रति भी उसका अधिकार और उत्तरदायित्व था क्योंकि उसके जीवन में पहले उर्मिला ही आई थी और वह उससे प्रेम भी करने लगा था। वह इस समय कनक को अपने प्रति और स्वयं को उर्मिला के प्रति उत्तरदायी महसूस कर रहा था। शरीर और स्वभाव तथा विचारों से सशक्त कनक उसे जीवन में आगे बढ़ने के लिए सहारा देना चाहती थी। परन्तु इस समय उर्मिला की जैसी मानसिक स्थिति थी, उसे सम्हालने के लिए यह नितान्त आवश्यक था कि वह उसके प्रति अपना प्रेम प्रदर्शित कर उसे सम्हाल ले। वह सोचता था कि यदि उसने इस समय उर्मिला को अपने प्रेम का सहारा नहीं दिया तो या तो वह पागल हो जायेगी, या घुल-घुल कर मर जायेगी।

विशेष—यहाँ उर्मिला और कनक को लेकर जयदेव के मन में चलने वाले अन्तर्द्वन्द्व का मार्मिक अंकन हुआ है।

पृष्ठ २५७—'तारा ने व्यंजना..................फेंक दिया जाये।

तारा बन्ती की मृत्यु के बाद रात को देर से अपने शरणार्थी कैम्प में पहुँची तो वहाँ रहने वाली औरतों ने कोहराम मचा दिया कि हम ऐसी आवारा लड़की को अपने साथ नहीं रहने देंगी। तारा ने उन औरतों की बातों में छिपे असली अर्थ और इशारे को समझ लिया। वे उसे चरित्रहीन आवारा लड़की समझ रही थीं। तारा तो पहले से ही दुर्भाग्य की भयंकर ठोकरें खाती भटकती फिर रही थी। अब उस पर यह एक नई ठोकर और पड़ी कि वह चरित्रहीन है। बन्ती के साथ दिन भर भटकने और फिर बन्ती के साथ हुए निर्मम व्यवहार और अन्त में उसकी करुण मृत्यु को देखने के कारण तारा शरीर और मन से इतनी थक गई थी कि उसे बेहोशी-सी आ रही थी। वह चाह रही थी कि सारी बातें बता कर उन औरतों द्वारा उस पर लगाए जा रहे लांछन का खंडन करे, परन्तु उसमें इतनी शक्ति ही नहीं रह गई थी कि उठ कर उनसे बातें करे। वह असहाय सी चटाई पर पड़ी यह अनुभव कर रही थी कि उसे घेर कर खड़ी औरतें उससे उसी प्रकार घृणा कर रही थीं जैसे किसी सड़ती हुई लाश से की जाती है कि उसे जल्दी से जल्दी वहाँ से हटवा दिया जाय। तारा यह सोच रही थी कि अब तो उसे इस दुखी जीवन

से तभी मुक्ति मिल सकती है यदि उसे उठा कर आग में या किसी बहती गहरी नदी में फेंक दिया जाये जिससे उसकी मृत्यु हो जाये। मरे बिना उसे इन यातनाओं, दुखों और लांछनों से मुक्ति नहीं मिल सकती।

पृष्ठ २५७-५८—'तारा अर्ध-मूर्च्छित……………फेर लेते थे।'

तारा अपनी वेहोशी की सी हालत में पड़ी भगवान से प्रार्थना कर रही थी कि वह उसे उठा ले। उसने उसी दशा में एक स्वप्न सा देखा कि उसे भगवान के सामने घसीटा जा रहा है। उसके सामने भगवान का चेहरा रह-रह कर भिन्न-भिन्न रूप धारण कर लेता है, बिल्कुल उसी तरह जैसे सिनेमा के पर्दे पर पात्रों के बड़े-बड़े चेहरे एक दूसरे के बाद आते और गायब होते चले जाते हैं। एक बार उसने देखा कि भगवान एक मुसलमान का रूप धारण किए नमाज पढ़ने के लिए हाथ में टोंटीदार लोटा लिए आसन के पास खड़े हैं। उनके खूब घनी, घुँघराली काली, लम्बी दाढ़ी और कतरी गई मूँछें हैं, वह लाल तुर्की टोपी पहने हैं, उनका चेहरा तेज से चमक और क्रोध के कारण तमतमाया हुआ लाल-लाल हो रहा है। कभी उसे भगवान का चेहरा विना दाढ़ी-मूँछ वाले बालक का सा लगने लगता बिल्कुल कृष्ण जैसा। बिल्कुल कृष्ण के से हो कटाक्ष-भरे नेत्र, और मुसकान से थिरकते होठों पर बाँसुरी रखे हुए। परन्तु इन दोनों प्रकार के भगवान के चेहरों में से कोई भी चेहरा तारा की ओर नहीं देखता था। सब उपेक्षा से मुँह फेर लेते थे। अर्थात् न तो मुसलमानों का खुदा उसकी पुकार सुन रहा था और न हिन्दुओं के कृष्ण ही उसकी ओर ध्यान दे रहे थे।

विशेष—तारा ने मुसलमानों के हाथ भयंकर अत्याचार सहे थे इसलिए मुसलमानों के खुदा का रूप उसे भयंकर दिखाई पड़ता था, और अपनी सहज हिन्दू-आस्था और संस्कारों के कारण उसके सामने कृष्ण का मनोहारी रूप उदय हो उठता था परन्तु उसके ये भगवान भी उसकी पुकार नहीं सुन रहे थे। यहाँ तारा की विक्षिप्त-सी मानसिक दशा में उसकी कल्पना में भगवान के विभिन्न रूपों के उदय होने का बड़ा मनोवैज्ञानिक वर्णन किया गया है।

पृष्ठ—२७४—'यह अकेला पुण्यात्मा……………तैयार थी।'

दिल्ली और भारत के अन्य हिस्सों में मुसलमानों पर हुए अत्याचारों और

चारों ओर छाई मार-काट और अशान्ति के विरोध में महात्मा गांधी ने आमरण अनशन कर दिया था। तारा उसी के सम्बन्ध में सोच रही है कि सारे देश में अकेला गान्धी ही एक ऐसा पुण्यात्मा है जो सारे देश में छाई बर्बरता, अत्याचार और पशुता का विरोध करने में अपने प्राणों की बाजी लगा रहा है, अपने देश वासियों द्वारा किए गए पापों के लिए प्रायश्चित कर रहा है। गांधी सच्चे अर्थों में इस देश की आत्मा है। लाहौर में रहते समय स्वयं तारा ने, उसके भाई जयदेव, ने हिन्दू-मुसलमानों में होने वाले इस खून-खराबी, इस बर्बादी को रोकने का कितना प्रयत्न किया था। हिन्दू-मुस्लिम-एकता और सौमनस्य के लिए कितना आन्दोलन किया था। उस समय तारा ने तथा अन्य लोगों ने यह कल्पना तक नहीं की थी हिन्दू-मुसलमानों का यह द्वेष इतना भयंकर रूप धारण कर लेगा। वह स्वयं उस द्वेष की शिकार बनी थी। परन्तु अब तारा इस पुण्यात्मा गांधी की सफलता के लिए, उसके प्राणों की रक्षा के लिए अपने ऊपर बीती हुई सारी मुसीबतों को भुला देने के लिए तैयार थी और कह रही थी कि देश में शान्ति स्थापित हो जाय जिससे इस पुण्यात्मा के प्राणों की रक्षा हो सके।

पृ० २७९—गांधी जी ने ....ऊँचा नहीं है।'

मिस्टर रावत गांधी जी के आमरण अनशन की व्याख्या और पक्षपात की आलोचना कर रहे थे। उनका मत था कि गांधी जी ने माउन्टबेटन के कहने पर पाकिस्तान को पचपन करोड़ रुपए दे दिये जाने पर जोर दिया था। यह सुन कर डाक्टर सूर्या ने कहा कि ऐसा करके गांधी जी ने कानून से मिले अधिकार और कानून की दृष्टि में उचित नैतिकता की अपेक्षा विशाल हृदयता को अधिक महत्व दिया है। अर्थात कानूनी दृष्टि से इस समय पाकिस्तान को यह धन देना भले ही उचित प्रतीत न होता हो परन्तु गाँधी जी पाकिस्तान को यह दिखाना चाहते हैं कि तुम हमारे साथ चाहे जितनी बुराई करो मगर हम तुम्हारे हक को नहीं मारेगें। यदि पाकिस्तान और हिन्दुस्तान के आपसी सम्बन्ध सद्भावना पूर्ण हो जाँय तो फिर इन कानूनी द्रष्टान्तों की कोई जरूरत ही न रहे। दोनों देशों की सारी समस्याएँ आपसी सद्भावना और सहयोग से ही हल हो जाँय! क्या कानून और अधिकार की अपेक्षा

मानवीय दृष्टिकोण ऊँचा नहीं है ? अर्थात मानवीय दृष्टिकोण के सामने कानून और अधिकार की कोई कीमत नहीं होती।

पृष्ठ २८८–'दरिद्र नारायण के..................पहुँचा दिया।'

सरकार ने गांधी जी की शव-यात्रा बड़े राजसी सम्मान और ठाठ-बाट के साथ निकाली थी। यह देख एक युवक यह कह उठा था कि—'राजसी शक्ति और प्रतिष्ठा का यह प्रदर्शन गांधी जी की भावना और आदर्शों के अनुकूल नहीं है।' उस युवक ने अपनी बात को स्पष्ट करते हुए आगे कहा कि—

गांधी जी दरिद्र नारायण अर्थात गरीबों और अछूतों के सेवक थे भंगियों की बस्ती में भंगियों के साथ रहना चाहते थे, शरीर पर केवल एक कपड़ा—छोटी-सी धोती पहनते थे और अपने इसी सामान्य सादा वेश और रहन-सहन द्वारा सरकार के हथियारों और सैनिक-शक्ति का विरोध करते थे। ऐसे गांधी जी कभी इस बात की अनुमति नहीं देते कि उनकी मृत्यु पर ऐसा भव्य आयोजन किया जाय, उनकी अर्थी ऐसी शान-शौकत के साथ निकाली जाय। जब अंग्रेज सरकार ने सन् १९४२ अगस्त में उन्हें गिरफ्तार कर पूना स्थित आगा खाँ के विशाल महल में रखा था तो गांधी जी ने इसे पसन्द नहीं किया था। उन्हें यह सारी शान-शौकत और आडम्बर पसन्द नहीं था। सरकार आगा खाँ महल की देखरेख और सुरक्षा पर बहुत अधिक खर्च करती थी और यह सारा खर्च गांधी जी के वहाँ रखने के कारण ही किया जा रहा था। गांधी जी को यह पसन्द नहीं था। वह इसे जनता पर अत्याचार समझते थे क्योंकि उन पर खर्च होने वाला सारा धन जनता ही तो करों के रूप में सरकार को देती थी और सरकार उस धन को गांधी जी पर खर्च कर रही थी। गांधी जी मंत्रियों को भी यही उपदेश देते थे कि उन्हें महलों या बड़ी-बड़ी कोठियों में न रह कर झोंपड़ियों में रहना चाहिए क्योंकि भारत की अधिकांश जनता झोपड़ियों में ही रहती है और मंत्री उसके प्रतिनिधि बन कर सरकार चलाते हैं। परन्तु ऐसे सादा जीवन व्यतीत करने वाले महापुरुष के मरते ही उनके अनुयाइयों ने उन्हें महलों में पहुँचा दिया। अर्थात् इतने राजसी ठाट-बाट और आडम्बर के

साथ उनकी शव-यात्रा निकाली जैसी कि महलों में रहने वालों की निकाली जाती है।

विशेष—यहाँ प्रकारान्तर से यह बताया गया है कि गांधी के नाम और आदर्शों की दुहाई देने वाले इन कांग्रेसियों ने उनकी एक भी बात नहीं मानी थी। गांधी जी सदैव यह कहा करते थे कि हमारे मंत्रियो को केवल पाँच सौ रुपया वेतन लेना चाहिए और कोठी, कार, चपरासियों, क्लर्कों आदि की फौज से दूर रहते सादा जीवन बिताना चाहिए, क्योंकि वे एक गरीब देश की गरीब जनता के प्रतिनिधि हैं। परन्तु कांग्रेसियों ने उनकी एक भी बात नहीं मानी थी और बड़े ठाठ से रहते थे।

पृष्ठ २८६—'सदा ही ऐसा..................रह जायेगा।'

वही युवक अपनी बात को और अधिक स्पष्ट करता हुआ कहता है कि सरकार ने गरीबों के गांधी को गरीबों से छीन लिया है। परन्तु इतिहास यह बताता है कि गांधी जैसे सन्तों के साथ हमेशा से ऐसा ही व्यवहार होता आया है। सन्त अपने जीवन काल में गरीबों के समर्थक होते हैं और स्वयं भी गरीबों के साथ गरीबी का जीवन बिताते हैं। परन्तु जब उनकी मृत्यु हो जाती है तो अमीर लोग उनके अनुयायी बन उन्हें उनके गरीब साथियों से छीन लेते हैं और अपनी अमीरी के अनुरूप उन पर भी अमीरी का मुलम्मा चढ़ा उन्हें भी अमीर बना देतें हैं। भगवान बुद्ध भीख माँग कर अपना पेट भरते थे। जब उनकी मृत्यु हो गयी तो राजा लोग उनके धर्म का प्रचार करने वाले और उनके प्रतिनिधि बन गए। अर्थात् गौतम बुद्ध गरीब जनता के न रह कर अमीरों के बन गए। ईसा मसीह के साथ भी ऐसा ही हुआ था और अब इस सन्त गांधी के साथ भी यही हो रहा है। भाव यह है कि जो सन्त अपने जीवन में गरीबी का जीवन जीते हैं, गरीबों की दशा सुधारने के लिए प्रयत्न करते हैं, उपदेश देते हैं, सिद्धान्त बनाते हैं, उनके मरने के बाद अमीर लोग उनके अनुयायो बन उनके सिद्धान्तों की इस प्रकार व्याख्या करना आरम्भ कर देते हैं जिससे उनके अपने स्वार्थों की सिद्धि हो सके और जनता उनके खिलाफ विद्रोह करने का प्रयत्न न करे। बुद्ध, ईसा, गांधी–तीनों सत्य और अहिंसा के प्रचारक थे। अमीरों ने उनके इन उच्च सिद्धान्तों का

प्रचार इसलिए किया और कर रहे हैं कि जनता उनके विरुद्ध हिंसा का प्रयोग न करे ।

वह युवक आगे कहता है कि कल गांधी जी के ये नए अमीर अनुयायी उनकी स्मृति में ताजमहल जैसा एक अत्यन्त कीमती और भव्य स्मारक बना देंगे और गांधी जी के सिद्धान्तों को उस स्मारक की नींव के नीचे दबा देंगे, अर्थात् हमेशा के लिए भुला देंगे। ये लोग बिल्कुल वही करेंगे जो बुद्ध के मरने के बाद उनके नए अनुयायी राजाओं ने किया था । राजाओं ने बुद्ध के दाँत रख कर, स्थापित कर, उनके ऊपर विशाल स्तूपों का निर्माण कराया था । जो राजा बुद्ध के अनुयायी बन उनके अपरिग्रह के सिद्धान्त को मानने का ढोंग रचते थे, वही सेनाएँ लेकर दूसरे राज्यों पर चढ़ाई कर अपने साम्राज्य का विस्तार करने में जुट गए थे । (अपरिग्रह से अभिप्राय है सब कुछ त्याग देना, किसी के भी प्रति माया-मोह न रखना ।) जिस प्रकार बुद्ध और ईसा के इन अनुयाइयों ने उन्हें अवतार बना दिया था, भगवान का पद प्राप्त करा दिया था, उसी तरह गांधी जी के ये अनुयायी भी गांधी जी को पूजा करने का अवतार बना देंगे । अर्थात् जगह-जगह गांधी जी के मन्दिर बन जायेंगे और उनकी पूजा होने लगेगी । परन्तु उनके आदर्शों और सिद्धान्तों को पूरी तरह से भुला दिया जायेगा ।

विशेष—गांधी जी की मृत्यु के बाद कांग्रेसियों ने गांधी जी के नाम और सिद्धान्तों की दुहाई देते हुए, उनके आदर्शों और सिद्धान्तों के विरुद्ध जो कार्य किए हैं, यहाँ उन्हीं पर व्यंग्यभरा प्रकाश डाला गया है ।

पृष्ठ २९०—**'जब मनुष्य प्रभाव..................देने लगती हैं ।'**

उपन्यासकार अभावों से ग्रस्त मनुष्य के मनोविज्ञान का विश्लेषण करता हुआ कह रहा है कि जब तक मनुष्य का जीवन अभावों से, गरीबी से घिरा रहता है, वह स्वयं को उन अभावों पर विजय पाने में, अपनी गरीबी दूर करने में असमर्थ समझता रहता है । अभाव उसे चारों ओर से जकड़े रहते हैं । उसे सफलता पाने का कोई मार्ग नहीं दिखाई देता । मगर जब उसे अपने उन अभावों को दूर करने के साधन मिल जाते हैं तो वह उन अभावों

से मुक्त हो महत्त्वाकांक्षी बन जाता है, आगे बढ़ने और उन्नति करने के सपने देखने लगता है। उसे यह दिखाई देने लगता है कि अब वह उन्नति करता चला जायेगा और वह यह भी देखने लगता है कि किन मार्गों से, किन तरकीबों से वह अपनी महत्वाकांक्षाओं को पूरा कर सकेगा।

विशेष—यहाँ उपन्यासकार ने मानव के इस मनोविज्ञान को एक रूपक द्वारा प्रस्तुत किया है। वह रूपक इस प्रकार है—अभाव रूपी एक गड्ढा है जिसमें मनुष्य फँसा हुआ है। उसे उस गड्ढे में से बाहर निकलने का कोई रास्ता या साधन नहीं दिखाई पड़ता, इसलिए वह विवश बना उसी में पड़ा छटपटाता रहता है। मगर एक बार जब उसे गड्ढे में से बाहर निकलने के लिए, अपनी गरीबी को दूर करने के लिए कोई साधन रूपी सीढ़ी मिल जाती है तो वह भविष्य की आशा और महत्त्वाकांक्षा से भर उठता है और सोचने लगता है कि अब उसके सारे अभाव दूर हो जायेंगे और वह उन्नति कर सकेगा।

यह गद्यखंड जयदेव पुरी के जीवन के प्रति संकेत कर रहा है। पुरी लाहौर में रहते समय अपने और अपने परिवार के आर्थिक अभाव को दूर करने के लिए अथक प्रयत्न करता रहा था परन्तु उसे सफलता नहीं मिल पाई थी। विभाजन के उपरान्त उसे जालन्धर में सूद जी का संरक्षण मिल गया था और वह प्रेस को सम्हालने लगा था। उसका गुजारा चलने लगा था। अब उसकी महत्त्वाकांक्षा सिर उठाने लगी थी। उसने देख लिया था कि वह सूद जी की सहायता और संरक्षण के कारण काफी उन्नति कर सकेगा। यहाँ उसका लाहौर का जीवन अभावों का गड्ढा, जालन्धर में सूद जी की सहायता उस गड्ढे से बाहर आने की सीढ़ी और सूद जी का अमित प्रभाव और उसके माध्यम से उन्नति करने की महत्त्वाकांक्षा राजमार्ग के समान है।

पृष्ठ २९०-९१—'पुरी ने देश..............उसका नहीं है।'

उपन्यासकार जयदेव से सम्बन्धित अपने उपर्युक्त रुपक को ही विस्तार सा देता, उसके द्वारा किए गए संघर्षों का ब्योरा प्रस्तुत कर रहा है। वह कहता है—

जयदेव पुरी ने देश का विभाजन होने से पहले ही अपने आर्थिक अभाव को दूर करने का तथा साहित्य सृजन द्वारा सम्मान प्राप्त करने का प्रयत्न करना आरम्भ कर दिया था। उसकी यही दो महत्त्वाकांक्षाएँ थीं। परन्तु अपने इस प्रयत्न में उसे सफलता नहीं मिल पाई थी। सम्पादक कशिश जी से मतभेद हो जाने पर उसे 'पैरोकार' अखबार की सहायक-सम्पादकी से हाथ होना पड़ा था। बड़ी मुश्किल से मिली इस नौकरी को खोकर वह फिर बेकार हो गया था और उसे पुनः गरीबी का जीवन बिताने के लिए मजबूर हो जाना पड़ा था। वह अनुवाद आदि करके अपनी इस बेकारी और गरीबी को दूर करने का भरसक प्रयत्न कर रहा था। खूब परिश्रम करता था। परन्तु उसी समय देश में राजनीतिक भूकम्प सा उठ खड़ा हुआ और देश भारत और पाकिस्तान—दो टुकड़ों में बँट गया। देश की धरती के दो टुकड़े हो जाने से लाखों लोग बेघरवार हो दूसरे स्थानों पर शरण लेने के लिए मजबूर कर दिए गए। बड़े-बड़े लोग अपना सब कुछ खोकर शरणार्थी बन भटकने लगे। बड़े-बड़े धनपति देखते-देखते कंगाल बन गए। पुरी तो पहले से ही गरीबी और बेकारी के दलदल में फँसा हुआ था परन्तु इस विभाजन ने उसे अपने वतन से उखाड़ कर निराश्रित, असहाय भटकने के लिए विवश कर दिया। अब उसे दाने-दाने के लिए भटकना पड़ रहा था और मौत उसके सामने मुँह फाड़े खड़ी थी। परन्तु जालन्धर में सूद जी का आश्रय और संरक्षण मिल जाने पर उसने अनुभव किया कि उसे पैर टिकाने को जगह मिल गई है। वह उस आश्रय को पाकर खड़ा हो गया। उसकी जान बच गई। सूद जी का आश्रय और सहयोग पाकर पुरी धीरे-धीरे अपने को सुरक्षित अनुभव करने लगा। और आगे चल कर उसने अनुभव किया कि अब वह और उसका भविष्य—दोनों ही पूरी तरह से सुरक्षित हो चुके हैं। सूद जी की सहायता से उसकी रोजी-रोटी का सुचारु प्रबन्ध हो गया था। वह कमल प्रेस का मालिक बन गया था। अब उसे उस स्थान से कोई हटाने वाला नहीं दिखाई देता था। सब लोगों का यही विश्वास था कि पुरी ही उस प्रेस का मालिक है।

विशेष—यहाँ उपन्यासकार ने पुनः एक रूपक द्वारा पुरी के जीवन में आए उत्तर-चढ़ाव को दिखाया है। पुरी की आरम्भिक महत्त्वाकांक्षा दुरूह पर्वत की, बेकारी दलदल की, बाढ़ का रेला शरणार्थियों की भगदड़ का, राजनीतिक भूकम्प विभाजन का, पुरी के पाँव द्वारा धरती छूना सूद जी के यहाँ आश्रम पाने का, प्रेस का सारा भार मिल जाना पक्के मकान की छत का, और प्रेस पक्के मकान का प्रतीक है। इस रूपक द्वारा पुरी के विभाजन से पूर्व और विभाजन के बाद के आरम्भिक जीवन की, उसके संघर्षों की सारी कथा कह दी गयी है।

पृष्ठ २९१—'सुपरिन्टेन्डेन्ट पुलिस..............क्या बुद्धिमत्ता है।'

यहाँ सूद जी जयदेव द्वारा पुलिस की नौकरी दिला दिए जाने की प्रार्थना करने पर उसे समझाते हुए कह रहे हैं कि पुलिस सुपरिन्टेन्डेन्ट का काम तो सरकारी आज्ञाओं को मानना और पूरा करना है। इसलिए उसका कोई महत्व नहीं है। महत्व तो उसे आज्ञा देने वाले का है, सरकार की उचित नीतियों और उन नीतियों को कर्मचारियों द्वारा पूरा कराने वाले का है। अर्थात महत्व सरकार को चलाने वाले मंत्रियों और नेताओं का है। इसलिए राजनीतिक दृष्टि से नौकरी का कोई महत्व नहीं है। प्रेस अर्थात् समाचार-पत्र एक बहुत बड़ी राजनीतिक शक्ति होते हैं। अर्थात समाचार-पत्र हाथ में होने से उसके द्वारा अपने सिद्धान्त और अपने पक्ष का प्रचार करने से अपनी राजनीतिक स्थिति और शक्ति बढ़ाने में बहुत सहायता मिलती है। इसलिए प्रेस को व्यर्थ ही किसी दूसरे आदमी को दें देंने में कोई अक्लमन्दी नहीं है। यहाँ सूद जी यह कहना चाह रहे हैं कि अपने पास प्रेस है ही, उस प्रेस से एक समाचार-पत्र प्रकाशित कर हम अपनी राजनीतिक शक्ति बढ़ा सकते हैं। इस प्रकार वह जयदेव को एक अखबार निकालने का संकेत दे रहे हैं।

पृष्ठ १९३—'पुरी को लेखक..............में निस्सीम थी।'

जयदेव पुरी की पत्रकारिता और साहित्य-सृजन क्षमता पर प्रकाश डालता हुआ उपन्यासकार कह रहा है कि पुरी को इस बात का पूरा विश्वास था कि उसमें एक सफल लेखक की योग्यता और सामर्थ्य है। वह एक सफल लेखक बन सकता है। वह अपने विचारों को व्यवहार का रूप देने के लिए कल्पना द्वारा घटना और परिस्थितियों का सृजन कर उन्हें व्यावहारिक रूप में

प्रस्तुत करने को शक्ति रखता था। वह घटना के लिए उपयुक्त पात्रों की भी कल्पना द्वारा सृष्टि कर सकता था। वह कभी न घटने वाली घटना को भी अपनी कल्पना द्वारा वास्तविक और यथार्थ रूप में अपने पाठकों के सामने प्रस्तुत कर सकता था क्योंकि वह कहानीकार भी था। वह नए-नए भावों और घटनाओं की काल्पनिक सृष्टि भी कर सकता था। ऐसा काम करके अर्थात् कहानियाँ लिखकर उसे इस बात का सन्तोष होता था कि उसने अपनी सामर्थ्य का उपयोग किया है और उसका भी अपना एक निजी और स्वतंत्र अस्तित्त्व है। वह किसी भी घटना या प्रसंग के सम्बन्ध में अपना तर्कों द्वारा उचित सिद्ध किया गया दृष्टिकोण प्रस्तुत कर सकता था। भाषा और शैली पर उसका अच्छा अधिकार था। इन दोनों की उसके पास कोई कमी नहीं थी।

विशेष—यहाँ पुरी की साहित्यिक प्रतिभा और क्षमता का उद्घाटन किया गया है।

पृष्ठ ३११—'बूर्जुआ डैमोक्रेटिक..............कब्जा करना है।'

तारा मर्सी के साथ रहने लगी थी। एक दिन हीरालाल नामक एक पुराना कम्युनिस्ट, जो लाहौर से ही तारा से परिचित था, मर्सी से मिलने आया और तारा को क्रान्ति के सम्बन्ध में समझाने लगा कि—हमारे देश में मध्यवर्गीय प्रजातांत्रिक क्रान्ति हो ही नहीं सकती। क्योंकि यहाँ राजनीतिक सत्ता और शक्ति सामन्तों और जमींदारों के हाथ में न होकर पूँजीपतियों के हाथ में है। हमारा काम भूमिहीन किसानों और मजदूरों को अपने पक्ष में कर, उनकी सहायता से राजनीतिक शक्ति पर कब्जा करना है। अर्थात् किसानों और मजदूरों की सहायता से क्रान्ति कर शासन पर कब्जा करना है। विधान-सभाओं और लोक-सभा के चुनाव लड़ कर शासन पर कब्जा नहीं जमाया जा सकता।

पृष्ठ ३१२—'आपने तो अज्ञान...............कर लिया आपने ?'

हीरालाल के मत के विरोध में तारा का कहना यह था कि देश की जनता ना समझ है, इसलिए कम्युनिज्म के सिद्धान्तों को नहीं समझती। इसलिए सबसे पहले, जनता को कम्युनिज्म के सिद्धान्त समझाने के लिए उसे शिक्षित बनाना पड़ेगा, उसका अज्ञान दूर करना होगा। परन्तु तुम लोगों ने तो जनता का अज्ञान दूर किए बिना ही, पहले ही क्रान्ति शुरू कर दी है।

क्या तुम लोग पहले शासन पर अधिकार जमा, उस अधिकार के बल पर जनता को कम्युनिज्म समझाओगे ? यह ठीक है कि तुम कम्युनिस्ट लोग जनता की भलाई के लिए ही यहाँ कम्युनिज्म लाना चाहते हो। परन्तु यहाँ की अशिक्षित और अज्ञानी जनता कम्युनिज्म को धर्म और ईश्वर का विरोधी समझ तुम्हारा विरोध ही अधिक करेगी। कारण यह है कि जनता को यही समझाया गया है कि कम्युनिस्ट धर्म और ईश्वर के विरोधी हैं। इसलिए यहाँ की धर्म-प्राण समझी जाने वाली जनता तुम्हारा विरोध ही करेगी। यह जनता तुम्हारा साथ न देकर गांधी जी के उत्तराधिकारी समझे जाने वाले इन कांग्रेसी नेताओं का ही साथ देगी, क्योंकि उसे यह बताया जाता रहा है कि गांधी जी और कांग्रेस ने ही देश को अंग्रेजों की गुलामी से आजादी दिलाई है। अँग्रेज विदेशी थे, इसलिए उनके विरुद्ध विद्रोह करने की बात तो लोगों को उचित और अच्छी लगती थी। उनका विरोध करने से आजादी मिलने की आशा थी। परन्तु अब जब कि देश में अपने ही लोगों की सरकार है, तो उसके खिलाफ विद्रोह करने की बात लोगों को उचित और संगत नहीं प्रतीत होगी। यदि आप लाग शासन पर कब्जा करना चाहते हैं तो वैधानिक रीति से, चुनावों में विजय प्राप्त कर अपनी शक्ति बढ़ानी चाहिए। कांग्रेस ने इतने वर्षों के लम्बे संघर्ष के बाद जनता में प्रतिष्ठा प्राप्त कर पाई थी। और इसीलिए जनता चुनावों में कांग्रेस का साथ देती है। परन्तु कम्युनिस्ट लोग तो एक झटके में ही जनता का समर्थन प्राप्त कर लेना चाहते हैं। यह नामुमकिन है। उन्हें पहले अपने कार्यों द्वारा जनता को यह विश्वास दिलाना होगा कि उनके द्वारा बताए मार्ग पर चलने से जनता के दुख-दर्द दूर हो जायेंगे। तभी जनता उन्हें अपना समर्थन देगी। कम्युनिस्टों ने बंगाल और मद्रास में किसानों और मजदूरों को उभाड़ कर क्रान्ति करने की कोशिश की थी। परन्तु सरकार ने दमन कर उस क्रान्ति को कुचल दिया और दोनों राज्यों में कम्युनिस्ट-पार्टी अवैधानिक घोषित कर दी गई।

विशेष—यहाँ उपन्यासकार तारा के माध्यम से यह सुझाव सा दे रहा है कि कम्युनिज्म लाने के लिए पहले जनता को शिक्षित और जागरूक बनाना पड़ेगा। तभी जनता अपना भला-बुरा सोचने में समर्थ हो सकेगी। उस समय जनता

का पूरा सहयोग मिल जाने पर कम्युनिस्ट चुनावों में विजय प्राप्त कर शासन पर अधिकार करने में समर्थ हो जायेंगे। उससे पहले क्रान्ति के नारे लगाना या क्रान्ति करने का प्रयत्न करना आत्मघात होगा। क्योंकि जनता अभी कम्युनिज्म के सिद्धान्तों को, उन सिद्धान्तों में निहित अपनी भलाई और उज्ज्वल भविष्य को नहीं समझ पाती। मद्रास में सन् १९४८ में तेलंगाना के किसानों ने सशस्त्र विद्रोह किया था परन्तु उसे क्रूरता के साथ दबा दिया गया था। तेलंगाना उस समय मद्रास राज्य में था।

पृष्ठ ३१५–'सन् ४९ का.................चिन्ता न थी।'

उपन्यासकार वातावरण में वसन्त ऋतु के आगमन और उसके कारण होने वाले परिवर्तनों का वर्णन करता हुआ कह रहा है कि—सन् १९४९ का फरवरी का महीना था। वसन्त ऋतु आ चुकी थी। पतझड़ का समय आ जाने से पेड़ों के पुराने पत्ते वासन्ती हवा के कारण झड़-झड़ कर गिर रहे थे और उनकी जगह नये पत्तों को जन्म देने वाली कोंपलें फूटने लगी थीं। दिल्ली की चौड़ी और साफ-सुथरी सड़कों पर झड़े-सूखे पत्तों के ढेर उड़ते फिर रहे थे। अब जाड़ा समाप्त हो रहा था। वह समाप्त होते-होते कभी-कभी लौट कर अपना प्रभाव दिखा जाता था। अर्थात कभी-कभी मौसम में ठंडक बढ़ जाती थी। जाड़े को समाप्त होता हुआ देख युवतियों ने यह कहते हुए कि 'अब जाड़ा कहाँ है' अर्थात जाड़ा समाप्त हो गया, अपने भारी-ढीले गरम कोटों को उतार कर खूँटियों पर लटका दिया था। ये भारी-ढीले गरम कोट उनके शारीरिक सौन्दर्य और सुडौलता को छिपाए रखते थे, इसलिए उन्हें अच्छे नहीं लगते थे। इसीलिए उन्होंने उनसे छुटकारा पाकर मानों उन्हें साल भर के लिए खूँटियों पर लटका फाँसी की सजा दे दी थी। अब उन युवतियों को यह चिन्ता नहीं रही थी कि ठंडी हवा के झोंके उनके शरीर के रोंगटों को खड़ा कर देगें, क्योंकि जाड़ा समाप्त हो रहा था।

विशेष—उपन्यास के तनाव भरे वातावरण में ऐसे मनोरम प्रकृति-चित्रण बड़ी शान्ति और आनन्द देते हैं। इस उपन्यास में ऐसे चित्रण बहुत ही विरल हैं परन्तु जहाँ भी आये हैं, रुचि-परिवर्तन का एक अनोखा आनन्द प्रदान करते हैं।

पृष्ठ ३१९—'सास-ससुर और..............जा रही थी।'

जयदेव के माता-पिता एक दूसरे घर में रहने चले गए थे। अब घर में जयदेव और कनक अकेले रह गए थे। कनक के सास-ससुर और परिवार के अन्य लोगों के चले जाने से घर सूना-सूना सा लगने लगा था। अब घर में एकान्त रहने से कनक और जयदेव प्रेम के उन्माद में भर प्रेम-क्रीड़ा करते हुए अपने आप को भूल जाते थे। उनके इस आनन्द में कोई बाधा डालने वाला नहीं रहा था। अकेली कनक घर का सारा काम सम्हालती थी परन्तु फिर भी उसे वह सारा काम भारी नहीं मालूम पड़ता था। वह बड़े प्रसन्न मन और उमंग के साथ सारा काम करती थी, परन्तु जयदेव कभी-कभी बिना किसी कारण के ही चिड़चिड़ा उठता था और कनक को उसका यह चिड़चिड़ाना अखर जाता था। वह इसमें अपना अपमान अनुभव करती और मन-ही-मन निश्चय कर लेती कि अब संयम से काम लेगी। परन्तु कुछ समय बाद जयदेव पुनः प्रेम के आवेग से उन्मत्त हो उठता और दोनों प्रेम में डूब जाते। परन्तु थोड़े दिनों बाद कनक ने यह अनुभव किया कि जयदेव के प्रेम का आवेग क्षीण होता जा रहा है। अब उसके प्रेम के व्यवहार में वह उमंग नहीं रही थी जो पहले थी। अर्थात अब कनक के प्रति जयदेव का प्रेम कम होता जा रहा था।

पृठ ३२६-२७—मिलिटरी के जो..............अयोग्य बता रही है।'

माथुर प्रगतिशील विचारों वाला युवक है। उसने सरकारी नौकरशाही और खुफिया पुलिस की कारगुजारियों की आलोचना करते हुए एक बार प्रधान मंत्री से कहा था कि इन लोगों की कसौटी ही क्या है। हिन्दुस्तानी सेना के उन पेशेवर फौजियों ने जो हमेशा अंग्रेजों के पिट्ठू बने रहे आई० एन० ए० (आजाद हिन्द फौज ,जिसके नेता सुभाष चन्द्र बोस थे) के सिपाहियों और अफसरों को सेना के लिए अयोग्य बता दिया था। बिल्कुल उसी तरह अंग्रेजों की जी हुजूरी करते रहने वाली पुलिस और नौकरशाही (सरकार के बड़े-बड़े अफसर) पुराने क्रान्तिकारियों के खिलाफ रिपोर्ट देकर उन्हें सरकारी नौकरी के लिए अयोग्य सिद्ध कर देती है।

विशेष—द्वितीय विश्वयुद्ध के समय नेता जी सुभाष चन्द्र बोस ने बर्मा में 'आजाद हिन्द फौज' का संगठन किया था। इसमें भारतीय सेना के जापानियों द्वारा युद्धबन्दी बना लिए गये अनेक लोग भी शामिल हो गए थे और देश की आजादी के लिए अंग्रेजों के खिलाफ लड़े थे। विश्वयुद्ध समाप्त हो जाने के उपरान्त अंग्रेजों ने इन लोगों के खिलाफ मुकदमा चलाया था। देश के बड़े-बड़े वकीलों ने स्वर्गीय भूलाभाई देसाई के नेतृत्व में आजाद हिन्द फौज के लोगों की ओर से पैरवी की थी। इस मुकदमे में इन लोगों की जीत हुई थी। देश को आजादी मिलने के बाद जब यह माँग उठी थी कि आजाद हिन्द फौज के लोगों को पुनः सेना में ले लिया जाय तो भारतीय सेना के अधिकारियों ने इस बात का यह कह कर विरोध किया था कि ये लोग एक बार शत्रु-पक्ष में मिलकर सेना का अनुशासन भंग कर चुके हैं, इसलिए इन्हें सेना में नहीं रखा जाना चाहिए।

इसी प्रकार जब पुराने क्रन्तिकारी सरकारी नौकरी के लिए अर्जी देते थे तो खुफिया पुलिस उनके खिलाफ रिपोर्ट देकर उन्हें सरकारी नौकरी के लिए अयोग्य घोषित कर देती थी। इस प्रकार पुरानी नौकरशाही और पुरानी पुलिस के शासन में, जो अंग्रेजों की भक्त रही थीं, देशभक्तों की उपेक्षा की जा रही थी।

'पृष्ठ ३३७—'माथुर और तिवारी................पर बनती है।'

माथुर और तिवारी भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी की नीतियों के कट्टर आलोचक थे। यद्यपि वह इस पार्टी के समाजवादी लक्ष्यों और सिद्धान्तों के कट्टर समर्थक थे परन्तु पार्टी की नीति के कट्टर विरोधी भी थे। इस विरोध का कारण यह था कि भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी एक स्वतंत्र राष्ट्रीय पार्टी न होकर अन्तरराष्ट्रीय कम्युनिस्ट पार्टी का ही एक अंग थी। इसलिए इसका संचालन उस अन्तरराष्ट्रीय कम्युनिस्ट पार्टी की नीतियों के अनूसार ही किया जाता था। इसकी अपनी स्वतंत्र राष्ट्रीय नीति नहीं थी। भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी देश की परिस्थितियों के अनुरूप अपनी नीति का निर्धारण न कर अतन्रराष्ट्रीय कम्युनिस्ट आन्दोलन के दाँव-पेचों के आधार पर ही अपनी नीति बदलती रहती थी। (इसी कारण भारतीय कम्युनिस्टों को उनके विरोधी रूस

और चीन के गुलाम और एजेन्ट घोषित कर उन्हें देशद्रोही सिद्ध करते रहते थे। भारतीय कम्युनिस्टों की यह दूसरे की नीतियों पर निर्भर रहने की और उन्हीं के अनुसार अपनी नीतियों में परिवर्तन करते रहने की आदत जनता में उनके प्रति भ्रम उत्पन्न कर देती थी।)

पृष्ठ ३३७—'तो इसमें दोष……………है या नहीं ?'

माथुर और तिवारी द्वारा भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी पर उपर्युक्त लांछन लगाने पर चड्ढा उनके दृष्टिकोण का विरोध करता हुआ कह रहा है कि यदि भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी अपनी नीति-निर्धारण में विदेशों से प्रेरणा लेती है तो इसमें दोष या बुराई क्या है ? यदि संसार के किसी भी देश में साम्राज्यवादी पार्टी या शोषण करने वाली पूँजीवादी व्यवस्था नष्ट होती है तो उसका यह नष्ट होना प्रजातंत्र (डेमोक्रेसी) की स्थापना और प्रगति में सहायता ही करेगा। इसीलिए समाजवादी देश संसार में अन्तरराष्ट्रीय सहयोग द्वारा साम्राज्यवाद और पूँजीवाद के विनाश का प्रयत्न करते रहते हैं। इसलिए उनके इस प्रयत्न को राष्ट्रीय हितों के विरुद्ध कैसे माना जा सकता है ? इनका उद्देश्य जनता को शोषण से मुक्ति दिला, दूसरे अर्थों में जनता का राज्य अर्थात् प्रजातंत्र की स्थापना करना है। भाव यह है कि इसलिए यदि कम्युनिस्ट पार्टी अन्तरराष्ट्रीय कम्युनिस्ट संगठन से बँधी हुई है और उससे प्रेरणा लेती है तो इसमें बुराई क्या है। क्या भारत की कांग्रेस सरकार अपने देश की खाद्य-समस्या के लिए अन्तरराष्ट्रीय सहयोग अर्थात् अमेरिका आदि दूसरे देशों से सहायता नहीं लेती ? पाकिस्तान द्वारा उलझा दी गई कश्मीर समस्या के लिए क्या भारतीय सरकार संसार के अन्य देशों के मतों को अपने पक्ष में कर उनसे सहायता प्राप्त करने का प्रयत्न नहीं कर रही ? क्या भारत अपने उद्योग-धन्धों का विकास करने के लिए अमेरिका, ब्रिटेन और सोवियत से सहायता और कर्ज नहीं ले रहा ? (फिर यदि भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी संसार की अन्य कम्युनिस्ट पार्टियों से अपनी नीतियों का निर्धारण करने में सहायता या प्रेरणा लेती है तो इसमें बुराई की कौन सी बात है—इस सम्बन्ध में चड्ढा का यह सशक्त तर्क है।)

विशेष—उपर्युक्त दोनों गद्यांशों में भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी की नीतियों के विपक्ष और पक्ष में तर्क प्रस्तुत किए गए हैं।

पृष्ठ ३३७—**'नहीं-नहीं..............तैयार हो गए।....'**

माथुर चड्ढा के उपर्युक्त दृष्टिकोण और तर्कों का खंडन करता हुआ कहता है कि भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी अपने देश की स्थिति को प्रथम महत्व (प्राथमिकता) न देकर अन्तरराष्ट्रीय कम्युनिस्ट नीति को ही सर्वाधिक महत्व देती है। अर्थात् वह अपनी नीति देश की स्थिति को देख कर नहीं बनाती, बल्कि यह देखती रहती है कि किसी भी समस्या या स्थिति के सम्बन्ध में अन्तरराष्ट्रीय कम्युनिस्ट पार्टी की क्या नीति है। भारतीय कम्युनिस्टों ने देखा कि चीन में कम्युनिस्ट शासन पर अधिकार करने वाले हैं, पूर्वी यूरोप के कई देशों में समाजवादी व्यवस्था स्थापित हो गई है, पूर्वी बर्मा और इन्डोनेशिया में जनता कम्युनिस्टों के नेतृत्व में क्रान्ति करने का प्रयत्न कर रही है। संसार के इन देशों में कम्युनिस्टों का प्रभाव और प्रभुत्व बढ़ता देख भारतीय कम्युनिस्ट भारत में समाजवादी क्रान्ति करने के लिए तैयार हो गये। अर्थात् उन्होंने यह देखने और समझने का प्रयत्न नहीं किया कि भारत में इस प्रकार की क्रान्ति के लिए जनता तैयार है या नहीं, यहाँ की परिस्थितियाँ इस क्रान्ति के अनुकूल हैं या प्रतिकूल? (यहाँ माथुर सन् १९४८ में कम्युनिस्टों द्वारा संचालित तेलंगाना के किसान विद्रोह के प्रति संकेत कर रहा है। यह विद्रोह असफल रहा था। सरकार ने उसे क्रूर दमन द्वारा दबा दिया था।)

पृष्ठ ३३८—**'इन्कार करने की....... ....ही साझे होंगे।'**

चड्ढा माथुर के उपर्युक्त आरोपों का उत्तर देता हुआ कहता है कि तुम्हारे इन आरोपों को स्वीकार करने से इन्कार करने की जरूरत ही क्या है। यदि भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी ने अन्तरराष्ट्रीय कम्युनिस्ट आन्दोलन के प्रगतिवादी दृष्टिकोण को ध्यान में रखकर अपने देश के लिए नीति निर्धारित की है, तो इसमें हर्ज ही क्या है। यदि किसी अवसर पर हमारे देश के कम्युनिस्ट साथी यहाँ की परिस्थितियों के अनुरूप मार्क्सवाद के सिद्धान्तों को लागू करने में असमर्थ रहें तो ऐसी स्थिति में संसार के अन्य अधिक समझदार और अनुभवी कम्युनिस्टों से मार्ग-दर्शन और सहायता प्राप्त कर सकते हैं। क्योंकि

वे लोग अपने देशों में मार्क्सवाद के सिद्धान्तों के अनुसार कम्युनिज्म की स्थापना करने में सफल हुए हैं। दूसरे अनुभवी और समझदार लोगों से सीखने में आपत्ति या हानि क्या है ? भारत की कांग्रेस सरकार भी तो खास और नए कामों में सहायता लेने में विदेश से विशेषज्ञों को बुलाती है। यह निश्चित है कि जो देश साम्राज्यवाद से छुटकारा पाना चाहते हैं और साम्राज्यवाद का विरोध करते हैं, उन सबके हित एक समान ही होंगे। इसलिए यदि वे इस कार्य के लिए आपस में एक दूसरे की सहायता लेते या करते हैं, उनमें परस्पर विचारों और कार्य-प्रणालियों के सम्बन्ध में विचार-विमर्श और आदान-प्रदान होता है तो इसमें हानि ही क्या है। कम्युनिज्म की स्थापना के सम्बन्ध में अन्य कम्युनिस्ट देश रूस-चीन आदि हमसे अधिक अनुभवी हैं, इसलिए भारत में कम्युनिज्म की स्थापना करने के लिए उनसे सहायता या मार्ग-निर्देश लेने में कोई हानि नहीं है।

पृष्ठ ३४२—'बैठे-बैठे ख्याल..............कैसा द्वन्द्व है ?'

डाक्टर प्राणनाथ हिन्दू-मुस्लिम विद्वेष के मूल कारण को समझाते हुए तारा से कह रहे हैं कि बैठे-बैठे मैं सोचने लगता था कि हमने तो कभी इस बात पर विश्वास ही नहीं किया था कि हिन्दू और मुसलमान दो अलग-अलग कौमें हैं। अर्थात् हम तो यह विश्वास करते आए थे कि दोनों ही भारतीय हैं, एक ही देश के रहने वाले भाई हैं। परन्तु आज हमारा यह विश्वास खंडित हो चुका है। आज हम अपने सामने यह प्रत्यक्ष देख रहे हैं कि हिन्दू-मुसलमान दो अलग-अलग कौमें हैं और इसी आधार पर देश के भारत और पाकिस्तान के रूप में दो टुकड़े हो गए हैं। हमारा विश्वास भी कभी-कभी हमें धोखा दे जाता है, गलत साबित हो जाता है। यदि पाकिस्तान बनाने वाले मुसलमान हम हिन्दुओं को अपना दुश्मन समझते हैं तो हम उन्हें जबरदस्ती बाँध कर अपने साथ तो नहीं रख सकते। अपने दुश्मन के साथ रहना कौन पसन्द करेगा। हम सामाजिक रूप से मुसलमानों को अछूत समझते रहे हैं। हमने उनके साथ किसी भी प्रकार के सामाजिक सम्बन्ध नहीं रखे हैं। उन्हें अछूत मान हमेशा अपने से अलग रखते रहे हैं। परन्तु आज देश के टुकड़े होने से बचाने के लिए हम उन्हीं मुसलमानों को अपना अंग बता रहे हैं। ऐसा करना

उन्हें बहला कर धोखा देना है। हम हिन्दुओं ने मुसलमानों के साथ ऐसा गन्दा और अलगाव का व्यवहार चाहे किसी भी कारणवश किया हो, परन्तु आज हमें अपने उस व्यवहार की कीमत चुकानी ही पड़ेगी। अर्थात सदियों पुराने उस व्यवहार के कारण अब मुसलमानों को यह विश्वास नहीं दिलाया जा सकता कि वे हमारे अंग हैं, हमारे भाई हैं।

लोगों का यह कहना गलत है कि हिन्दू-मुसलमानों के आपसी द्वेष और हिन्दुस्तान-पाकिस्तान के बँटवारे के बीज उस दिन बो दिए गए थे जब सरकारी नौकरियों के लिए हिन्दू और मुसलमानों की जनसंख्या के आधार पर जगहें निश्चित कर दी गई थीं, उनके प्रतिशत बाँध दिए गए थे, या उनके चुनाव-क्षेत्र अलग-अलग कर दिए गए थे। इस विद्वेष और अलगाव के बीज तो उसी दिन बो दिए गए थे जब हम हिन्दुओं ने मुसलमानों को म्लेच्छ और अछूत घोषित कर उनके साथ किसी भी प्रकार का सामाजिक सम्बन्ध रखने से इन्कार कर दिया था। अछूत हिन्दुओं में भी होते हैं। आप उन्हें इसलिए जबरदस्ती दबा सकते हैं क्योंकि आपका और उनका धर्म एक ही है। परन्तु मुसलमान तो आपके हिन्दू धर्म से बँधा हुआ नहीं है। फिर यदि आप उसे अछूत समझेंगें, उसके साथ किसी भी तरह का सामाजिक सम्बन्ध नहीं रखेंगे तो वह अपने इस अपमान को क्यों बर्दाश्त करेगा। यह ठीक है कि हिन्दुओं ने मुसलमान शासकों और उनके द्वारा किए जाने वाले इस्लाम-धर्म के प्रचार से अपनी और अपने धर्म की रक्षा करने के लिए ही मुसलमान को अछूत समझे जाने का नियम बनाया था। इस नियम का पालन करने से हिन्दू मुसलमानों के संसर्ग और प्रभाव से बचे रहते थे। परन्तु अपनी आत्मरक्षा के लिए बनाया गया वह नियम आज सबसे बड़ा दुश्मन बन गया है। आज मुसलमान अछूत समझे जाने का अपमान सहन न कर हमारे विरुद्ध उठ खड़ा हुआ है। यह कैसा द्वन्द्व है कि अपनी आत्म-रक्षा के लिए बनाया गया नियम ही आज हमें खा गया है। देश के दो टुकड़े हो गए हैं।

विशेष—डाक्टर प्राणनाथ भारत-पाकिस्तान के निर्माण और हिन्दू-मुसलमान के पारस्परिक विद्वेष का मूल कारण राजनीतिक न मान सामाजिक मानते हैं। हिन्दुओं ने आरम्भ से ही मुमलमानों से घृणा और उनकी उपेक्षा

की थी। आज मुसलमान ने अपने उसी अपमान का बदला लेकर देश के दो टुकड़े करवा डाले हैं।

पृष्ठ ३४८–'दुखों और व्यथाओं..........हो सकता था।'

डाक्टर श्यामा की करुण-कथा सुन कर तारा सोचने लगी कि इस संसार में सभी दुखी हैं। दुखों और तकलीफों का कोई अन्त नहीं है। किसी को शारीरिक दुख है तो किसी को मानसिक। तारा के स्वयं के अपने दुख, बन्ती के दुख, मिसेज अगरवाला और मिस्टर डे के दुख, शीलो और डाक्टर श्यामा के दुख—सबके दुख अलग-अलग प्रकार के हैं। जब व्यक्ति को किसी भी प्रकार का शारीरिक और मानसिक दुख नहीं होता तो उसे अतृप्त प्यार का दुख सताने लगता है। पुरुष या नारी को जब अपने साथी से पूरा प्यार नहीं मिल पाता तो अन्यत्र प्यार की तलाश करने लगते हैं। परन्तु संसार की सबसे बड़ी भूल, सबसे बड़ा दुख अनमेल विवाह का दुख है। शीलो, डे, स्वयं तारा इस दुख को झेल रहे हैं, झेल चुके हैं। तारा आश्चर्य करती है कि वह इस दुख को आगे भोगने से कैसे बच गई। उसने इससे बचने के लिए क्या-क्या नहीं भुगता। परन्तु यदि वह उस दुख से नहीं बचती, उसे सोमराज के साथ जीवन बिताना पड़ता तो इस दुख से उसकी मुक्ति मृत्यु हो जाने पर ही हो पाती। उसे जीवन भर यह दुख भोगना और झेलना पड़ता।

पृष्ठ ३५८–'बताओ, वास्तविकता..............विरोध सहा था?'

कनक और जयदेव के बीच बढ़ते तनाव को देख गिल ने कनक को समझाया कि अब जयदेव पुराना जयदेव नहीं रह गया है। तुम मतभेदों को बढ़ा कर उसे और चिढ़ा देती हो। यह सुन कर कनक आवेश में भर गिल से कहती है कि यह बताओ कि असलियत को छिपा कर धोखे के सहारे जीवन कैसे काटा जा सकता है। अर्थात जयदेव उससे सत्य को छिपा कर झूठी बातें बनाता रहता है। वह कब तक उसके इस झूठ को स्वीकार और सहन करती रहे। क्या उसने इस झूठ को सहने के लिए ही सब का विरोध सह कर जयदेव के साथ विवाह किया था। यहाँ कनक जयदेव के झूठ बोलने और असलियत को छिपा लेने की आदत के प्रति संकेत कर रहा है। जयदेव ने उससे उर्मिला और तारा के

सम्बन्ध में झूठ बोला था। तारा को वह बुलाना नहीं चाहता था, इसलिए कनक के आग्रह करने पर झूठ बोल उसे बहला देता था।

पृष्ठ ३५९—'वैधानिक रूप से.........वोट था।'

उपन्यासकार कांग्रेस पार्टी और उस पार्टी की सरकार के जनता को प्रभावित करने के हथकंडों को स्पष्ट करता हुआ कह रहा है कि विधान अर्थात् नियम के अनुसार सरकार और कांग्रेस पार्टी का अस्तित्व अलग अलग था। अर्थात् देश में कांग्रेस की सरकार अवश्य थी परन्तु कांग्रेस पार्टी का अपना अलग संगठन और अस्तित्व था। ऐसा होने से जनता सरकार पर नियमानुसार यह आक्षेप नहीं लगा सकती थी कि सरकार और कांग्रेस एक ही है, इसलिए सरकार कांग्रेस का पक्ष लेती है। परन्तु कांग्रेस-पार्टी और भारत-सरकार—दोनों के झंडों का रंग एक ही था—तिरंगा। दोनों के झंडों में केवल इतना ही भेद था कि सरकारी झंडे पर 'चक्र' बना हुआ था और कांग्रेसी झंडे पर 'चर्खा'। परन्तु यह भेद तभी दिखाई पड़ता था जब दोनों झंडे पूरी तरह से खुले हवा में लहराने लगते थे। हवा शान्त रहने पर 'चक्र' और 'चर्खा' झंडों की परतों में छिप से जाते थे। भाव यह है कि इन दोनों झंडों की समान रूपरेखा इस कौशल के साथ बनाई गई थी कि जनता को इनका सूक्ष्म भेद आसानी से मालूम नहीं पड़ पाता था। अतः अपढ़ सामान्य जनता कांग्रेसी झंडे को सरकारी झंडा ही मान लेती थी।

आम-चुनावों के समय भारत-सरकार ने यह एलान किया था कि सरकार इन चुनावों में बिल्कुल निष्पक्ष रहेगी। अर्थात चुनाव लड़ने वाले किसी भी दल या व्यक्ति का पक्ष नहीं लेगी। अर्थात कांग्रेस का भी पक्ष नहीं लेगी। इसके साथ ही सरकार ने चुनाव से पूर्व जनता में यह प्रचार करना आरम्भ कर दिया था कि वह प्रधान रूप से खेती और किसानों की दशा सुधारने और बेकारी को दूर करने के लिए अरबों रुपये खर्च कर नहरें और बाँध बनवाएगी तथा देहातों में बिजली पहुँचाएगी। इस प्रचार द्वारा जनता को कांग्रेस को वोट देने के लिए प्रभावित किया जा रहा था क्योंकि यह प्रचार सरकार का था और सरकार कांग्रेस की थी। आजादी से पूर्व कांग्रेस देश की स्वतन्त्रता के लिए अंग्रेजों के विरुद्ध आन्दोलन करती रही थी, इसलिए जनता भी अंग्रेजों

का विरोध करने के लिए कांग्रेस को वोट देना सीख चुकी थी। अर्थात जनता यह मान चुकी थी कि देश को कांग्रेस ने ही आजादी दिलाई है। इसलिए अंग्रेजों को देश से भगा देने वाली शक्तिशाली कांग्रेस को छोड़कर लोग देश के किसी अन्य छोटे-मोटे राजनीतिक दल को वोट क्यों देते ? जयदेव अपने चुनाव क्षेत्र में अपरिचित होते हुए भी कांग्रेस की ओर से चुनाव में खड़ा हुआ था, इसलिए जयदेव को वोट देना कांग्रेस को वोट देना था। यही अपरिचित जयदेव के चुनाव में जीत जाने का रहस्य था।

पृ० ३७६—'कांग्रेस के प्रधान..........बता रहे थे।'

उपन्यासकार सन् १९५७ के द्वितीय आम-चुनावों से पूर्व की सरकारी औद्योगिक नीति का परिचय देता हुआ कह रहा है कि कांग्रेस पार्टी के प्रधान (अध्यक्ष, जिसे आजादी से पूर्व 'राष्ट्रपति कहा जाता था) और काँग्रेसी सरकार के प्रधानमंत्री (उस समय पंडित जवाहरलाल नेहरू देश के प्रधान मंत्री थे) और उनके समर्थक राष्ट्रीय नेता देश में उपलब्ध साधनों द्वारा ऐसे उद्योगों की स्थापना और विकास करने की योजना बना रहे थे जिनका संचालन सरकार द्वारा किया जायगा। (अंग्रेजी में ऐसे उद्योगों को 'पब्लिक सेक्टर' और हिन्दी में 'सरकारी क्षेत्र' कहा जाता है।) इस योजना को बनाने वालों का यह विश्वास था कि इस समाजवादी योजना द्वारा वे जनता का विश्वास और समर्थन प्राप्त कर लेंगे और फिर चुनावों में उनकी विजय निश्चित है। इसके विपरीत अनेक प्रमुख कांग्रेसी नेताओं को यह आशंका थी कि इस योजना के इस रूप को देख जनता उनकी विरोधी बन जायेगी। (ऐसे नेता पूँजीपतियों के समर्थक थे।) कांग्रेस के प्रधान-मंत्री कांग्रेस द्वारा प्रकाशित साहित्य द्वारा जनता को यह विश्वास दिलाने का प्रयत्न कर रहे थे कि कांग्रेस की इस समाजवादी नीति और अर्थ-व्यवस्था का लक्ष्य भारत में पश्चिम का समाजवाद अर्थात् कम्युनिज्म की स्थापना करना नहीं है। अर्थात् देश में सरकारी नियंत्रण वाले उद्योगों के साथ ही स्वतंत्र-निजी उद्योगों को भी विकास करने की पूरी छूट रहेगी। सरकार का उद्देश्य स्वतंत्र-निजी व्यवसाय अर्थात् पूँजीपतियों द्वारा स्थापित और संचालित व्यवसाय और उद्योग-धन्धों को समाजवादी समुच्चय अर्थात् कम्युनिज्म के भय से बचाना है। (कम्युनिज्म

में सारा व्यवसाय और उद्योग-धन्धे सरकार द्वारा ही संचालित होते हैं। वहाँ व्यक्तियों को अपना स्वतंत्र व्यवसाय करने की आज्ञा नहीं दी जाती।) अर्थात् सरकार का यह कहना था कि सरकारी उद्योगों की स्थापना कर देने से देश में कम्युनिज्म के आने का भय नहीं रहेगा। देश के प्रमुख समाचार पत्रों के मालिक बड़े-बड़े पूँजीपति थे। पूँजीपति यह जानते थे कि सरकारी नियन्त्रण में सरकारी उद्योग-धन्धों की स्थापना हो जाने से उनके अपने उद्योग-धन्धों और व्यापार पर बुरा प्रभाव पड़ेगा। उनका व्यापार कम होने लगेगा और उनकी आमदनी में कमी आ जायेगी। इसीलिए पूँजीपतियों द्वारा संचालित प्रमुख समाचार-पत्र सरकार की इस सरकारी-उद्योग की नीति को राष्ट्र-हित के लिए घातक बता रहे थे। (पूँजीपतियों की यह नीति रही है कि जब उनके निजी स्वार्थों पर चोट पड़ने को होती है तो वे तुरन्त राष्ट्र-हित की दुहाई देने लगते हैं, मानो राष्ट्र का हित उनके अपने हित पर ही निर्भर करता है।)

विशेष—यहाँ कांग्रेसी सरकार की जनता और पूँजीपति—दोनों को प्रसन्न करने वाली दुहरी नीति का असली रूप प्रस्तुत करते हुए, जन-हित के विरुद्ध पूँजीपतियों द्वारा किए जाने वाले भ्रामक प्रचार का पर्दाफाश किया गया है।

पृष्ठ ३७७—'प्रधानमंत्री और..............प्रमाण समझते थे।'

प्रधान मंत्री ने अपने रहने के लिए एक सादा सा सरकारी मकान बनवाए जाने की इच्छा प्रकट की थी। सरकार के सार्वजनिक निर्माण-विभाग ने इसका खर्चा चार लाख अनुमानित किया था जब कि प्रधान मंत्री की राय यह थी कि वे यह मकान निजी प्रबन्ध में लाख-सवा लाख रुपए में बनवा सकते हैं। इस घटना को पूँजीपतियों के समर्थक सरकारी क्षेत्र में होने वाले अपव्यय के उदाहरण के रूप में प्रचारित कर रहे थे। परन्तु प्रधान मंत्री और दूसरी पंचवर्षीय योजना तैयार करने वाले लोग इस उदाहरण के आधार पर यह मान लेने के लिए तैयार नहीं थे कि राष्ट्रीय अर्थात् सरकारी नियंत्रण में उद्योग धन्धों की स्थापना करने से अपव्यय होगा और ये उद्योग-धन्धे सफलता नहीं प्राप्त कर सकेंगे। उनका मत था कि यह अपव्यय इसलिए होता है कि अभी तक सरकारी व्यवस्था और प्रबन्ध में वही धाँधली और अपव्ययता चली

आ रही है जो अंग्रेजों के जमाने में थी। अर्थात् सरकार के पुराने अफसर ही इस सारी गड़बड़ी के लिए जिम्मेदार थे।

पृ० ३७८-७९—'डाक्टर नाथ ………………पूँजी न निकले।'

डाक्टर प्राणनाथ दूसरी पंचवर्षीय योजना का प्रारूप तैयार कर रहे थे। वह पूँजीपतियों द्वारा स्थापित और संचालित उद्योगों और व्यवसाय की कार्य करने की पद्धति से खूब अच्छी तरह से परिचित थे। वह यह जानते थे कि स्वतंत्र और निजी व्यवसाय करने वाले उद्योगपति और व्यापारी अतिरिक्त आयकर (इन्कम टैक्स) से बचने के लिए नकली हिसाब बना कर सरकार के सामने प्रस्तुत करते हैं। इस नकली हिसाब में वह अपने व्यवसाय में होने वाले खर्च को बहुत बढ़ा-चढ़ा कर तथा उससे होने वाले लाभ को बहुत घटा कर दिखाते हैं। इस प्रकार लाभ कम दिखाने से उन्हें सरकार को कम आयकर देना पड़ता है। बचा हुआ सारा धन उनकी गुप्त तिजोरियों में बन्द हो जाता है जिसे जनता 'काला धन' अर्थात् बेईमानी से चुराया हुआ धन कहती है। डाक्टर नाथ को पूरा विश्वास था कि राष्ट्रीय नियंत्रण में अर्थात् सरकार द्वारा राष्ट्रीय साधनों से उद्योग-धन्धों की स्थापना करने से देश को सस्ता सामान अधिक आसानी से मिलने लगेगा। बढ़ती हुई महँगाई रुक जायेगी। और इन उद्योगों से हुए लाभ द्वारा देश के विकास के लिए पूँजी मिलने लगेगी। अर्थात् उद्योग-धन्धों पर से पूँजीपतियों का एकाधिकार समाप्त हो जाने से मँहगाई, काला-बाजारी और बेईमानी रुक जायेगी। जनता को आसानी से सस्ती चीजें मिलने लगेंगी।

पृ० ३८१—'देश की पूँजी………………आवश्यक है।'

सूद जी सरकारी-उद्योगों का विरोध कर रहे थे। जयदेव उनकी बात का समर्थन करता हुआ डाक्टर प्राणनाथ से कहता है कि राष्ट्रीय अर्थात् सरकारी नियन्त्रण में उद्योगों की स्थापना करने से देश के पूँजीपति अपने व्यापार के पनपने की आशा न देख अपने उद्योगों में लगी हुई पूँजी समेट लेंगे। अर्थात् जब उन्हें सरकारी-उद्योगों की प्रतिद्वन्द्विता में अपने उद्योगों का भविष्य उज्ज्वल और अधिक लाभ देने वाला नहीं दिखाई देगा तो वे न तो पूँजी लगाकर नए उद्योग खोलेंगे और उद्योगों में लगी हुई अपनी पूँजो को भी समेट लेंगे। इससे

देश के बढ़ते हुए उद्योग नष्ट हो जायेंगे। पश्चिम के राष्ट्र अर्थात् अमेरिका और यूरोप के पूँजीवादी राष्ट्र भारत की साम्यवादी नीति को देख कर हमारी सहायता करना बन्द कर देंगे। अर्थात् भारत को ऋण देने और यहाँ पूँजी लगाने से हाथ खींच लेंगे। इसलिए इस योजना को केवल आर्थिक सिद्धान्तों के आधार पर ही न बनाकर यह देखना भी आवश्यक है कि इसका हमारी व्यावहारिक राजनीति पर क्या और कैसा प्रभाव पड़ेगा। (यहाँ व्यावहारिक राजनीति से अभिप्राय यह है कि पूँजीवादी देश भारत में साम्यवादी नीतियों का अनुसरण किया जाता देख यहाँ अपनी पूँजी लगा कर नए उद्योग खोलने से हाथ खींच लेंगे और देश के पूँजीपति भी अपनी पूँजी लगाना बन्द कर देंगे। ऐसी स्थिति में देश के बढ़ते हुए उद्योग-धन्धे चौपट हो जायेंगे और देश की अर्थ व्यवस्था लड़खड़ा उठेगी। यहाँ पुरी प्रकारान्तर से यही साबित करना चाह रहा है।)

पृष्ठ ३८१—'हम लोगों ने ……………प्रयत्न है।'

जयदेव के उपर्युक्त तर्क का उत्तर देते हुए डाक्टर प्राणनाथ कहते हैं कि इस योजना का राजनीतिक भविष्य क्या होगा यह जानना राजनीतिज्ञों का विषय है। हम लोगों ने तो यह योजना सरकार द्वारा बनाई गई सीमाओं और निर्देशों के अनुसार ही बनाई है। हमारी इस योजना के द्वारा देश में कम्युनिज्म की स्थापना और मजदूरों की तानाशाही का कोई अवसर या खतरा नहीं है। अर्थात् यह योजना कम्युनिज्म की समर्थक या उसे पनपने का अवसर देने वाली नहीं है। अभी औद्योगिक रूप से भारत अविकसित देश है। यहाँ औद्योगिक विकास होने की बहुत बड़ी जरूरत है। और यह विकास स्वतंत्र-निजी व्यवसाय करने वाले पूँजीपति करने में समर्थ नहीं हैं। क्योंकि उनके पास इतनी पूँजी नहीं है कि वे बड़े-बड़े उद्योगों की स्थापना करने में समर्थ हो सकें। इसलिए यह विकास राष्ट्रीय साधनों और राष्ट्रीय जिम्मेदारी से ही किया जा सकता है। अर्थात् सरकार राष्ट्रीय पूँजी लगा कर इन उद्योगों की स्थापना और विकास करने प्रयत्न करेगी।

पृष्ठ ३८८—'चिरंजीव पुरी का ……किया जाना चाहिए।'

कनक नाराज होकर जालन्धर से दिल्ली चली आई थी। नैयर ने पंडित

गिरधारी लाल को लिखा था कि कनक का जयदेव के साथ रहना ही उचित है। वह उसे तलाक देने को तैयार नहीं है। पंडित जी नैयर के उसी पत्र का उत्तर देते हुए लिख रहे हैं कि इस सम्बन्ध में जयदेव पुरी ने जिस धैर्य से काम लिया है, उसके लिए उसको प्रशंसा की जानी चाहिए। परन्तु इस बात को वह स्वयं स्वीकार करता है कि अब कनक और उसके सम्बन्धों में वास्तविकता और स्नेह नहीं रह गया है। और जिस पारस्परिक व्यवहार में सच्चाई न रहे वह केवल एक दूसरे को धोखा देना ही माना जायेगा। दूसरों को तो धोखा दिया जा सकता है परन्तु स्वयं अपने आप को तो धोखा नहीं दिया जा सकता। व्यक्ति कब तक अपने आप को धोखा देता रहेगा। ऐसी स्थिति में कनक और जयदेव परस्पर एक दूसरे के साथ कैसे रह सकते हैं? एक दूसरे को कैसे सहन कर सकते हैं? पुरी कनक को केवल इसलिए अपने साथ रखना चाहता है कि ऐसा न करने से उसकी सामाजिक स्थिति बिगड जायेगी, चारों ओर उसकी बदनामी होने लगेगी। साथ ही वह पति होने के नाते अपनी पत्नी को अपने साथ रखना अपना कर्त्तव्य भी मानता है। इसलिए वह अपने भावों का दमन करके भी कनक को साथ रखने के लिए इच्छुक है। परन्तु इसे स्वाभाविक स्थिति तो नहीं माना जा सकता। अर्थात् जब दोनों में परस्पर अनुराग ही नहीं रहा है तो दोनों साथ रह कर कैसे सुखी हो सकते हैं? इन दोनों को परस्पर बाँधने वाला जो प्रेम था वह अब प्राणहीन हो चुका है, उसमें कोई शक्ति नहीं रही है। यदि फिर भी इन दोनों को साथ रहने के लिए बाध्य किया जायेगा तो इनका जीवन नरक के समान दुर्गन्धिपूर्ण और भयानक बन जायेगा। और वह स्थिति इन दोनों के ही लिए कल्याणकारी नहीं होगी। पुरी ने पहले तलाक देने की जो इच्छा प्रकट की थी वही उचित और स्वाभाविक थी। कनक भी यही चाहती है। इसलिए इस सम्बन्ध में मेरा यही अनुरोध है कि अगर पहले इन दोनों ने परस्पर एक दूसरे को बिना अच्छी तरह पहचाने विवाह करने की जो भूल की थी, उसके लिए इन्हें क्षमा कर अब ऐसा प्रयत्न किया जाना चाहिए जिससे दोनों निरन्तर के मानसिक क्लेश से मुक्त हो जाँये। अर्थात् अब तलाक ही इन दोनों को सुखी बनाने का एकमात्र उपाय है।

पृ० ३९४—'जैसे किसी वस्तु·······अपरिचित ही थे।'

सूद जी अत्यधिक प्रभावशाली नेता बन गए थे। परन्तु उनके असंख्य समर्थकों के साथ ही उनके विरोधियों की संख्या भी बढ़ गई थी। उपन्यासकार इसी स्थिति का विश्लेषण करता हुआ कह रहा है कि—

जिस प्रकार किसी वस्तु या पदार्थ का आकार बढ़ने के साथ ही उसकी छाया की लम्बाई भी बढ़ जाती है, उसी प्रकार जब कोई स्थिति या अवस्था अधिक बल पकड़ती है, अधिक शक्तिशाली बन जाती है तो उसके विरुद्ध प्रतिक्रिया अर्थात् उसका विरोध भी होने लगता है। सूद जी के प्रति अनेक लोगों में श्रद्धा की भावना थी। परन्तु यह श्रद्धा और भक्ति सूद जी की निष्पक्षता या उनके खरे व्यवहार के कारण उत्पन्न नहीं हुई थी। इस श्रद्धा और भक्ति का मूल कारण सूद जी द्वारा मिली हुई कृपा ही थी। अर्थात् सूद जी ने जिन लोगों पर कृपा दिखाते हुए उनकी उचित-अनुचित सहायता की थी, वेही सूद जी के प्रति श्रद्धा रखते थे। इस सहायता के कारण ही सूद जी के समर्थकों की संख्या बहुत अधिक बढ़ गई थी। परन्तु उनके अतिरिक्त अन्य अनेक व्यक्ति ऐसे और थे जो सूद जी की वैसी ही कृपा और सहायता पाना चाहते थे। ऐसे लोगों को जब सूद जी की कृपा और सहायता नहीं मिल पाती थी तो वे सूद जी के विरोधी बन जाते थे। परन्तु सूद जी हमेशा अपने कृपा-पात्र समर्थकों से ही घिरे रहते थे, इसलिए उन्हें यह पता नहीं लगता था कि कुछ लोग उनके घोर विरोधी भी बन गए हैं।

विशेष—इस विश्लेषण द्वारा उपन्यासकार सन् १९५७ के चुनावों में होने वाली सूद जी की हार की ओर संकेत कर रहा है। इन विरोधियों के कारण ही सूद जी की पराजय हुई थी। परन्तु सूद जी स्वयं को उससे पूर्व तक अत्यधिक लोकप्रिय और शक्तिशाली समझते रहने के भ्रम में ही डूबे रहे थे।

पृष्ठ ४०८—'गिल, अब तो·······हाथ में है।'

डाक्टर प्राणनाथ सूद जी की हार पर टिप्पणी करते हुए गिल से कह रहें हैं कि अब तो तुम्हें इस बात का विश्वास हो गया होगा कि जनता निर्जीव

नहीं है। वह हमेशा मूक बनी रह कर अत्याचार और अन्याय नहीं सहती रहती। अर्थात् जनता बहुत शक्तिशाली होती है। वह अन्याय-अत्याचार को एक सीमा तक ही सहन करती है। जब स्थिति उसके लिए असह्य हो उठती है तो वह संगठित होकर विद्रोह कर देती है। और सूद जी जैसे अन्यायी लोगों को जड़ से उखाड़ कर फेंक देती है। इसलिए तुम्हें इस बात को अच्छी तरह से समझ लेना चाहिए कि देश का भविष्य मुट्ठी भर नेताओं और मंत्रियों के हाथ में न होकर देश की जनता के हाथ में ही होता है। जब जनता जाग्रत हो उठती है तो अन्यायी-अत्याचारी मंत्रियों और नेताओं को गद्दी से हटा कर भले आदमियों को प्रतिष्ठित कर देती है।

विशेष—उपन्यास का यह अन्तिम अंश इस उपन्यास की मूल सम्वेदना और उद्देश्य को स्पष्ट कर रहा है। उपन्यासकार यह बताना चाहता है कि जनता में अनवरत संघर्ष करते रहने की अमित शक्ति और क्षमता होती है। वह अन्याय को एक सीमा तक ही सहन करती है। जब उसकी सहन-शक्ति सीमा का उल्लंघन करने लगती है तो वह अन्याय का उग्र विरोध कर अत्याचारियों का विनाश करती हुई देश के नव-निर्माण में जुट जाती है।

